पथिक प्रश्नोत्तरी

भाग 1 एवं 2

लेखक

साधुवेश में एक पथिक

है उस महान को नमस्कार

है उस महान को नमस्कार
जो केवल परमानन्द रूप, है जिसका कण-कण में निवास ।
उसको ही सब जग रहा खोज, जिसका यह जगमग चिद्‌विलास।।
उस शक्तिमान को नमस्कार ।। 1 ।।
जिसकी विभुता इतनी विशाल, बसता है जिसमें शून्य व्योम ।
जिसमें रहते पृथ्वी सागर, जिसमें चलते हैं, सूर्य सोम ।।
उस प्रकृतिप्राण को नमस्कार ।। 2 ।।
जो एक प्रेम के भाववश्य, पाते जिसको प्रेमी प्रवीन ।
आते रहते जिसके सम्मुख, नीचातिनीच दीनातिदीन ।।
उस दयावान को नमस्कार ।। 3।।
जिसको कहते हैं दीनबन्धु, जो दुखियों की सुनता पुकार ।
जिसकी महिमा अतुलित अनन्त, जिसका चहुंदिशि से खुलाद्वार ।।
उस गुणनिधान को नमस्कार ।। 4।।
जिसकी इतनी है सरल प्राप्ति, मिल सकते हैं जो सभी ठाम ।
भक्तों के ही भावानुसार, दर्शन देते आनन्दधाम ।।
उसके विधान को नमस्कार ।। 5।।
जो जीवन का निर्मल प्रकाश, मिटती है जिससे भूल भ्रान्ति ।
गल जाता है देहाभिमान, मिलती है पावन परम शान्ति ।।
उस दिव्य ज्ञान को नमस्कार ।। 6।।
जिस बल से वह अज्ञेय तत्व, अनुभव होता यद्यपि अरूप ।
जिस बल से वह चिन्मय अचिन्त्य, चिन्तन में आता निज स्वरूप ।।
उस सतत् ध्यान को नमस्कार ।। 7।।
बढ़ती जिससे अनुरक्ति भक्ति, होता जिससे परमानुराग ।
ऐसा जिसका सुन्दर प्रभाव, हो जाय 'पथिक' में मोह त्याग ।।
उस सत्य गान को नमस्कार ।। 8 ।।

सन्त-वचन :- भगवद् चिन्तन से विषय चिन्तन को, त्याग से ही राग को, प्रेम से ही द्वेष को, योग से ही भोग को, आत्मज्ञान से ही देहाभिमान को मिटा सकोगे ।

ऊँ श्री परमात्मने नमः

पथिक प्रश्नोत्तर

भाग–1

प्रश्न–मेरे भीतर प्रश्न क्यों उठते हैं?

उत्तर–इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ प्रतीत होता है, उस ज्ञान से जब सन्तोष नहीं होता तब यथार्थ ज्ञान में सत्यदर्शन के लिए, अज्ञान निवृत्ति के लिए प्रश्न उठते हैं।

प्रश्न–प्रश्न का यथोचित उत्तर कौन दे पाता है?

उत्तर–जो विद्वान् हो, अनुभवी हो अथवा जिसकी बुद्धि गुरूज्ञान द्वारा विवेकवती हो ।

प्रश्न–विद्वान् में और अनुभवी में क्या अन्तर है ?

उत्तर–वेद शास्त्र, ज्ञान विज्ञान का अध्ययन करने वाले विद्वान् कहे जाते हैं। कर्म करते हुए साधना के द्वारा, प्रयोग द्वारा स्वतः परिणाम को देखने वाले अनुभवी कहे जाते हैं।

प्रश्न–पथिक को जो प्रश्नों के उत्तर मिले हैं वे किसके हैं?

उत्तर–शास्त्रवित् के हैं, आत्मवित् के हैं, आचार्य के हैं, तपस्वी के हैं, प्रेमी भक्त के भी हैं।

प्रश्न–इन प्रश्नोत्तरों के अध्ययन से व्यवहार एवं परमार्थ का क्या सत्य ज्ञान हो जायेगा?

उत्तर–अध्ययन से केवल जानकारी होगी, यदि जानकारी मात्र से अहंकार भोगी नहीं बने तब ज्ञान में अहंकार की सीमा दिखेगी।

प्रश्न–विद्याध्ययन में इच्छित सफलता का क्या उपाय है?

उत्तर–अध्ययन के अतिरिक्त किसी व्यर्थ इच्छा की पूर्ति में समय–शक्ति का उपयोग नहीं करना चाहिए । किसी वस्तु में तथा व्यक्ति में मोहासक्ति तथा ईर्ष्या–द्वेष क्रोध में समय शक्ति का दुरूपयोग न करने के लिए सावधान रहना चाहिए। देह को निरोग रखने के लिए स्वास्थ्य–विज्ञान के ज्ञाताओं से आहार–विहार और व्यायाम–आसन आदि का ज्ञान प्राप्त करते हुए उसी प्रकार नियम संयम से रहना चाहिए।

व्यर्थ चिन्तन, व्यर्थ वार्ता, व्यर्थ भ्रमण, व्यर्थ श्रवण में समय नष्ट नहीं करके अध्ययन तथा चलते फिरते, लेटे या बैठे हुए उसी का मनन स्मरण करते रहना चाहिए ।

जितने से शरीर का सम्यक् निर्वाह होता रहे उतना ही धन खर्च करना चाहिए ।

आलस्य से, विलासिता से अभिमान बढ़ाने वाले शृंगार (फैशन) का पक्ष न लेना चाहिए। राजनैतिक, सामाजिक, दलबन्दी से दूर रहना चाहिए। दुर्व्यसन को कभी न घुसने देना चाहिए । अध्ययन काल में अधिक मित्र या मेल–मिलाप नहीं बढ़ाना चाहिए।

पाँच–छः घंटे से अधिक कदापि नहीं सोना चाहिए, दिन में भी नहीं सोना चाहिए, हठ से अधिक जागना भी नहीं चाहिए।

पूर्व संस्कारानुसार या किसी कुसंग के प्रभाव से यदि चपल मन, रूप देखने को या मधुर गीत गान सुनने को अथवा सिनेमा देखने को, आसक्ति के कारण किसी से बार–बार मिलने को अधीर हो उठे तो उसे रोक कर अध्ययन में ही लगाना चाहिए। क्योंकि किसी विषय में रसास्वाद को जितनी बार दुहराया जाता है उतनी ही आदत दृढ़ होती है। पुनः आदत की दासता सरलता से नहीं छूटती है।

प्रश्न–किसी विषय में रसास्वाद भोग की कुटेव पड़ जाने पर छूटने का क्या उपाय है?

उत्तर–अनुचित अभ्यास के विपरीत उचित अभ्यास को दुहराते रहने से बुरी आदत, अच्छी आदत में बदल जाती है।

कुसंस्कार, कुभाव, कुविचार, कुसंग के विपरीत सुसंस्कार, सद्भाव, सद्विचार, सुसंग का ही पक्ष लेना चाहिए ।

प्रश्न–विद्यार्थी के सिनेमा देखने में क्या दोष है ?

उत्तर–सिनेमा देखने से जो भी दोष बीज रूप में छिपा होता है वही तीव्र गति से मन में जाग्रत होकर तद्नुरूप अपनी पूर्णता के लिए मनुष्य को विवश करता है। सिनेमा में ऐसे भी दृश्य आते हैं जो मनःस्थल में छिपे हुए सुसंस्कार को भी जाग्रत करते हैं परन्तु सुसंस्कार अपनी गुरूता के कारण मन के गहरे तल में रहा करते हैं और विषय–संस्कार तथा कुसंस्कार अपनी लघुता के कारण मन के ऊपरी तल में ही अपनी पूर्ति की

बाट देखते हैं, इसीलिए बाह्य दृश्य के प्रभाव से विषय सुखोपभोग के ही संस्कार प्रबल हो उठते हैं। सद्गुण विकास के संस्कारों की जागृति बाल्यावस्था में प्रायः बहुत ही कम देखी जाती है। लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि दोषों की प्रधानता बाल्यकाल से ही देखी जाती है। इसीलिए आरम्भिक जीवन में जिस दर्शन से, श्रवण से, संसर्ग से दोष जाग्रत हों उससे बचाते रहना संरक्षक का कर्त्तव्य है और बचते रहना होनहार, सौभाग्यशाली बुद्धि प्रधान बालक की वीरता है।

प्रश्न–विद्यार्थी को सिनेमा से लाभ क्या है ?

उत्तर–जिस सिनेमा (चित्रपट) के देखने से सदाचार एवं सेवामय जीवन निर्माण की, और दोषों के त्याग की प्रेरणा मिलती हो, जिस दर्शन से अध्ययन सम्बन्धित विषयों की जानकारी बढ़ती हो, जिस दर्शन से शब्द, स्पर्श, रूपादि विषय रसास्वाद के प्रति मन आकर्षित न होकर, बुद्धि द्वारा विषयासक्ति के दुष्परिणाम का ज्ञान हो वह चित्रपट–दर्शन विद्यार्थी जीवन के लिए हितकर है। किन्तु इस प्रकार जीवन उत्थान की प्रेरणा देने वाले चित्रपट दुर्लभ हैं। श्रवण की अपेक्षा शिक्षाप्रद चित्र दर्शन का तत्काल प्रभाव पड़ता है।

प्रश्न–छोटे बालकों में दोष क्यों उत्पन्न हो जाते हैं?

उत्तर–कुछ दोष प्रारब्धानुसार होते हैं, कुछ दोष संग एवं संस्कारानुसार होते हैं, कुछ दोष वंश परम्परागत होते हैं।

प्रश्न–बालकों को निर्दोष कैसे रखा जाय?

उत्तर–प्रारब्धजनित दोष विशेष पुरुषार्थ के द्वारा मिटाये जा सकते हैं, फिर भी कुछ दोष ऐसे हैं जो शरीर में जन्म से लेकर मृत्यु तक चलते रहते हैं। कुछ मानसिक दोष ऐसे हैं जो शुभ सुन्दर के अभ्यास से निवृत्त हो जाते हैं। कुसंगजनित दोष सुसंग से सद्गुण में परिणित हो जाते हैं। संस्कार जनित दोष विपरीत संस्कार से बदल जाते हैं। बालकों के सामने स्वयं निर्दोष रहकर सद्गुणयुक्त जीवन की महिमा बतानी चाहिए, दोषों की चर्चा न करनी चाहिए।

प्रश्न–ब्रह्मचर्य आश्रम किसे कहते हैं?

उत्तर–जहाँ पर विशेष श्रमपूर्वक प्राप्त शक्ति की निम्नगामी गति को ऊर्ध्वगति में परिवर्तित किया जाता है उसे ब्रह्मचर्य आश्रम कहते हैं। जो

अपनी उन्नति के लिए श्रम नहीं कर सकता उस आलसी व्यक्ति को आश्रमी नहीं कहा जा सकता । जो विद्यार्थी विद्या द्वारा नित्य विद्यमान ब्रह्म को आरम्भ से ही जानने का प्रयास करता है उसके लिए विधिवत् श्रम की जहाँ सुविधा है वही ब्रह्मचर्य आश्रम है।

प्रश्न–ब्रह्मचारी विद्यार्थी प्रायः तेजस्वी क्यों नहीं दिखते ?

उत्तर–जो ब्रह्मचारी न होकर देहचारी, अहंचारी, भोगचारी बन रहे हैं वही तेजस्वी नहीं हो पाते । ब्रह्मचारी को अपनी उन्नति के लिए असमय निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध–आलस्य और दीर्घसूत्रता (देर से काम करने की आदत) छोड़ देना चाहिए। नीच स्वभाव एवं नीच विचार वालों से प्रीति, मित्रता, शत्रुता कुछ भी नहीं करनी चाहिए ।

प्रश्न–यथार्थ ब्रह्मचारी कौन है ?

उत्तर–जो वीर्य–शक्ति का दुरूपयोग शब्द स्पर्श रूप रसास्वाद में न करते हुए विद्याध्ययन में ही तत्पर रहता है, जो शान्त प्रसन्न गम्भीर रहकर शक्ति संचय में दृढ़ संकल्प द्वारा सावधान है वही ब्रह्मचारी है। जो ब्रह्म में स्थित रहने की साधना में तत्पर है वही ब्रह्मचारी है।

प्रश्न–ब्राह्मण कौन है ?

उत्तर–जो विद्वान, वेदशास्त्रों के अध्ययन–अध्यापन में तत्पर रहकर ब्रह्मतत्व को जानता है, जो संतोषी एवं प्राप्त परिस्थिति में प्रसन्न रहकर शोक, मोह, लोभादि विकारों से रहित है, जो पाप से दूर है, निर्मल मन द्वारा सत्य धर्म का मनन करता है, जो निरपेक्ष, शान्त, निर्भय, तेजस्वी, संशय रहित, आत्मा में ही प्रीति रखने वाला है, वही यथार्थ में ब्राह्मण है। तमोगुणी ब्राह्मण शक्ति का दूसरों के अनिष्ट में दुरूपयोग करता है। रजोगुणी ब्राह्मण प्राप्त शक्ति का भोग करता है। सतोगुणी ब्राह्मण शक्ति का जनहित में सदुपयोग करते हुए अन्तरात्मा द्वारा परमात्मा में तृप्त रहता है। अन्तिम ब्राह्मण वही है जो संग्रह का दानी हो, विनम्र, निरभिमानी हो, धर्म एवं आत्मतत्व का विज्ञानी हो, जो सहिष्णु क्षमा करने में तत्पर रहता हो, जो अक्रोधी, उदार, दानी, दैवी सम्पत्ति से सदा युक्त हो, संयमी, तपस्वी, त्याग, प्रेम के लिए प्रमाद रहित हो। जो ब्रह्म में स्थित हो वही ब्राह्मण है।

प्रश्न–कोई भी ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से क्या ब्राह्मण नहीं है ?

उत्तर–ब्राह्मण कुल में उत्पन्न देह को ब्राह्मण देह मानकर नमस्कार कर सकते हो, देह की पूजा कर सकते हो, परन्तु ब्राह्मणत्व यदि कर्म में, ज्ञान में, आचरण में नहीं आया हो तो उसकी सम्मति नहीं ले सकते ।

ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने वाले का जब यज्ञोपवीत–संस्कार होता है तब वह द्विज कहा जाता है। विद्याध्ययन द्वारा जब वह शास्त्रज्ञ, वेदज्ञ बनता है तब विप्रत्व पद प्राप्त होता है। जब विद्या द्वारा नित्य विद्यमान सत्य का विवेकी होता है और शान्ति–समता युक्त सदा निर्भय प्रसन्न रहकर ब्रह्मविद् होता है तब पूर्ण ब्राह्मण–पद में प्रतिष्ठित देखा जाता है।

प्रश्न–क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को जन्म से माने या कर्म से ?

उत्तर–जन्म से अहंकार पुष्ट होता है और कर्म से स्वभाव का निर्माण होता है। किसी भी मनुष्य में देहाभिमान की प्रधानता शूद्र–प्रकृति है। धनाभिमान की प्रधानता वैश्य–प्रकृति है। बलाभिमान की प्रधानता क्षत्रिय–प्रकृति है। विद्याभिमानी होना विप्र–प्रकृति है। ज्ञान में देखना ब्राह्मणत्व है। नीर–क्षीर–विवेक की भाँति जड़–चेतन को भिन्न–भिन्न अनुभव करना हंस गति है। ब्रह्मतत्व में विश्राम पाना परमहंस–पद की प्राप्ति है। जन्म से मानो और कर्म से जानो ।

प्रश्न–परिवार के साथ रहकर त्याग–प्रेम कैसे पूर्ण हो सकता है?

उत्तर–असाधक के लिए अविवेक–वश परिवार का संग, मोह, लोभ, अभिमान आदि दोष वृद्धि का साधन है किन्तु विवेकी साधक के लिए परिवार का संग, सेवा की पूर्णता तथा दोषों के त्याग एवं प्रेम की पूर्णता का साधन हो जाता है। निष्काम सेवा से, दान से, और आत्मज्ञान से पूर्णता प्राप्त होती है।

प्रश्न–परिवार के संग से यदि साधना सफल होती तो पत्नी पुत्रादि को छोड़कर अनेक विद्वान संन्यास क्यों लेते हैं ?

उत्तर–पत्नी–पुत्रादि परिवार के त्याग से संन्यास पूर्ण नहीं होता। त्याग का अभिमान अथवा दम्भ अवश्य ही चलता है। विवेकी विद्वान्

परिवार में रहते हुए तप—त्याग साध लेते हैं तब चौथेपन में वह किसी का त्याग नहीं करते, प्रत्युत वह परमात्मा में इतना अधिक प्रेम—विभोर रहने लगते हैं कि धीरे—धीरे स्वतः ही छूट जाता है, उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता।

प्रश्न—पति—पत्नी का पारस्परिक मोह कैसे छूटता है?

उत्तर—मोह करना तो पशु, पक्षी, कुत्ता, बिल्ली सभी जन्तु जानते हैं, परन्तु विवेकी मानव प्रेम की पूर्णता प्राप्त करते हैं।

मोह करने वाले पति—पत्नी चतुष्पाद (चार पैर वाले) पशु की भांति बोझा ही ढोते रहते हैं, किन्तु प्रेम में होकर एक दूसरे की सेवा करने वाले मानव चतुर्भुज नारायण के स्वरूप को प्राप्त होते हैं। जब तक विवेक का आदर करते हुए परस्पर सेवा का संकल्प न करोगे और अपने मन की पूर्ति चाहोगे तब मोह नहीं छूटेगा ।

मन के द्वारा मोह ही बढ़ता है, क्योंकि मन इन्द्रियों के सहारे शब्द, स्पर्श, रूप रसास्वाद में ही आसक्त होता है। मन देह में अटक जाता है, यही मूढ़ता है। विवेकवती बुद्धि द्वारा सुखोपयोग का दुष्परिणाम दीखता है, जड़ देहों के भीतर जो कुरूपता और अशुद्धि है, उसका ज्ञान होता है और देह मन—बुद्धि के पीछे शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा का बोध होता है। इस आत्मबोध द्वारा विवेकी पुरुष सत्य का प्रेमी होता है और अविवेकी जड़ विनाशी देह का मोही बना रहता है।

प्रश्न—पत्नी यदि पति की आज्ञा न माने तब पति का क्या कर्त्तव्य है?

उत्तर—जब पति अधिक कामी होता है तब पत्नी—पति की बात नहीं मानती और यदि पति बेकाम होता है, तब निठल्ले बैठे रहने वाले पति की अवहेलना पत्नी करती है। प्रीति के बिखर जाने पर भी पत्नी विरोधिनी बन जाती है।

यदि पत्नी पति की कामना—पूर्ति न करे तो पति को उस कामना को ही रोक लेना चाहिए ।

यदि पत्नी पति की हितप्रद सेवा सम्बन्धी आज्ञा पालन न करे तो उसकी मूर्खता, मूढ़ता का परिचय कराते हुए परिणाम दिखाना चाहिए। उसे स्वतन्त्रता न देकर मर्यादित अनुशासन में रखते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। अधिकार भोग का त्याग करके शान्त रहना चाहिए।

प्रश्न–पति के व्यभिचारी होने पर पत्नी का क्या कर्त्तव्य है?

उत्तर–पत्नी को अधिकार भोग की तृष्णा का त्याग करते हुए अपनी ओर से प्रीति ही करनी चाहिए। अपनी ओर से व्यभिचार में सहायक न बनकर सविनय विरोध करना चाहिए ।

प्रश्न–अनाचारी–व्यभिचारी सम्बन्धी के प्रति संरक्षक गृहस्थ का क्या कर्त्तव्य है?

उत्तर–कर्त्तव्य उसे ही कहते हैं जिससे दूसरों का हित हो, किसी का अहित न हो और जिसे करने की स्वतन्त्रता हो अथवा जिसकी पूर्ति के साधन सुलभ हों।

कर्त्तव्य परायण संरक्षक को अनाचारी, दुराचारी, व्यभिचारी पुत्र या बन्धु या किसी स्वजन के प्रति हित दृष्टि से समझाना चाहिए। यदि वह न समझना चाहे तो दण्ड की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि दण्ड से भी स्ववश न हो तो उसका त्याग कर देना चाहिए। यदि मोहवश त्याग न किया जा सके तब अपने पाप का भोग समझ कर उसके पीछे रहने वाले दुष्परिणाम को मौन रहकर भोग कर लेना चाहिए।

किसी पुण्य का, उपकार का, सेवाओं का बदला देने के लिए आज्ञाकारी, स्नेही, अनुकूल सेवाप्रेमी सम्बन्धी मिलते हैं और किसी पाप तथा अपकार और द्वेष का बदला लेने के लिए प्रतिकूल विरोधी सम्बन्धी मिलते हैं।

प्रश्न–हमें सत्य धर्म का ज्ञान कैसे होगा?

उत्तर–सत्य अथवा धर्म को जानने के प्रथम उसे जान लो जो सत्य धर्म नहीं है और उसे ही तुम पकड़े हुए हो। सत्य धर्म के विषय में शास्त्रों तथा विद्वानों द्वारा तुम विस्तृत रूप से जान सकते हो, परन्तु सत्य धर्म की स्वतन्त्रता पूर्वक अनुभूति के लिए स्वयं में ही शान्त स्थिर होना आवश्यक है।

प्रश्न–सत्य धर्म के विषय में जानना और अनुभव करने में क्या अन्तर है?

उत्तर–किसी विषय में अध्ययन अथवा श्रवण के द्वारा बौद्धिक जानकारी होती है। इस जानकारी से अहंकार पुष्ट होता है और अनुभूति से अर्थात् स्वयं में ही ज्ञान लोक द्वारा दर्शन से अहंकार विसर्जित होता है।

प्रश्न–धर्म तथा सत्य की व्याख्या करने वाला उपदेशक क्या सत्य धर्म को नहीं जानता?

उत्तर–उपदेशक प्रायः पढ़ सुनकर उसी भाँति सत्य धर्म की चर्चा करते हैं जिस भाँति चित्रपट में दुनिया का अध्ययन करने वाले देश विदेश के नगरों का वर्णन करते हैं । अनेक वक्ता सत्य धर्म के विषय में बहुत अधिक जानते हैं परन्तु स्वयं में अनुभव नहीं कर सके। कानों से प्रकाश के विषय में सुना जाता है, वाणी से जो सुना है वही कहा जाता है। दृष्टि खुली हो तब प्रकाश में देखा जाता है। इसी प्रकार सत्य, परमात्मा, धर्म के विषय में सुनना तद्नुसार ही दूसरों से कहना प्रत्येक श्रोता वक्ता के लिए सरल है किन्तु सत्य को, धर्म को परमात्मा को स्वयं में प्रज्ञा दृष्टि से देखना किसी ध्यान योगी, ज्ञान योगी के लिए ही सम्भव है।

प्रश्न–ध्यान योगी, ज्ञान योगी होने के लिए क्या उपाय हैं?

उत्तर–जब ध्यान एवं ज्ञान का भोग नहीं होता तब वही योग का साधन बन जाता है। जब ज्ञान एवं ध्यान का उपयोग सांसारिक सुखों के लिए अथवा सुखद वस्तुओं की प्राप्ति के लिए अर्थात् धन, मान, संयोग के लिए किया जाता है तब वह भोग का साधन बनता है और जब ध्यान एवं ज्ञान का उपयोग स्वयं को जानने के लिए और स्वयं में ही सत्य की अनुभूति के लिए होता है तब वह योग सिद्धि का साधन बन जाता है।

प्रश्न–धर्म किन लक्षणों से पूर्ण होता है ?

उत्तर–धर्म के विषय में जानने के साथ, उसे भी जानना आवश्यक है जो धर्म नहीं है ।

प्रश्न–क्या–क्या धर्म नहीं है ?

उत्तर–जिससे बल का दुरुपयोग होता है, समय और शक्ति व्यर्थ नष्ट हो, जिससे अहंकारी, कामी, लोभी, मोही, ईर्ष्यालु, द्वेषी बनता जाय वह कुछ भी धर्म नहीं है। जिससे प्रगति सद्गति में बाधा पड़े वह धर्म नहीं है। जिससे अशान्ति और जगत् की दासता बढ़े वह धर्म नहीं है। जिसे अज्ञानी अथवा लोभी, मोही, कामी, क्रोधी, अहंकार से भरे हुए मनुष्य पकड़े हुए हैं या जो कुछ कर रहे हैं वह धर्म नहीं है।

प्रश्न–अधर्मीजन कहीं–कहीं धर्मात्माओं की अपेक्षा बहुत अधिक शक्ति–सम्पत्ति से सम्पन्न सुखी क्यों हैं ?

उत्तर–जिस सुख को तुम सुख मानते हो वह सुख अधर्मी जनों की अपेक्षा पशु–पक्षियों में अधिक स्वच्छन्दतापूर्वक सुलभ है। कोई धर्म–विमुख व्यक्ति सुखी भले ही दिखाई दे, पर उसे शान्ति नहीं है। उसके समस्त सुखों का अन्त दुःख होगा ।

कोई अधर्मी इसीलिए सुखी है क्योंकि उसने कभी न कभी तन द्वारा, मन द्वारा, बल द्वारा किसी के शासन में रहकर सुख पहुंचाया है, उसी के फल से कुछ समय के लिए सुखी है।

प्रश्न–धर्म–प्रेमी जन 'जय' क्यों बोलते हैं ?

उत्तर–भिखारी लोभवश दाता की जय बोलते हैं। अनेक लोग अभय होने के लिए समर्थ की जय बोलते हैं। साधु, तपस्वी, ब्राह्मण अपनी सुरक्षा के लिए राजा अथवा नेता की जय बोलते हैं। साधक जन अपने भीतर आसुरी वृत्तियों को नष्ट करने के लिए दैवी वृत्तियों की समृद्धि के लिए भगवती अथवा भगवान की जय बोलते हैं। देवता गण असुरों को जीतने के लिए विष्णु परमात्मा की जय बोलते हैं। शिष्य–सेवक अपने भीतर अज्ञान नाश के लिए ज्ञान स्वरूप गुरूदेव की जय बोलते हैं। प्रत्येक मानव के जीवन में आसुरी और दैवी वृत्तियों में संघर्ष चलता रहता है। इसी को देवासुर–संग्राम समझ कर अपने भीतर दैवी शक्ति अथवा भगवती जगदम्बा या भगवान् की जय हो, आसुरी वृत्तिरूपी सेना पराजित हो, यही 'जय हो' का अर्थ है ।

जो देहादिक वस्तुओं अथवा सम्पत्ति का लोभी होता है वह सम्बन्धित व्यक्तियों का अनादर करता है। जो सम्बन्धियों का मोही होता है वह वस्तुओं तथा सम्पत्ति को सेवा में लगा देता है परन्तु मोहवश धर्म का अनादर करता है। जो धर्माचरण का महत्त्व अधिक रखता है वही लोभी–मोही न रहकर विरक्त होता है।

प्रश्न–धर्माचरण से विरक्ति होती है या जो जिस धर्म को मान लेता है उसी में आसक्ति होती है।

उत्तर–जो धर्म को सुनकर मान लेता है वही धर्म की पद्धतियों में आसक्त होता है और वही धर्माभिमानी संघर्ष में उतर कर अशान्त होता है। किन्तु जो धर्म तत्त्व को जानता है वह संघर्ष अशान्ति की सीमा में न रहकर प्रेम एवं शान्ति से पूर्ण होता है।

प्रश्न–धर्माभिमानी और धर्म तत्व के ज्ञाता जनों में अन्तर क्या है ?

उत्तर–बाल्यकाल से विविध प्रकार की धर्मचर्चा को सुनाते हुए धर्माभिमान दृढ़ होता है। धर्माभिमानी अपने धर्म के न मानने वालों के प्रति कभी–कभी ईर्ष्या–द्वेष रखते हुए क्रोध में होकर हिंसा करता है।

जो बुद्धिमान स्वधर्म तथा परधर्म को मानने के पश्चात् जानता भी है वह धर्मतत्व का ज्ञाता धर्म को धारण करते हुए सेवा तथा कर्त्तव्य को पूर्ण करता है। वह प्रेम में रहकर शान्त, स्वस्थ होता है।

प्रश्न–हम धर्म को किस प्रकार जानें ?

उत्तर–धर्म के दो भेद हैं – एक वस्तु धर्म, दूसरा सत्य धर्म। जितनी संसार में नाम रूप वाली वस्तुएँ हैं उतने ही वस्तुगत अनेक धर्म हैं। वस्तुओं से सम्बन्धित अनेक धर्मों का ज्ञान प्राप्त करने से वस्तुओं का सम्यक् उपयोग होता है। जो समस्त संसार को धारण करता है वही सत्य धर्म है, वह सत्य एक है, अतः धर्म भी एक है। व्यवहार के लिए विविध वस्तुओं तथा सम्बन्धित व्यक्तियों के धर्मों का ज्ञान आवश्यक है। परमार्थ सिद्धि के लिए जो अखण्ड है, एक है, उस सनातन सत्यधर्म का विवेक आवश्यक है ।

प्रश्न–हम वस्तु तथा व्यक्तियों के धर्म को कैसे समझें ?

उत्तर–जो वस्तु तथा व्यक्तित्व को धारण कर रहा है अर्थात् जिसके बिना वस्तु व्यक्ति का जीवन नहीं रहेगा, वही उसका धर्म है। धर्महीन वस्तु तथा व्यक्ति किसी के काम नहीं आ सकते। वस्तु तथा व्यक्तिगत जीवन ही उसका धर्म है।

प्रश्न–क्या व्यावहारिक और पारमार्थिक धर्म एक साथ साधे जा सकते हैं ?

उत्तर–व्यावहारिक धर्म को आचरण में लाने से ही वस्तुओं तथा व्यक्तियों का भोग न होकर सेवा में सदुपयोग होता है। भोग से आसक्ति बढ़ती है और वस्तुओं द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों की सेवा करने से विरक्ति बढ़ती है। आसक्त प्राणी लोभी, मोही, कामी, क्रोधी बनकर विनाश का दुःख भोगता है। विरक्त साधक, विवेकी, उदार, दानी, निष्काम होकर ज्ञान प्रकाश

में शान्ति का अनुभव करता है। इसीलिए केवल धर्मोपदेश देते रहने से या सुनते रहने से कोई विरक्त नहीं हो पाता, धर्माचरण से ही आसक्ति विरक्ति में बदल जाती है।

प्रश्न—क्या धर्मोपदेशक पण्डित, विद्वान, साधु, संन्यासी, विरक्त नहीं होते ?

उत्तर—केवल धर्म के उपदेश देने मात्र से ही किसी विद्वान को, साधु संन्यासी को विरक्त मानकर उनकी सेवा—पूजा करने वाले कभी—न—कभी धोखा भी खाते हैं। धर्मोपदेश देना किसी भी दम्भी—पाखण्डी वेषधारी साधु के लिए अभ्यास द्वारा—बहुत सुगम है परन्तु धर्म का आचरण कोई संयमी प्रेमी ही कर पाता है।

प्रश्न—धन बिना धर्म कैसे हो सकता है ?

उत्तर—धन से या बल से उच्च पदाधिकार या विद्या से धर्म नहीं होता क्योंकि अनेक धनवान्, बलवान, पदाधिकारी, विद्वान् घोर भोगी बने हैं। धर्म का सम्बन्ध बाहरी वस्तुओं से नहीं है, वरन् स्वयं से सुलभ सद्विवेक से है।

प्रश्न—हम धर्म में किस प्रकार दृढ़ रह सकते हैं ?

उत्तर—धर्म में दृढ़ रहने के लिए पराश्रय छोड़कर स्वाश्रय में सत्याश्रय लेना होता है। धर्म बाहर से नहीं स्वयं में ही है। धर्म जीवन है, शाश्वत् है। सुखोपभोग में, किसी प्रकार के संचय में संयमित होना और संयमित शक्ति एवं संचित सम्पत्ति से सभी का हित साधना व्यावहारिक मानव—धर्म है। स्वयं में बुद्धि को स्थिर रखते हुए अखण्ड व्यापक सत्ता का अनुभव करना पारमार्थिक धर्म है।

प्रश्न—श्रुति—स्मृति में सनातन धर्म की अनेक मान्यताओं का क्या रहस्य है ?

उत्तर—अनेक भेद होने पर जो परम लक्ष्य परमात्मा के नित्य योग का अनुभव करा दे, वही सनातन धर्म है। भक्ति के साधकों के लिए भगवान् की भक्ति को ही स्वधर्म कहा है। कहीं पर निष्काम होने को अथवा सत्य में ही पूर्ण विश्राम पाने को स्वधर्म कहा। कहीं पर योग द्वारा आत्म—दर्शन को ही परम धर्म कहा है। कहीं पर परमात्मा से पूर्ण प्रेम होने को ही स्वधर्म

बताया है। किसी ने स्वयं को सर्व में खो देना ही स्वधर्म निश्चित किया है। कर्मयोगी, भावयोगी, ज्ञानयोगी, प्रेमयोगी जिसके द्वारा अपने परमलक्ष्य परमानन्द को प्राप्त करते हैं, उसी को उनका स्वधर्म समझना चाहिए ।

प्रश्न–धर्म पूर्णता की सहज साधना क्या है ?

उत्तर–भिन्न वस्तुओं का आश्रय छोड़कर स्वयं में शान्त होना धर्म की साधना है। संकल्प रहित होने पर, विचार शान्त होने पर, अभिमान शून्य होने पर चैतन्य ज्ञान में जाग्रत रहना धर्म की साधना है। पशु प्रकृति से जो प्रभु तक ले जाय वही धर्म की साधना है।

प्रश्न–हमें धर्म का ज्ञान होते हुए भी शान्ति क्यों नहीं मिलती ?

उत्तर–यदि धर्म विचार में ही है तो व्यर्थ है। यदि धर्म शास्त्र के शब्दों में कण्ठस्थ है तो निष्प्राण है। यदि धर्म उपदेशात्मक शब्दों में ही है तो निष्क्रिय है। यदि धर्म अन्तर्हृदय में होकर आचरण में है तब शान्तिप्रद है। धर्म का ज्ञान अहंकार को होता है और अहंकार का ज्ञान धर्म में होता है। ज्ञान में धर्म को देखो तभी शान्ति मिलेगी ।

प्रश्न–हम स्वाधीन स्वतन्त्र किस प्रकार हो सकते हैं ?

उत्तर–जहाँ तक तन में, धन में, परिवार में अथवा किसी वस्तु व्यक्ति में आसक्ति रहती है वहाँ तक पराधीनता ही है। आसक्तियों के त्याग से ही स्वाधीनता आती है। जब किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रहती। स्वतन्त्र, स्वाधीन वही होता है जो कामनाओं वासनाओं से मुक्त होता है उसकी स्वतन्त्रता अनन्त हो जाती है। स्वतन्त्र स्वाधीन वही हो सकता है जो किसी को बन्धन में नहीं रखता और न किसी के बन्धन में रहता है।

प्रश्न–देश के सर्वोपरि धनी, सर्वोच्च पदाधिकारी क्या स्वतन्त्र नहीं हैं ?

उत्तर–प्रायः धनी जनों को स्वतन्त्र होना तो बहुत आगे की बात है, वह तो धन के स्वामी भी नहीं हो पाते क्योंकि धन के दास बने रहते हैं। कोई बिरले ही पदाधिकारी, अधिकार बल द्वारा जनता की निष्काम सेवा कर पाते हैं। अधिकतर पदाधिकारी, अधिकार बल का दुरुपयोग भोग में

ही करते रहते हैं। स्वतन्त्र वही हो सकता है जो स्वयं को जानकर स्वयं में ही शान्त है, जो स्वयं को नहीं जानता वही पर के संग में परतन्त्र है।

प्रश्न–अपने प्रिय सम्बन्धी की बीमारी से मन अशान्त हो तब क्या करना चाहिए ?

उत्तर–रोगी शरीर की उचित सेवा करना चाहिए। साथ ही अपने रोगी मन का विचार द्वारा उपचार करना चाहिए । मोहवश सम्बन्धी के रोग की सभी चिन्ता करते हैं। किन्तु निरन्तर मोहादि व्याधि से पीड़ित मन को निरोग होने की चिन्ता कोई विरले ही विद्वान करते हैं।

प्रश्न–शरीर के रोगों की भाँति मन के रोगों का ज्ञान कैसे हो?

उत्तर–काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या–द्वेष, तृष्णा, मद–मत्सर आदि मन के अनेक रोग हैं। रामायण में देखा ! मानस रोग कछुक में गाये, हैं सबके लखि बिरले पाये।

प्रश्न–मानस रोगों की निवृत्ति कैसे होती है?

उत्तर–विरक्त अनुभवी तत्त्ववेत्ता अथवा प्रभु में पूर्ण अनुरक्त महात्मा के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा तथा प्रभु की कृपा पर विश्वास एवं समुचित तप संयम के साथ आत्मज्ञान और सेवा त्याग प्रेमयुक्त ध्यान से मानस रोगों का अन्त हो जाता है।

प्रश्न–भगवद् भजन की इच्छा होते हुए भी वह क्यों नहीं हो पाता?

उत्तर–भजन की इच्छा से अधिक सुखोपभोग की इच्छा प्रबल होने के कारण भजन नहीं हो पाता । भगवत् प्राप्ति की अभिलाषा प्रबल होने पर सुखोपभोग की इच्छा स्वतः शान्त हो जाती है। भगवत् प्राप्ति की अभिलाषा तभी प्रबल होती है जब बुद्धि योग द्वारा सुखोपभोग का परिणाम दुःख भोगने के पहले ही देख लिया जाता है और सुख अथवा दुःख के भोग में नष्ट होने वाले समय एवं बल का सदुपयोग दूसरों की सेवा में किया जाता है।

किसी प्रकार के बलों का भोग करने वाला बलों का अभिमानी बन जाता है। अभिमानी व्यक्ति भगवद् भजन नहीं कर सकता । दूसरों की सेवा में बल का सदुपयोग करने वाले का अन्तःकरण शुद्ध होता है, इसीलिए वह

समस्त बलों के स्वामी को जानता है, समस्त बलों के निधान को जान लेने पर ही उनके योग की अभिलाषा उत्पन्न होती हैं।

प्रश्न–**यथार्थ भजन क्या है?**

उत्तर–जिस सेवा से अथवा जिस कीर्तन, स्मरण, भजन ध्यान से भगवदाकार वृत्ति हो जाय वही यथार्थ भजन है ।

प्रश्न–**घर–परिवार में रहते हुए भजन कैसे हो सकता है?**

उत्तर–यदि आप बाहर शरीर द्वारा घर परिवार में रहें किन्तु भीतर हृदय में घर परिवार न भरे रहें तो खाली हृदय से प्रभु का प्रेमपूर्वक भजन पूर्ण हो सकता है।

प्रश्न–**मन में जो घर–परिवार भर गया है उसे किस प्रकार निकालें ?**

उत्तर–आप जिसे प्रीतिपूर्वक अपना मान लोगे जिससे द्वेष करोगे वही भीतर भर जायेगा, अतः अपना कुछ न मानो परम प्रभु से सब कुछ मिला हुआ जानकर शक्ति सम्पत्ति–योग्यता द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों की सेवा करते रहो केवल सर्वस्व के दाता परमप्रभु को ही अपना जान कर उन्हीं के प्रेम से भरे रहो।

प्रश्न–**सदा कुछ भी नहीं रहेगा, यह जानते हुए भी मोह–लोभ क्यों नहीं छूटता ?**

उत्तर–जानना बुद्धि द्वारा होता है और अपना मानकर मोह–लोभ करना यह मन के द्वारा होता है। जो व्यक्ति अपनी मानी हुई वस्तुओं, व्यक्तियों तथा सम्पत्ति द्वारा अपनी इच्छा पूर्ति करते हुए सुखासक्त रहेगा वह लोभ–मोह से मुक्त न होगा । भोगी रहते हुए लोभ–मोह नहीं छूटता।

प्रश्न–**आधि, व्याधि, उपाधि का क्या अर्थ है?**

उत्तर–मोह, लोभ, तृष्णा, ईर्ष्या, द्वेष, कामादि मानसिक विकारों को आधि कहते हैं। आधि के परिणाम में होने वाले शारीरिक रोगों को व्याधि कहते हैं।

अज्ञान में अपने को कुछ–न–कुछ मानते रहने की, कुछ बनते रहने की वृत्ति को उपाधि कहते हैं।

प्रश्न–आधि, व्याधि, और उपाधि से छुटकारा कैसे मिलेगा?

उत्तर–विनाशी के सम्बन्धाभिमान से आधि उत्पन्न होती है। जो कोई तन, मन, बुद्धि द्वारा संसार में कुछ न चाहते हुए तन, मन, बुद्धि आदि के सम्बन्ध का द्रष्टा बन जाता है वह आधि से मुक्त होता है। जो मिली हुई वस्तुओं, व्यक्तियों तथा व्यवस्थाओं का उपभोग न करते हुए निष्काम रहकर इन सब कुछ के द्वारा दूसरों का हित संयम–पूर्वक साधता रहता है वही व्याधि से छूट जाता है। जो अपने से भिन्न को अपना न मान करके असंग रहकर स्वरूप में स्थिर बुद्धि द्वारा निरन्तर शान्ति का अनुभव करता है वही उपाधि से मुक्त रहता है।

प्रश्न–प्रत्येक मनुष्य के लिए शरीर को निरोग रखने के लिए क्या नियम हैं ?

उत्तर–बिना भूख के भोजन नहीं करना चाहिए । एक बार भोजन कर लेने पर पाँच छः घण्टे तक कुछ नहीं खाना चाहिए। दूध–फल खाने के पश्चात् चार घन्टे कुछ नहीं खाना चाहिए। रोग से निवृत्त होने पर पथ्य मिलने पर साढ़े तीन या चार घंटे में रसाहार का अन्तर रहना चाहिए। जब कभी कुछ ज्वर का अंश प्रतीत हो तब भोजन कदापि नहीं लेना चाहिए। भोजन भली भाँति चबाकर मुँह में रस बन जाने पर निगलना चाहिए।

सयाने बालकों को महीने में दो या चार व्रत करना चाहिए। व्रत के दिन घी की तली वस्तु तथा गरिष्ठ फलाहार हलुआ पूड़ी खीर नहीं खानी चाहिए ।

शौच (मलत्याग) दोनों समय करना चाहिए । यात्रा करके शरीर गरम होने पर तत्काल स्नान नहीं करना चाहिए ।

भोजन भली–भाँति चबा कर निगलना चाहिए। फल खाकर तत्काल पानी कभी नहीं पीना चाहिए । भोजन के साथ अधिक पानी नहीं पीना चाहिए। भोजन करने के पौन घंटे पश्चात् पानी पीना चाहिए। बर्फ खाने या पीने की आदत नहीं डालनी चाहिए । सड़ी–गली दुर्गन्ध युक्त अधिक खटाई मिर्चा आदि तीक्ष्ण वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए। यदि असावधानी से दूषित वस्तु, अति ऊष्ण वस्तु पेट में चली गई हो तब शीघ्र ही तीन चार सेर पानी नमक डालकर ताजा या कुछ गरम जितना पिया

जा सके उतना पीकर अँगुली डालकर या केले के पत्ते की पतली छिलकी गले तक डालकर वमन कर देना चाहिए। वमन करने से विकार निकल जाता है।

कभी–कभी तीन पाव पानी में एक तोला नमक डाल गरम–गरम जल पीने से कुछ देर में शौच हो जाता है, पेट धुल जाता है। इसे शंख प्रक्षालन क्रिया कहते हैं। इस क्रिया के पश्चात् छटाँक भर खिचड़ी में छटाँक भर घी डालकर खा लेना चाहिए उस दिन दूध या घी की तली वस्तु नहीं खानी चाहिए । खिचड़ी खाकर विश्राम करना चाहिए। कब्ज हो तो जुलाब की दवा नहीं लेना चाहिए। एनेमा नींबू का रस पानी में डालकर लेना चाहिए । एनेमा से पेट शुद्ध हो जाता है।

सिर में दर्द हो, कहीं सूजन हो, किसी जहरीले जन्तु ने काटा हो, बिच्छू ने डंक मारा हो, कहीं फोड़ा हो तो शुद्ध मिट्टी ठंडे पानी में सान कर उसी की एक इंच मोटी पट्टी दर्द सूजन के स्थान पर रखने से लाभ हो जाता है। मिट्टी गर्म होते ही हटा कर बदल देनी चाहिए। भोजन करने के पश्चात् आठ स्वास चित्त लेट कर सोलह स्वास दायीं करवट लेट कर और बत्तीस स्वास बाईं करवट लेटकर लेने के पश्चात् काम में लगना चाहिए। प्रातः उठते ही आधा सेर पानी पीकर शौच जाना चाहिए। यदि एक नीबू का रस मिला कर पी लिया जाय तो बहुत लाभकारी होता है।

भोजन के साथ जल नहीं पीना चाहिए । पौन घंटे बाद अवश्य जल पीना चाहिए । प्रातः घी, दूध का सेवन भी शरीर में बल के साथ–साथ विकारवर्धक होता है। प्रातः घी तेल से बनी वस्तु खाने वाले दूध पीने वालों का शरीर तो स्थूल हो जाता है परन्तु उसके साथ विजातीय द्रव्य की भी अधिकता हो जाती है जो कि पचास साल की आयु में शरीर रोगग्रस्त दीखने लगता है। विद्यार्थी को प्रातः आँवला, हड़, बहेड़ा बराबर–बराबर लेकर पीस छान कर शीशी में सुरक्षित रखते हुए नित्य नमक के साथ यही चूर्ण फाँककर जल पी लेना चाहिए इससे अनेक लाभ होंगे। जिनकी आँखों की दृष्टि कमजोर हो उन्हें दो चम्मच घी एक चम्मच शहद दो चम्मच त्रिफला चूर्ण मिलाकर प्रातः या सायंकाल सेवन करना चाहिए। भैंस का दूध न लेकर गाय का दूध लेना लाभप्रद है। शुद्ध मिट्टी से दाँत मलने से दाँतों में रोग नहीं होते ।

अच्छे विद्यार्थियों को बीड़ी, सिगरेट आदि दुर्व्यसन की दासता से सदा बचना चाहिए। अपने मित्रों को भी व्यसन से बचाना चाहिए। कोई–कोई कुमित्र दुर्व्यसन के लिए प्रेरित करते हैं किन्तु सज्जन मित्र व्यसन छुड़ा देते हैं।

नित्य प्रातः या रात्रि में कुछ समय निकाल कर शरीर इंद्रियों तथा मन को ध्यान में शान्त होकर देखना चाहिए। कुछ क्षण नित्य प्राप्त प्रभु से प्रार्थना करना चाहिए । कुछ देर मौन होना शान्त होना बहुत लाभकारी है। शक्ति संचित होती है।

प्रश्न–संयम नियमपूर्वक सात्विक भोजन करते हुए भी शरीर रोगी क्यों होता है ?

उत्तर–असंयम तथा नियम विरुद्ध भोजन से शरीर रोगी होता ही है, इसके अतिरिक्त मोहवश, लोभवश और अभिमान के कारण जो अधिक शोकित, उत्तेजित, चिन्तित रहता है, ईर्ष्या–द्वेष से अशान्त, सन्तापित रहता है, बार–बार क्रोध करता है, भयातुर रहता है, उसी का शरीर भी कुछ समय बीतने पर किसी न किसी रोग से ग्रसित हो जाता है। कुछ रोग ऐसे भी हैं जो पिछले जन्मों में होने वाले हिंसात्मक कर्मों के फल भोग के लिए आते हैं। (पक्षाघात, कुष्ठ होना, अंग–भंग होना आदि पूर्व कर्मों का फल भोग है)।

प्रश्न–कर्मों के भोग से क्या बचा जा सकता है?

उत्तर–कुछ कर्म भोग तप से कट जाते हैं। कुछ कर्म भोग सुपात्र को विधिवत् दान से भी शान्त हो जाते हैं। कुछ कर्मभोग ध्यान भजन से भी घट जाते हैं। कोई कर्म भोगने से ही कटते हैं। जो कुछ बार–बार दुहराया जाता है उसी का अभ्यास दृढ़ हो जाता है । मैं देह हूँ, यह मेरा है–यह भी अभ्यास दृढ़ हो गया है। इसी प्रकार जड़ देह मैं नहीं हूँ यह मेरी नहीं है, जो कुछ संसार में मिला है वह सब साधन है कुछ भी अपना नहीं है अपने लिए नहीं है–जो कर्ता नहीं बनता वह भोक्ता नहीं होता।

प्रश्न–साधना की शक्ति नहीं हो तब क्या करें ?

उत्तर–साधना की शक्ति सभी साधक में है, किन्तु सिद्धि की प्यास प्रबल नहीं है, इसीलिए जिस शक्ति से साधना में सिद्धि मिल सकती है वही शक्ति धन या भोग या मान की चाह में व्यय हो रही है।

प्रश्न–हम चाहते हैं कि भोगों से विरक्त बनें, फिर क्यों नहीं बन पाते ?

उत्तर–आप प्रतिकूलता का दुःख आने पर ऊपरी मन से विरक्त बनना चाहते हैं परन्तु भीतर ही भीतर भोग से मिलने वाले सुखों की आसक्ति बनी रहती है। आसक्ति ही विरक्त नहीं होने देती ।

प्रश्न–विरक्त होने के लिए गृह–परिवार, सम्पत्ति का त्याग करना चाहिए या नहीं ?

उत्तर–बाह्य त्याग से विरक्ति नहीं होती धर्माचरण से विरक्ति होती है जब मन में किसी प्रकार के सांसारिक सुखों के प्रति आर्कषण नहीं रहता तब विरक्ति होती है। जो अहंकार आसक्त रहता है वही विरक्त बनता है और आसक्ति के समान ही विरक्ति का भी भोगी बनता है ।

प्रश्न–मूर्ख के लक्षण क्या हैं ?

उत्तर–जो स्वयं को खोकर इन्द्रियों का सुख, शरीर का मान और धन पाने की धुन में हैं, वे ही मूर्ख हैं।

जो परिणाम को देखे बिना ही खाते–पीते, हँसते–बोलते हुए अहंकार को सन्तुष्ट करते हैं वे ही मूर्ख हैं।

जो बुद्धि की सम्मति न मानकर मन को ही सब कुछ करते हैं वे ही मूर्ख हैं ।

जो समझाने पर भी नहीं समझते, समझाने वाले विद्वान को समझाना चाहते हैं वे ही मूर्ख हैं।

प्रश्न–मूढ़ कौन है ?

उत्तर–जो तन में, धन में, मान में, भोग–सुखों में अटक जाते हैं अथवा जो विद्या में, पदाधिकार में, विनाशी वैभव ऐश्वर्य में अटक जाते हैं वे ही मूढ़ हैं।

जो जाने हुए धर्म को, सत्य को, सदाचार को अपने जीवन निर्माण के लिए आचरण में नहीं लाते वे ही मूढ़ हैं।

जो विपदाओं को भोगते हुए भी स्वरूप की सम्पदा को नहीं खोजते वे ही मूढ़ हैं।

प्रश्न—हम पूर्ण स्वस्थ कैसे हों ?

उत्तर—देह, मन, बुद्धि से असंग होकर स्वयं में स्थित होना पूर्ण स्वस्थ होना है। जो देहाभिमानी, धनाभिमानी है वही अस्वस्थ है। जो स्वयं में नहीं है वही अस्वस्थ है ।

प्रश्न—देह का रोगी होना क्या अस्वस्थ होना नहीं है ?

उत्तर—देह के रोग, मन के रोग, अनेक हैं। यदि कोई साधक रोगी देह से तथा रोगी मन से ध्यान द्वारा अपने को असंग कर ले तो वह स्वस्थ ही रहेगा। देह—मन का संग करना ही अस्वस्थ रहना है ।

प्रश्न—देह—मन आदि से असंग कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर—अपने आपको देहमय, मनोमय मानना ही इनका संग करना है। देह—मन आदि संघात को भिन्न देखते हुए अपने को ज्ञान स्वरूप अनुभव करना ही असंग होने की युक्ति है। असंगता में ही मुक्ति है।

प्रश्न—हम जिन्हें कभी बड़े तपस्वी, त्यागी रूप में देखते थे वे आगे चलकर तपस्वी त्यागी क्यों नहीं रह जाते ?

उत्तर—जो त्यागी तपस्वी बनता है वही आगे चलकर बिगड़ता है। जो त्याग तप आंखों से देखा जाता है वह बाहरी सजावट है। वास्तविक त्याग तप आन्तरिक होता है, उसका परिचय ज्ञान से मिलता है, आँख से नहीं दीखता ।

प्रश्न—हम सच्चे सन्त सद्‌गुरु की खोज कैसे करें ?

उत्तर—सच्चे सन्त की खोज में पराधीनता है किन्तु सच्चे सन्त होने में स्वतन्त्रता है। तुम जैसा सन्त महात्मा, त्यागी, तपस्वी चाहते हो वैसे स्वयं ही क्यों न हो जाओ। किसी भी असाधु, असन्त, झूठे महात्मा के सहारे तुम सच्चे साधु, सन्त महात्मा हो सकते हो । किसी साधु सन्त महात्मा में जो कमी तथा जो दोष तुम देखते हो वह अपने में न रहने दो। दूसरों के दोष तुम नहीं दूर कर सकते, वरन् दोष देखते—देखते दोषी बन सकते हो, पर अपने दोष त्यागने में तुम स्वतन्त्र हो अतः स्वयं निर्दोष सन्त हो जाओ।

प्रश्न–कहीं–कहीं जिस श्रद्धेय की सेवा पूजा करते हैं उसी के द्वारा हमारी हानि क्यों होती है?

उत्तर–जितनी भी हानि है वह अपनी ही भूल तथा मूढ़ता का परिणाम है। धर्मशास्त्र विधि का अनादर करते हुए जो श्रद्धा सेवा पूजा होगी उसका परिणाम इसीलिए प्रतिकूल एवं दुखद होता है कि यथार्थ पूज्यास्पद का तथा पूजा सेवा का विवेक प्राप्त किया जाय ।

प्रश्न–क्या साधु संन्यासी वेश को नमस्कार आदर नहीं करना चाहिए ?

उत्तर–तुम वेश को हाथ जोड़ लो, देह के चरण स्पर्श कर लो क्योंकि देह में ही वेश देखा है । देह के भीतर इन्द्रिय लोलुप मन को तो देखा नहीं तब देह के साथ मन तथा इन्द्रियों को सन्त महात्मा त्यागी मानना महा मूर्खता है। देह में वस्त्र दीखते तो देह को त्यागी तपस्वी मान लो किन्तु इन्द्रियों, मन को और सुखासक्त अहंकार को त्यागी तपस्वी महात्मा सन्त तब तक न मानो जब तक अन्तर में त्याग प्रेम न पहिचान लो ।

प्रश्न–युवावस्था से ही गृह प्रपंच छोड़कर संन्यास ग्रहण करना उचित है या अनुचित है ?

उत्तर–अन्तर से ममता, अहंता, वासना कामना के रहते हुए बाहर से संन्यासी वेश अहंकार का ही पोषक है । बाहर से साधु संन्यासी बनने वाले लाखों हैं, पर भीतर से स्वयं को साधने वाले साधु कोई विरले ही हैं।

प्रश्न–युवक साधु संन्यासी के प्रति क्या श्रद्धा नहीं रखनी चाहिए ?

उत्तर–जहाँ तक किसी में दैवी गुण है, सत् असत् का सम्यक् ज्ञान है, वहाँ तक तो सद्गुण एवं ज्ञान में श्रद्धा रखना उत्तम है, परन्तु व्यक्ति के नाम रूप में आसक्ति हो जाना काम का ही प्रभाव है। अनेक युवक साधु वेषध ाारण कर लेते हैं परन्तु जहाँ कहीं युवतियों का संग अथवा धन वैभव भोग सामग्री का संग सुलभ होता है तब जो भीतर काम लोभादि विकार छिपा होता है वही प्रकट हो जाता है। इसीलिए किसी भी युवक साधु संन्यासी को स्त्रियों और धन के संसर्ग में नहीं आने देना चाहिए, फिर भी यदि युवक साधु संन्यासी वेश के पीछे मन में काम वासना है, धन भोग की कामना है तब तो

उसे प्राकृतिक विधान से कुछ तप त्याग के बदले में कामना–वासना पूर्ति करने वाले श्रद्धालु मिल ही जाते हैं। प्रायः युवतियों की श्रद्धा प्रीति युवक साधु महात्मा में जितनी सरलता से होती है उतनी वृद्ध महात्मा में कुछ श्रद्धा भले ही हो जाय परन्तु प्रीति नहीं होती ।

प्रश्न–जो सेवक अपने गुरु को धन मान भोग सामग्री देकर ही सन्तुष्ट करते हैं तो क्या पाप है ?

उत्तर–किसी बाह्य कर्म से पाप पुण्य का निर्णय सत्य नहीं होता। किसी को धन का दान, मान का दान, अधिकार प्यार का दान छः प्रकार से होता है। भावनानुसार ही उत्तम, मध्यम, अधम फल मिलता है।

कोई सेवक शिष्य अपने गुरु को धन से, तन से, मन से उसकी कामना पूर्ण करता है। यदि वह स्वयं निष्काम है अर्थात् मोह, लोभ, सुखासक्ति से रहित है फिर भी भगवान् के नाते प्रेम में होकर तन, मन तथा धन को सेवा में लगाता है तब वह पाप में नहीं है। फिर भी जिस सेवा से किसी साधक में लोभ अभिमान तथा काम वासना की जागृति होती है वह सेवा कुछ पुण्य के साथ पाप मिश्रित है क्योंकि विवेक पूर्ण नहीं है ।

प्रश्न–निःस्वार्थ सेवा में पाप कैसे सम्भव है ?

उत्तर–अपनी शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता और विवेक द्वारा किसी दुखी, पीड़ित की कामना मर्यादित विधि से पूर्ण कर देना पुण्य है। इसके विपरीत अपने सहयोग से किसी के मन में सुखोपभोग की कामना को या किसी वस्तु के लोभादि विकार को जगा देना पाप है ।

प्रश्न–किसी का दोष एवं पाप कर्म दूसरों के सामने प्रकट करना चाहिए या नहीं ?

उत्तर–यदि तुम अपना दोष या छिपकर किया हुआ पाप दूसरों के सामने नहीं प्रकट करते हो तब दूसरों का पाप भी प्रकट न करो ।

प्रश्न – किसी के दोष को, पाप को प्रकट करने से क्या दोष एवं पाप प्रवृत्ति कम नहीं होती ?

उत्तर–किसी के भय से जो पाप या दोष कम हो जाता है वह कुछ समय पश्चात् पुनः बढ़ जाता है। भय से चोरी व्यभिचार पाप प्रवृत्ति दब जाती है, मिटती नहीं ।

प्रश्न–किसी के दोष प्रकट कर देने से क्या समाज उससे सावधान नहीं हो जाता ?

उत्तर–किसी के दोष जानकर कोई व्यक्ति उससे घृणा कर सकता है। उसकी निन्दा कर सकता है, परन्तु वही व्यक्ति स्वयं दोषी बना रहता है, तब तो वह उसी अभिमानी की भाँति है जो गाँव से चोरों को निकाल देने का गर्व करता था, परन्तु वह चोर उसी के घर में बस रहे थे । बाहर का दोषी व्यभिचारी हमारी वस्तु व्यक्ति की क्षति करता है परन्तु हमारे भीतर रहने वाला दोष तो हमारी जीवन सम्पदा दैवी सम्पति को ही नष्ट भ्रष्ट करता रहता है। बाहर के पापी अपराधी से सावधान रहने में कभी–कभी पशु भी कुशल देखे जाते हैं किन्तु अपने भीतर के दोषों से सावधान रहने में कोई विवेकी ही कुशल होते हैं ।

प्रश्न–क्या दूसरे के दोष, पाप को प्रकट ही न किया जाय ?

उत्तर–उसी विधि से दूसरे के पाप दोष को प्रकट करो जिस विधि से अपने शरीर के ज्वर को, फोड़ा को, दर्द के स्थान को प्रकट करते हो। तुम दोष को तो निकाल देना चाहते हो परन्तु शरीर को अपना ही मानते और प्यार करते रहते हो। इसी भाँति दोष पाप का उपचार करो किन्तु दोषी पापी से घृणा न करो, उसकी निन्दा न करते फिरो ।

प्रश्न–साधु महात्मा दूसरों के दोषों को क्या प्रकट नहीं करते ?

उत्तर–प्रायः सन्त साधु दोषों को प्रकट करते हैं, पर दोषी व्यक्ति को प्रकट नहीं करते अर्थात् छिपकर निन्दा नहीं करते । दोषी के सामने ही दोषों को प्रकट करना उसके हित की दृष्टि से आवश्यक है। किसी के पीछे उसकी निन्दा वही करता है जो अभिमानी, लोभी, मोही, कामी, द्वेषी होता है। यथार्थ प्रेम में सन्तुष्ट निष्काम पुरुष अहिंसक होता है, वह निन्दक नहीं होता । आसुरी वृत्तियों को स्थान नहीं देता, वह शान्त समस्थित स्वस्थ रहता है।

प्रश्न–परिवार तथा समाज सुधार के लिए सरल उपाय क्या है?

उत्तर–तुम अपना इतना सुधार कर लो कि परिवार तथा समाज के सदस्य स्वयं तुम्हारे सुधरे हुए जीवन को देखकर उसी प्रकार अपने जीवन को सुधारने का स्वयं ही दृढ़ संकल्प करने लगें।

अनेक सज्जन परिवार एवं समाज का इसीलिए सुधार चाहते हैं क्योंकि उन्हें अनुकूलता के भोग में बाधा पड़ती है। अनुकूलता का भोगी सुधारक नहीं होता । सुधारक वही हो सकता है जो शक्ति, सम्पत्ति एवं योग्यता अधिकार से सम्पन्न हो और शक्ति, सम्पत्ति योग्यता का भोग में दुरुपयोग नहीं करता हो । भोगी वही नहीं होता जो आत्मा में ही तृप्त हो। लोभ, मोह, अभिमान, कामनायें आसक्तियों के रहते कोई सुधारक सेवक हो ही नहीं सकता।

प्रश्न–लोभ–मोहादि दोषों के रहते क्या दूसरों के सुधार के लिए हम कुछ कर ही नहीं सकते ?

उत्तर–सहस्त्रों मनुष्य लोभ, मोह, अभिमान के रहते जिस कोटि के सेवक सुधारक हैं उसी कोटि के तुम भी हो सकते हो । इस प्रकार के सुधारकों सेवकों से समाज में अशान्ति ही बढ़ती है, संघर्ष ही चलता है।

प्रश्न–आज के समाज–सुधारक क्या आचार्य कहे जा सकते हैं ?

उत्तर–जो मोहवश अपनी अनुकूलता के लिए परिवार का सुधार करना चाहता है, वह आचार्य नहीं है ।

जो प्रतिकूलता के कष्टों से बचने के लिए, अनुकूलता का भोग करने के लिए समाज का सुधार चाहता है वह भी आचार्य नहीं है ।

जो अहंकार को पदाधिकार तथा सम्मान द्वारा सन्तुष्ट करने के लिए नेता बनकर देश–सुधार चाहता है वह भी आचार्य नहीं है ।

जिसे परिवार, समाज एवं देश के जन–सुख का ही ध्यान है किन्तु सर्व जन–हित का ज्ञान नहीं है वह परिणाम–दर्शी विद्वान् आचार्य नहीं है।

जो धन सुखोपभोग एवं सम्मान से विरक्त रहकर अपने परम हित के लिए सर्वहित–साधन में रत हैं वे आचार्य हैं।

प्रश्न–सर्वहित से अपना परम हित कैसे सधता है ?

उत्तर–जिस साधना से दोषों का नाश हो, सद्‌गुणों का पूर्ण विकास हो, सद्‌ज्ञान का प्रकाश हो, वह साधना सर्वहित की साधना है। परहित सध जाने में ही अपना परमहित निहित है ।

प्रश्न–अपना परमहित क्या है ?

उत्तर–जहाँ सर्वहित कर्त्तापने का अहंकार परमाश्रय चेतन सिन्धु में बिन्दु की भाँति तन्मय होता है, यही अपना परमहित है ।

प्रश्न–सर्व सुख और सर्वहित में क्या अन्तर है ?

उत्तर–सुख का भोग मनुष्य ही नहीं, पशु–पक्षी, कीट–पतंग सभी करते हैं, किन्तु उन्हें हित का ज्ञान नहीं होता । किसी वस्तु, व्यक्ति का आश्रय लेकर सुन्दर रूप में, मधुर शब्द में, प्रिय स्नेह पात्र के स्पर्श में तथा रसना द्वारा रस में, गन्ध में, सम्मान के वाक्यों में मन का एकाग्र होना ही सुख है । इन्द्रियों के द्वारा मन जिसे पकड़े रहना चाहता है वही सुख है। सुख क्षणिक है, इसीलिए उसका अन्त ही दुःख है। दुःख के प्रभाव से बच जाने में ही सुख भोक्ता का हित है। हित का ज्ञान परिणाम दर्शी बुद्धि द्वारा होता है। मन द्वारा सुख भोगा जाता है, बुद्धि विवेक द्वारा हित साधा जाता है।

सुखोपभोग का परिणाम दुःख तथा अशान्ति है। हित की सिद्धि में दुःख का अन्त और शान्ति है। सुख का साधक चिन्तित, भयातुर, अशान्त रहता है। हित का साधक निश्चिन्त, निर्भय, शान्त होता है।

प्रश्न–जो परमेश्वर सब कुछ का दाता है उसे हम क्यों भूल गये हैं ?

उत्तर–जिस प्रकार चित्र में मोहित होने वाले चित्र के द्रष्टा उस पट को भूल जाते हैं जिसमें चित्र देखते हैं। उसी प्रकार संसार को देखकर उसी में मोहित रहकर संसार के अधिष्ठान परमात्मा को जीव भूल गया है।

प्रश्न–**परमात्मा को किस नाम से स्मरण करें ?**

उत्तर–अज्ञान में विस्मृति हुई है, ज्ञान में ही स्मृति हो सकती है । नाम स्मरण में अभ्यास की प्रधानता है, परन्तु परमात्मा का स्मरण ज्ञान में ही सम्भव है। नाम स्मरण में मन डूबता है, परमात्मा की स्मृति में स्मरण करने वाला स्वयं जाग्रत् होता है।

प्रश्न–**सत्संगति को दुर्लभ बताया है, वह सुलभ कैसे हो** ?

उत्तर–जिसे असत् संग सुलभ दीखता है उसे ही सत्संग दुर्लभ प्रतीत होता है। कामी को असत् संग सुलभ है, सत्संग दुर्लभ है, जो काम से विमुख होकर राम के सम्मुख होता है उसे राम की कृपा से सत्संग अति सुलभ है। देहादि विनाशी वस्तुओं का संग ही असत् संग है। विशुद्ध चेतन स्वरूप आत्मा का संग ही सत्संग है। असत् से विमुख होते ही सत्संग निरन्तर सुलभ है।

प्रश्न–**असत् एवं अनित्य से विमुख होने का उपाय क्या है ?**

उत्तर–निष्काम होकर ही असत् से विमुख और सत् के सम्मुख हो सकते हो । अनित्य अर्थात् सदा न रहने वाले सुखों की कामना ने ही सत् से विमुख बना दिया है।

प्रेम में ही कामना का त्याग हो जाता है। कामना के त्याग के लिए निर्मम होना अनिवार्य है, और निर्मम होने के लिए निरपेक्ष होना आवश्यक है। सत्संग के लिए किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है। सत्संग अपने ही द्वारा होता है। सत्स्वरूप आत्मा के प्रति प्रेम की पूर्णता ही असत् से विमुख एवं सत् के सम्मुख कर देती है।

प्रश्न–**बिना देखे परम प्रभु से प्रेम कैसे किया जाए ?**

उत्तर–स्वतन्त्र हो जाओ, स्वतन्त्र होने के लिए पर के द्रष्टा बनकर स्वयं को देखो। स्वयं में ही अपनी प्रेमास्पद प्रभु से प्रीति करो। स्वयं में ही परम प्रभु को प्रतिष्ठित अनुभव करो। अपने में जो सत्ता है, जो चेतना है, जो भी सद्गुण है, जो ज्ञान है, जिस रूप में भी प्रेम है वह परम प्रियतम प्रभु का ही समझ कर उन्हें अति निकट सभी विशेषताओं के रूप में उपस्थित देखते रहो ।

ध्यान में अहंकार को देखते रहो। जब अहंकार ज्ञान द्वारा अभिमान शून्य होता है तभी प्रेम से पूर्ण होता है । जब अहंकार अपने को अति लघु चेतन बिन्दु के रूप में अनुभव करता है तभी अगाध चेतन सिन्धु में विश्राम पाता है।

प्रेम विराट ब्रह्म स्वरूप है। अहं उसी में जीवाणु के रूप में है जो अहंकार अपने लिए ही जीता मरता है, वही प्रेममय होने पर सबके लिए जीते हुए मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। अज्ञान में जो कुछ देख रहे हो उसी के मोही, लोभी, कामी बन गए हो। ज्ञान में उसे देखो, जिसके द्वारा सब कुछ देखते हो, जानते हो तथा मानते हो, उसे देखते हुए उसी के प्रेम में तन्मय हो जाओ ।

प्रश्न–हम बाल बच्चों वाले गृहस्थ त्यागी, तपस्वी, दानी, ध्यानी कहाँ तक हो सकते हैं ?

उत्तर–बाल बच्चे गृहस्थ अर्थात् घर में रहने वाले अनेक पक्षी हैं पशु हैं जो पशुओं की भाँति बाल बच्चों के मोही हैं, पशुवत् कामी है और मानव देह में मिली हुई बुद्धि का उपयोग धर्म तथा कर्त्तव्य–पालन में नहीं करते हैं वे पशु से अधिक बन्धन ग्रस्त हैं, अशान्त हैं, दुखी हैं। यदि तुम मनुष्य हो तो सद् गृहस्थ बनो ।

बाल बच्चे न पैदा करो, पुत्र–पुत्री के जन्म की इच्छा करो। अपने को घर में बन्द न किये रहो, परिवार के बन्धन में न जकड़े रहो। प्रत्युत गृह में स्थिर होकर परिवार के मध्य में रहकर सत्य को जानो। सत्य के लिए ही कर्त्तव्य पालन करो। देहों को ही नहीं, देह में रहने वाले अविनाशी आत्मा को जानो और देह से , धन से, ममता लोभ न बढ़ाकर आत्मा में ही प्रीति करो। अपनी पूर्ति का साधन दूसरों को न बनाते हुए दूसरों के हित की, सुख की विधि को पूर्ण करते रहो। सद्गृहस्थ वही है जो परिवार की सेवा करते हुए अपने दोषों को देखता है और उनका त्याग करता है, तभी उसमें प्रेम की पूर्णता होती है।

जो गृही मानव सेवाव्रती नहीं, शुभ सुन्दर का दानी नहीं, दोषों का त्यागी नहीं, कर्त्तव्य स्वधर्म का विवेकी नहीं और सत्य आत्मा का प्रेमी नहीं

वह घर में बसने वाला पशुवत् है। मानव आकृति में उसका अहंकार अति कठोर है, वह दुःखरूपी अग्नि से ही पिघल सकेगा, उपदेशों से नहीं।

प्रश्न–हम पाप से बचना चाहते हैं, फिर भी कोई पाप करा देता है ?

उत्तर–तुम धर्म ज्ञान युक्त बुद्धि द्वारा पाप से बचना चाहते हो किन्तु सुखासक्त कामी मन के संग से पाप कर्म करते रहते हो । पाप कोई नहीं करवाता, यह अहंकार ही प्रभु से विमुख होकर कामना पूर्ति से तृप्त होने के लिए मन के संग से पाप में प्रवृत्त होता है ।

प्रश्न–पापी अहंकार क्या पुण्यवान् नहीं हो सकता ?

उत्तर–काम के संग से अहंकार पापी बन जाता है, राम के सम्मुख होते ही यह पुण्य कृत्यों में प्रवृत्त होता है। अहंकारी, अभिमानी मनुष्य का नेतृत्व अर्थात् उसे प्रेरित करने वाला काम होता है और समर्पित जीवन को प्रेरित करने वाला अन्तरस्थ राम होता है। अज्ञान में अहंकारी जीव बना बनाया भगवान् चाहता है और ज्ञान में जाग्रत निरभिमानी साधक अपने बनाने वाले भगवान् को चाहता है ।

प्रश्न–गुरुमन्त्र किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसके धारण करने से लघुता दूर हो गुरुता आ जाय वही गुरुमन्त्र है।

प्रश्न–गुरु एक होना चाहिए या अनेक ?

उत्तर–गुरु एक ही होता है । उसका स्वरूप ज्ञानमूर्ति है, देह मूर्ति नहीं। ज्ञान मूर्ति गुरु के ज्ञान प्रकाश में मिलने वाले मन्त्र अनेक हो सकते हैं, परन्तु गुरु एक ही होता है ।

प्रश्न–एक मन्त्र जपना चाहिए या अनेक भी ?

उत्तर–एक परमात्मा की योगानुभूति के लिए एक ही मन्त्र पूर्ण है। संसार में अनेक प्रकार के दोषों तथा बन्धनों से मुक्त होने के लिए अनेक मन्त्र हैं।

प्रश्न–मन्त्र जप की संख्या कितनी होनी चाहिए ?

उत्तर–जितने जप से सिद्धि प्राप्त हो उतनी होनी चाहिए। वास्तव में कोई मन्त्र जपा जाता है, कोई मन्त्र धारण किया जाता है और किसी मन्त्र

का अवसर पर प्रयोग किया जाता है। वाणी से मंत्र जपा जाता है। मन से मन्त्र स्मरण किया जाता है। बुद्धि से मन्त्र धारण किया जाता है। प्रतिकूलता के प्रभाव से अथवा वियोग के, हानि के, अपमान के, किसी वस्तु की कमी के दुःख से बचने के लिए गुरुमन्त्रों (वाक्यों) का प्रयोग किया जाता है।

प्रश्न–कभी–कभी जप की संख्या पूर्ण होने पर भी सफलता क्यों नहीं मिलती ?

उत्तर–किसी मन्त्र को या नाम को बार–बार दुहराने से मन में वही भर जाता है और मन्त्र के देवता से सम्बन्ध जुड़ता है। जप करते हुए संख्या की प्रधानता नहीं है, वरन् एकाग्रता की और प्रेम के योग की ही प्रधानता है। एकाग्रता पूर्वक प्रेम के साथ जप करने वाले को शीघ्र सिद्धि मिलती है ।

प्रश्न–जप में माला की क्यों आवश्यकता है ?

उत्तर–माला के सहारे जप अधिक होता है। वर्ण माला के विज्ञान से 108 की गणना का विशेष अर्थ है । फोन का नम्बर मिलने पर ही सम्बन्धी से वार्ता हो पाती है। उसी भाँति 108 इष्ट देवता का नम्बर है। माला की संख्या पूर्ण होने पर अपनी कामना प्रकट की जाती है। माला भी अभिमन्त्रित करने पर उसमें प्रभाव होता है। माला से जप करते देखकर अन्य लोग व्यर्थ वार्ता करने में संकोच करते हैं, समय व्यर्थ नहीं जाता। यदि दम्भ–पूर्वक किया जाय तब भी सांसारिक मान की, धन की प्राप्ति तो होती ही है ।

प्रश्न–सत्य परमात्मा क्या है ?

उत्तर–जो सदा से है, सदा रहेगा, जिसमें सृष्टि की उत्पति होती है, जिसमें ही विनाश होता है, जिसका कहीं अभाव नहीं है, वही सत्य परमतत्व परमात्मा है ।

प्रश्न–यदि सत्य नित्य निरन्तर है तो हमें दीखता क्यों नहीं?

उत्तर–जो दीखता है वह सत्य में ही सत्य द्वारा ही दीखता है। जो दृश्य जगत् दीखता है उसी से वह ढक सा गया है इसीलिए नहीं दीखता।

प्रश्न–परमात्मा का रूप कैसा है ?

उत्तर–परमात्मा का कोई रूप नहीं है, क्योंकि वह सर्वरूपमय है। जितने रूप है, वह सब माया के हैं, प्रकृति के हैं। सभी रूपों के पीछे जो सत्ता है, जीवन है, चेतना है, वही परमात्मा है।

प्रश्न–हम वृक्षों में, पत्थर में, पशु में, मनुष्य में परमात्मा का अनुभव किस प्रकार करें ?

उत्तर–मिट्टी, पत्थर, खनिज द्रव्यों में वह सत्ता रूप में है। वनस्पति में, वृक्षों में, वह जीवन गति रूप में, रस रूप में है । पशु वर्ग में वह चेतना रूप है और मनुष्य वर्ग में वह अहं अर्थात् ज्ञान रूप में है। ईश्वर में अर्थात् भगवान् में वह अनन्त ऐश्वर्य, अनुपम सौन्दर्य, अगाध माधुर्य के रूप में है।

प्रश्न–हम सत्य को अर्थात् परमात्मा को कैसे अनुभव करें ?

उत्तर–जो असत्य है, अनित्य है, जो सदा नहीं रहता उसे जान लो। तभी जो सदा से है, सदा रहेगा उसका अनुभव होगा। सत्य और परमात्मा को तभी जान सकोगे जब जो कुछ जानते हो उससे शून्य हो जाओगे। उसे वहीं खोज पाओगे जब सब खोज छोड़ दोगे। परमात्मा की अनुभूति उसी चित्त में होती है जो कि सभी आकांक्षाओं, अपेक्षाओं, आशाओं, सम्बन्धों से मुक्तरिक्त हो गया है। जहाँ धन की, मान की, भोग सुखों एवं त्याग की, ज्ञान की चाह है वहाँ सत्य परमात्मा की अनुभूति नहीं होती ।

प्रश्न–यदि हम त्याग एवं ज्ञान नहीं चाहेंगे तो राग अज्ञान कैसे मिटेगा ?

उत्तर–चाहते हुए जो त्याग होता है, ज्ञान होता है उससे अहंकार सन्तुष्ट होता है क्योंकि वह अपने को त्यागी एवं ज्ञानी मानता रहता है।

सरोवर के निकट रहने वाले को गहरी प्यास लगने पर पानी पीने के लिए त्याग की चाह नहीं होती, वरन् प्यास के कारण स्वतः सब कुछ छूट जाता है। उसे पानी के ज्ञान की चाह नहीं होती। प्यासा पानी को देखते ही पीने लगता है उसी भाँति नित्य प्राप्त परमात्मा की प्यास प्रबल होने पर उसके ज्ञान के लिए तथा त्याग के लिए तैयारी नहीं करनी पड़ती । जो त्याग ज्ञान चाहते हैं वह सच्चे प्यासे नहीं हैं ।

प्रश्न–परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करना क्या आवश्यक नहीं है ?

उत्तर–परमात्मा का ज्ञान नहीं होना है, वरन् जो नित्य ज्ञान स्वरूप हमसे अभिन्न है उसी में हमें दृष्टि खोलकर देखना है। प्रकाश का ज्ञान प्राप्त करना और बात है। प्रकाश में आँखें खोलकर देखना है। जो

अन्धकार को हटाना चाहते हैं वह भ्रमित है। अन्धकार को हटाना नहीं है, प्रकाश की भाँति ज्ञान स्वरूप परमात्मा नित्य प्राप्त है। आँख नहीं खुलने से ही अन्धकार है, इसीलिए अन्धकार हटाने का श्रम नहीं करना है। प्रकाश में आँख खोलकर देखना है । देखते ही अन्धकार का पता ही नहीं रहेगा।

प्रश्न–आँख तो खुली है, पर दर्शन क्यों नहीं होता ?

उत्तर–बाहर की आँख से बाहर रहने वाले दृश्य का दर्शन होता है। अदृश्य के देखने के लिए भीतर के चक्षु खोलना होगा ।

'उधरहिं बिमल बिलोचन हिय के ।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ।। (रामायण)
पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषा। (गीता)

प्रश्न–भीतर की दृष्टि खुलने की साधना क्या है ?

उत्तर–बाहरी नेत्रों से काम न लेना, मन से भी काम न लेना, बुद्धि से भी काम न लेना, सबको विश्राम देकर स्वयं में ही शान्त होना, शून्य होना, फिर सो न जाना, प्रत्युत चेतन स्वरूप में जाग्रत रहना यही अन्तर दृष्टि खोलने की साधना है।

प्रश्न–नाम स्मरण के प्रभाव से क्या काम से सम्बन्ध नहीं टूटेगा ?

उत्तर–साधक को यह समझ लेना आवश्यक है कि नाम जप में क्रिया की प्रधानता है और नाम स्मरण में भाव की प्रधानता है। किसी क्रिया की सिद्धि शक्ति द्वारा होती है और स्मरण की पूर्णता भाव प्राबल्य में होती है।

नाम जप या नाम स्मरण करने वाला यदि अपने प्रभु का ही योग चाहता है तब तो उसे प्रभु की उपलब्धि होगी । यदि प्रभु से धन या मान या अधिकार अथवा प्रिय संयोग या कोई सुखोपभोग चाहता है तब उसे अन्तर्यामी प्रभु की दया से उसी कामना पूर्ति का सुयोग सुलभ होगा।

प्रश्न–नाम स्मरण या जप करने वाला कभी निष्काम होगा या नहीं ?

उत्तर–प्रभु की दया से कामना पूर्ति का सुखोपभोग करते हुए प्रभु की कृपा से मिलने वाली सत्संगति द्वारा जब विवेक प्राप्त होगा तब कालान्तर में निष्काम भी होगा ।

प्रश्न–शीघ्र ही निष्काम होने का भी कोई उपाय है ?

उत्तर–धर्माचरण और ध्यान योग से निष्कामता शीघ्र आ जाती है। धर्माचरण से रागासक्ति मिट कर विरक्ति हो जाती है और ध्यान योग से नित्य प्राप्त प्रभु में अनुरक्ति हो जाती है ।

प्रश्न–नित्य प्राप्त परमात्मा का बोध क्यों नहीं होता ?

उत्तर–साधक जब तक कुछ करने में व्यस्त है, जब तक चित्त शान्त नहीं है, शून्य नहीं है, निर्विकार नहीं है, तब तक नित्य प्राप्त का बोध नहीं होगा।

प्रश्न–हम कुछ किये बिना कैसे रह सकते हैं ?

उत्तर–जब कुछ न चाहोगे तब कुछ न करोगे। जब आत्मा में ही प्रीति होगी, तृप्ति रहेगी, कोई अभाव प्रतीत न होगा तभी चाह का अन्त होगा।

प्रश्न–चंचल मन को कैसे रोकें ?

उत्तर–चंचल मन को रोको नहीं, उससे उतर कर दूर से उसकी चंचलता को देखते रहो । मन को अपना मान कर काम लेना ही उस पर सवार रहना है।

प्रश्न–चित्त विकार रहित कैसे होगा ?

उत्तर–मिले हुए को अपना मान कर जब तक उसके द्वारा भोगी बने रहोगे तब तक सब कुछ विकार युक्त ही रहेगा। जब मिले हुए को अपना न मान कर उसी का जानोगे जिससे कि मिला है, तभी से अपना अधिकार हटा लेने पर मन, चित्त, बुद्धि आदि सभी कुछ निर्विकार हो जायगा। अन्न और जल का दूषित भाग जब तक शरीर में भरा रहता है तब तक दोष ही बढ़ता जाता है। शरीर द्वारा जब उसका त्याग हो जाता है तब स्वतः वह शुद्ध हो जाता है । इसी प्रकार विकारी चित्त आदि का त्याग कर देने पर प्रभु के विधान से वह स्वतः निर्विकार हो जाता है ।

प्रश्न–मूर्ति में भगवान् की प्रतिष्ठा पूजा से क्या लाभ है ?

उत्तर–सर्वत्र सभी प्राणियों में प्रतिष्ठित परमात्मा की अनुभूति के लिए प्रथम किसी मूर्ति में परमात्मा के व्यापक होने की भावना का अभ्यास दृढ़ किया जाता है। प्रथम एक मूर्ति में ईश्वर को व्यापक माना जाता है पुनः

अनेक मूर्तियों में एक ही भगवान की स्मृति होने लगती है। अनुभवी सन्तों का सुसंग सुलभ होने पर अथवा हृदय शुद्ध होने पर सभी प्राणियों में परमात्मा के प्रतिष्ठित होने का ज्ञान होता है ।

प्रश्न–**क्या जड़ मूर्ति में चेतन भगवान् प्रगट हो सकते हैं ?**

उत्तर–जो भगवद् भाव जड़ मूर्ति के संग से जड़मय रहता है वही भाव प्रेम के पूर्ण सहयोग से चिन्मय होकर मूर्तिमान प्रतीत होता है। महत्त्व मूर्ति–पूजा का नहीं है, वह तो प्रेम योग का ही है ।

प्रश्न–**अनेक मतावलम्बी मूर्ति पूजा का खण्डन क्यों करते हैं ?**

उत्तर–मूर्तिपूजा का खण्डन अथवा मण्डन यह दोनों कृत्य मान्यता के मोह वश होते हैं । किसी को साकार की मान्यता में मोह है, किसी को निराकार की मान्यता में मोह है । मतावलम्बी प्रायः मान्यता के मोही एवं स्वीकृतियों के अभिमानी हुआ करते हैं ।

प्रश्न–**मूर्ति पूजा से हानि क्या है ?**

उत्तर–जहाँ किसी मूर्ति में भगवान् की प्रतिष्ठा पूजा से भगवदाकार वृत्ति बनती है, पूज्य भाव प्रबल होता है, वहीं पर मान्यता के मोहवश स्वीकृति के अभिमान में भिन्न–भिन्न मतावलम्बियों में मतभेद बढ़ता है, भेद भाव से संघर्ष उत्पन्न होता है और कभी–कभी साम्प्रदायिक युद्ध छिड़ जाते हैं और ईश्वर के नाम पर मनुष्य ही अपने समान दूसरे मनुष्यों की हिंसा करता है ।

मूर्ति पूजक, उस प्रेम को जो केवल सब में प्रतिष्ठित प्रभु के प्रति होना चाहिए मोहवश मूर्ति में ही अटका देता है । जहाँ किसी मनुष्य की बनाई मूर्ति में भगवान् की प्रतिष्ठा करते हुए पूज्य भाव बढ़ाना शुभ है, वहीं पर प्रकृति निर्मित प्रत्येक प्राणियों की देहरूपी मूर्ति में स्वतः प्रतिष्ठित परमेश्वर को न जानते हुए किसी प्राणी की हिंसा करना किसी मनुष्य को दुःख पहुँचाना, परस्पर भेदभाव रखना बहुत ही अशुभ है और सब में प्रतिष्ठित परमात्मा का अनादर है। मूर्ति में अटक कर अमूर्त को भूले रहना साकार में मोहित होकर निराकार को न जानना और मूर्ति पूजा की ओट में अपने अहंकार को सन्तुष्ट करते रहना महान् हानि है।

प्रश्न–चन्दन, पुष्प, माला आदि सामग्री द्वारा देवपूजा क्यों की जाती है ?

उत्तर–जो कुछ दूसरों के प्रति किया जाता है वही कर्ता के प्रति लौट कर मिलता है । जैसा बीज होता है उसी गुण स्वभाव को लिए हुए फल आता है। जो दूसरों को दिया जाता है उसी का शुभ अशुभ परिणाम भोगने को मिलता है। जो देवता की, गुरु की जिस भाव से पूजा करता है वही उसे लौटकर मिलती है। देने का अर्थ बोना है। जो कुछ बोना है वही पाना है ।

प्रश्न–सामग्री के अभाव में निर्धन किस प्रकार पूजा करे?

उत्तर–पूजा में मूल्यवान् सामग्री की प्रधानता नहीं है, पवित्र एवं सरल निश्छल भाव की प्रधानता है। पूजा की पद्धति विधि पूर्वक होनी चाहिए। विधि के साथ श्रद्धा युक्त पूज्य भावना होनी चाहिए। श्रद्धा भावना के साथ पूज्यास्पद के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान के साथ ही प्रेम का योग होना चाहिए ।

प्रश्न–इस देह में परमात्मा कहाँ है ?

उत्तर–प्रथम तो यही जान लो कि देह में स्वयं तुम कहाँ हो ? जहाँ तुम हो वहीं परमात्मा है। क्या तुम आँख से देखकर हाथ से टटोल कर बता सकोगे कि कहाँ है ? दूध में मक्खन है परन्तु मन्थन से प्राप्त होता है। उसी भाँति तुम में परमात्मा है, तुम परमात्मा में हो। देह में ही इन्द्रियाँ है, इन्द्रियों के पीछे ही मन छिपा है। मन के पीछे बुद्धि छिपी है, बुद्धि के साथ ही अहंकार स्फुरण हो रहा है । सब कुछ के साथ ही परमात्मा निरन्तर सत्ता के रूप में, जीवन के रूप में, ज्ञान रूप में, आनन्द रूप में, विद्यमान है। प्रथम अपने को देखो तभी परमात्मा का बोध होगा ।

प्रश्न–अपने देखने के लिए शांत होते ही मन क्यों चंचल होता है ?

उत्तर–मन इसीलिए चंचल है क्योंकि इसके योग्य संसार में कोई आश्रय स्थान मिलता ही नहीं । मन पूर्णता का प्यासा है किन्तु विनाशी नाम रूपवाली वस्तुओं से मन की प्यास पूर्ण होती नहीं इसीलिए वह चंचल है और रहेगा । शान्त होते ही जो कुछ तुम्हारे और प्रभु के बीच में है वही दिखेगा ।

प्रश्न–मन के एकाग्र हुए बिना परमात्मा का अनुभव कैसे होगा ?

उत्तर–मन के एकाग्र होने पर परमात्मा के योग की आशा न करो। परमात्मा के मिल जाने पर मन स्वतः एकाग्र शान्त हो जायगा । परमात्मा में ही मन विश्राम पायेगा। संसार की ओर भागते हुए यह चंचल ही रहेगा।

प्रश्न–हम परमात्मा में ही हैं तो दिखता क्यों नहीं ?

उत्तर–देखने की दृष्टि ही नहीं खुली। परमात्मा उन्हीं को नित्य उपस्थित मिलता है जो परमात्मा के लिए उपस्थित होते हैं । जिस प्रकार लोभी धन के लिए, मोही प्रिय के संयोग के लिए, कामी सुखोपभोग के लिए, अभिमानी पदाधिकार के लिए प्रतीक्षा करते हुए उपस्थित रहते हैं उसी भाँति प्रभु के प्रेमी स्वयं में ही परमात्मा की प्रतीक्षा करते हुए सजग रहते हैं, तब प्रभु को निरन्तर उपस्थित पाते हैं।

प्रश्न–परमात्मा का ध्यान किस रूप में करना चाहिए ?

उत्तर–परमात्मा परम तत्व है, उसका कोई रूप नहीं होता इसीलिए वह सर्व–रूपमय अनुभूत होता है। स्वर्ण तत्व का कोई रूप नहीं है इसीलिए प्रत्येक आभूषण मय बन जाता है। समस्त रूप नाम माया के हैं।

प्रश्न–अनेक भक्तों को परमात्मा के साकार रूप में दर्शन क्यों हुए हैं ?

उत्तर–साकार रूप में उन्हीं भक्तों को दर्शन हुए हैं जिन्होंने किसी रूप से प्रेम किया था। निराकार प्रेम स्वरूप परमात्मा ही माया के मनोहर रूप में अभिव्यक्त हो जाता है । रूप माया का होता है। परमात्म–तत्व सदा अरूप ही है, इसीलिए वह सर्व रूपमय हो रहा है ।

प्रश्न–पाप किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिससे पतन हो वही पाप है। संग से ही दोष उत्पन्न होता है, दोष से पाप होता है। अहंकार प्रथम पाप है। ज्ञान स्वरूप में विनाशी नाम रूप के भर जाने से अहं का आकार बन जाता है। यह अहंकार ही सब कुछ के रचयिता और सर्वस्व के दाता से विमुख होकर स्वयं ही कर्तापने के अभिमान रूपी पाप से युक्त होकर अपने सुख के लिए दूसरों को दुख देते हुए हिंसक बनता है ।

अज्ञान वश अहंकार धन संचय का पक्षपाती होकर लोभी बनता है। अज्ञान में ही यह किसी संयोग में सुख मानकर मोही बनता है। अज्ञान में ही यह अहंकार सुखोपभोग का कामी बन जाता है। अज्ञान में ही यह अहंकार किसी वस्तु तथा व्यक्ति को सुखदाता मानकर रागी बन जाता है और किसी को दुखदाता मानकर द्वेषी, ईर्ष्यालु एवं क्रोध के वशीभूत होकर घोर कर्म करने लगता है ।

प्रश्न–पाप का अन्त किस प्रकार होता है ?

उत्तर–ज्ञान में अज्ञान का अन्त ही पाप का अन्त है । जिस प्रकार प्रकाश में दृष्टि खुलते ही अन्धकार का पता नहीं रहता उसी प्रकार सद्ज्ञान से अज्ञानरूपी अन्धकार हटते ही फिर अहंकाररूपी पाप का अन्त हो जाता है।

प्रश्न–अनेक व्यक्तियों पर सन्त वचनों का प्रभाव क्यों नहीं पड़ता ?

उत्तर–लोहे के पात्र में कितने ही स्वादिष्ट व्यंजन बनाओ उस पात्र को कोई रस नहीं प्रतीत होता, उसी भाँति लोहे के समान जो कठोर अहंकारी व्यक्ति हैं उन पर सन्त प्रवचनों का प्रभाव नहीं पड़ता। जिस प्रकार रसना प्रत्येक खाद्य वस्तु के स्वाद को ग्रहण कर लेती है उसी भाँति कोमल, सरल, विनम्र हृदय वाले मनुष्य सन्तों के स्वल्प संग से सार तत्व ग्रहण कर लेते हैं ।

प्रश्न–निरन्तर साक्षी द्रष्टा होकर देखना कैसे सम्भव है ?

उत्तर–अल्प समय में साधनाभ्यास से सन्तोष न करो, गृह सम्बन्धी कार्यों की पूर्ति से सुख न मानो, प्रिय स्वजनों, मित्रों के मध्य अमोद–प्रमोद में तृप्ति न मानो। निद्रा में समय खोते हुए विश्राम की कल्पना न करो, अहंकार को सन्तुष्ट करने के लिए, पदाधिकार के लिए, समय शक्ति सम्पत्ति की भेंट देने का साहस न करो। दुर्वासना दुर्व्यसन के वश में होने से बचते रहो, कुसंग से सावधान रहो । अपनी प्रसन्नता के लिए किसी वस्तु, व्यक्ति का आश्रय न लो। देह के भीतर मन को देखो, मन के भीतर अहंकार को देखो, अहंकार के भीतर आत्मा का अनुभव करो, तभी साक्षी द्रष्टा होकर दृश्य के सम्बन्ध से मुक्त हो सकते हो ।

प्रश्न–पाप कर्म करते हुए भी पापी उसका फल भोगते हुए क्यों नहीं दिखते ?

उत्तर–पापकर्म दूध की तरह तत्काल नहीं जम जाता। वह अग्नि की तरह तत्काल नहीं जलाता। वह तो उस विष बीज की तरह है जो धीरे–धीरे भीतर से जीव को घेरता आता है और कभी न कभी समग्र अहंकार को दुख–भोग से जकड़ देता है। पाप घड़े में गिरते हुए जलधारा के समान है कि कुछ समय तक कुछ पता नहीं चलता, पर घड़ा भर जाने पर बाहर चारों ओर से प्रकट होकर भिगो देता है।

प्रश्न–सबसे अधिक सरल पुण्य कर्म क्या है ?

उत्तर–बड़ों को नम्रतापूर्वक नमन करो, अभिवादनशील बनो, वृद्धों की सेवा करो, यह सरल पुण्य कर्म है। इससे आयु की, बल की, सुख की और सुन्दर वर्ण की वृद्धि होती है ।

प्रश्न–मृत्यु के पश्चात् जमदूतों, देवदूतों का ले जाना क्या सत्य है ?

उत्तर–इसका पता तो मृत्यु के पश्चात् स्वयं ही लग जायगा। यदि विश्वास कर सकते हो तो मृत्यु के पश्चात् तुम्हारे दुष्कर्मों अथवा सत्कर्मों के पीछे रहनेवाले भाव एवं विचार ही भयानक जमदूतों या मनोहर सुन्दर देवदूतों के रूप में तुम्हारे साथ होंगे। तुम अपने पाप कर्मों के पीछे रहने वाले विचारों की ही भयानक आकृतियों से स्वयं को बँधा हुआ पाओगे और पाप कर्मों से बचकर तुम पुण्य कृत्यों के पीछे रहने वाले विचारों को दिव्य रूपों से आदर मान पाते हुए अपने को देखोगे। मनुष्य के दुर्भाव–दुर्विचार ही उसे बाँधकर दण्ड देने वाले जमदूत हैं और मनुष्य के सद्भाव सद्विचार ही उसे स्वर्ग ले जाने वाले दिव्य दूत हैं। भुवर्लोक में विचारों के ही रूप दिखते हैं।

प्रश्न–हम पाप को कैसे पहिचानें ?

उत्तर–जब देह में पाप का अधिकार होता है तब देह द्वारा हिंसा,चोरी, व्यभिचार, अभक्ष्य भक्षण रूप में पाप कर्म बनते हैं। जब वाणी पाप सिद्ध होती है तब झूठ बोलना, कठोर वाक्यों का प्रयोग करना, दूसरों की निन्दा करना, असंगत वचन बोलना ही सहज स्वभाव पाप स्वरूप होता है। जब

मन पाप से घिर जाता है तब परधन हरण का संकल्प, दूसरे का अनिष्ट चिन्तन, न करने योग्य दुष्कर्म का मनन तथा पर–स्त्री चिन्तन रूपी पाप में मन डूबा रहता है।

प्रश्न–पापों से बचने का उपाय क्या है ?

उत्तर–पुण्यवानों का प्रीतिपूर्वक संग करते हुए जितना भी हो सके धीरे–धीरे पुण्य कर्म को ही पूर्ण करो। तन से, वाणी से, मन से वही करो जिससे दूसरों का हित हो, दूसरों को सन्तोष हो तथा सुख हो । जहाँ तक हो सके तन से जीवों की रक्षा करो सुख दो, हाथों से दान करो, सदाचार को पूर्ण करो सेवा में श्रमी बनो। वाणी से प्रिय, मधुर, सत्य वचन बोलो, सद् चर्चा करो किसी के सद्‌गुणों को प्रकट करो, मितभाषी बनो। मन से परमात्मा की महानता, विशालता, व्यापकता, करुणा आदि दिव्यगुणों का मनन करो। दूसरों के हित का उपाय सोचो, कर्त्तव्य का निर्णय करो, शुभ संकल्प करो। पुण्य कर्म तभी कर सकोगे जब पाप के कोप को या वेग को वश में कर सकोगे और पुण्य के दृढ़ संकल्प द्वारा ही पाप के वेग को वश में कर सकोगे। सफलता के लिए अभिमान छोड़कर दीन होकर समर्थ प्रभु की चेतना में शान्त होकर शरण लो, कर्ता होने का अभिमान न करो।

प्रश्न–सर्वहित चाहते हुए हम क्यों नहीं कर पाते ?

उत्तर–जो सुखासक्त है, काम क्रोध को नहीं जीत सका है, जिसका चित्त भ्रान्त है जिसकी बुद्धि संशय से ग्रस्त है तथा जो आलसी है वह अपना ही हित नहीं साध पाता तब दूसरों का हित कैसे साधेगा ? यदि सर्व हितैषी होना चाहते हो तो आलस्य को छोड़कर परिश्रमी बनो। क्रोध में न होकर क्षमाशील बनो। गुरू ज्ञान से संशय को नष्ट कर दो। काम में दुरूपयोगित शक्ति को ऊर्ध्वमुखी बनाते हुए प्रेम में बदल दो । भ्रान्तचित को सम्यक् विवेक से शान्त कर लो, तभी अपना हितपूर्ण होगा। इसके पश्चात् ही सर्वहितकारी प्रवृत्ति स्वभाव बन जायगा। काम, क्रोध, आलस्य, संशय, भ्रान्ति यह पाँच आवरण में यदि एक भी आवरण शेष रहेगा तो पर हित में बाधक बनेगा ।

प्रश्न–सद्‌गृहस्थ के कौन–कौन सुलक्षण हैं ?

उत्तर–सद्‌गृहस्थ वही है जो असत् वस्तु का मोही नहीं है। क्षणिक सुखों का कामी नहीं है। विनाशी धन का लोभी नहीं है। अनाधिकार

सुखोपभोग का व्यभिचारी नहीं है। सद्गृहस्थ वही है जो मन का दास नहीं है। जिसे सत्कर्म में, धर्माचरण में, तप, त्याग, दान में भय नहीं लगता है। जो द्वेष, क्रोध, लोभ के वश में नहीं होता। जो पाप से डरता है पुण्यकर्मी होता है।

वही सद्गृहस्थ है, जो माता–पिता का काम आदरपूर्वक करता है, परिवार समेत माता–पिता का भरण–पोषण करता है, माता–पिता की सम्पत्ति का सदुपयोग करता है, कुल की पद्धति के अनुसार शुभ कर्म, देवपूजा करता है। पूर्वजों के लिए श्रद्धापूर्वक दान–पुण्य करता है, आचार्य, गुरू को देखकर खड़े होकर नमस्कार करता है, गुरु की दुखद परिस्थिति में सहायता देता है, श्रद्धापूर्वक सदुपदेश सुनता है। गुरु आज्ञानुसार विवेकपूर्वक परमार्थ सिद्धि प्राप्त करता है।

वही सद्गृहस्थ है, जो पत्नी का अपमान न करके मान देता है। पत्नी के प्रति प्रीति का भाग किसी अन्य नारी को नहीं देता है। परस्पर मिलकर सेवा–त्याग और प्रेम को पूर्ण करता है। परिवार की आवश्यकताओं को पूर्ण करता है।

वही सद्गृहस्थ है, जो बन्धु बान्धवों की भी सामयिक सेवा करता है, देने योग्य वस्तु बिना माँगे ही देता है, जो मधुर वचनों से सबको प्यार और मान देता है, जो परस्पर किसी से छल–कपट नहीं करता है, सबके प्रति अधिकारानुसार समान भाव से न्याय करता है।

वही सद्गृहस्थ है, जो सेवकों से उनकी शक्ति देखकर ही काम लेता है, उनके बीमार होने पर औषधि उपचार का प्रबन्ध करता है, विशेष अवसर पर सेवकजनों को भोजन कराता है, यात्रा में कहीं सत्कार पाते हुए सेवकों की सुविधाओं का भी ध्यान रखता है, विशेष कार्यों में सेवकों को उचित पुरस्कार देता है।

वही सद्गृहस्थ है, जो आचार्य, साधु–सन्तों का शरीर से आदर करता है। वाणी से मान देता है। मन से श्रद्धा रखता है, भिक्षा देकर उन्हें सन्तुष्ट करता है। साधु–सन्तों के निर्वाह के लिए पात्र–वस्त्रादि का प्रबन्ध करता है।

तुम सद्गृहस्थ हो तो अपने दोषों का निरीक्षण करते रहो और उन्हें छोड़ते जाओ दान में कहीं प्रमाद न करो। न्याय पूर्वक धनोपार्जन में श्रमी

रहो। व्यवहार में संयमी रहकर विवेकपूर्वक कर्त्तव्य का पालन करो। जो मनुष्य सद्गृहस्थों का आचरण नहीं करता वही जंगली पशु–पक्षियों की भाँति गृहस्थ हो सकता है। पर सद्गृहस्थ मानव नहीं होगा ।

प्रश्न–चाहते हुए भी द्वेष का पूर्ण त्याग और सभी से मैत्री भाव क्यों नहीं होता ?

उत्तर–प्रथम तो चाह ही पूर्ण नहीं है, पुनः जब तक भीतर लोभ है, किसी अंश में द्वेष है या किसी से मोह है तब तक सभी के प्रति मैत्री भाव और द्वेष का पूर्ण अभाव नहीं हो सकता। मोही, लोभी, कामी, अहंकार, छोटे से परिवार में ही भेदभाव एवं द्वेषादि विकारों का त्याग नहीं कर पाता।

यदि तुम द्वेषादि विकारों से मुक्त होकर सभी के प्रति प्रीति पूर्ण करना चाहते हो तो आरम्भ में क्षमा एवं सहिष्णुता को धारण करो, क्रोधावेग आने पर मौन रहो। कटु वाक्य न कहो, तब क्रोध रूप आग जहाँ जलेगी वही बुझ जायेगी, आगे न बढ़ेगी। काम–क्रोध के वेग को रोक लेने वाला ही वीर साधक है। जो क्रोध करने पर क्रोध नहीं करता, द्वेषी के प्रति द्वेष नहीं करता, वह स्वतंत्रतापूर्वक बहुत बड़े मानस युद्ध में विजय प्राप्त करता है।

जो अपने द्वेषी, क्रोधी को क्रोधान्ध देखकर स्वयं उसी की भाँति अन्धा नहीं होना चाहता, वही क्रोध तथा द्वेष का उत्तर क्रोध द्वेष से न देकर अपना हित तो साधता ही है किन्तु प्रतिपक्षी का भी हितैषी हो जाता है। तुम्हारे सच्चरित्र की, धैर्य की, उदारता एवं प्रीति पूर्ण हृदय की अथवा विवेक की परीक्षा उसी समय होती है जब कोई अपमान करता है, कटु वाक्य कहता है, निन्दा करता है, उस समय तुम शान्त हो, नम्र हो, प्रसन्न हो तो दैवी सम्पत्ति के धनी हो ।

प्रश्न–मृत्यु का भय कैसे छूट सकता है ?

उत्तर–जीवन को जान लेने पर मृत्यु का भय नहीं रहता । वास्तव में मृत्यु का भय नहीं होता, कुछ छूटने का भय रहता है।

जीवन वही है जिसे मृत्यु छू नहीं पाती है। मृतक वही है जो कभी जीवन नहीं पाता। जीवन के संग से जो मृत है वह जीवित–सा प्रतीत होता है। मिट्टी की देह सदा मृतक ही है, जीवन सदा जीवित ही रहता है।

देह का जन्म, जीवन का प्रारम्भ नहीं है। मृत का सम्बन्ध विच्छेद जीवन का अन्त नहीं है। नित्य जीवन का बोध ही मृत्यु के भय से मुक्त कर देता है।

जीवन को न जानने तक ही भय रहता है। भय से ही संघर्ष, संग्रह, परिग्रह, आग्रह, दुराग्रह, हिंसा और तृष्णा की प्रवृत्ति चलती रहती है।

जीवन के अज्ञान में ही मृत से राग होता है, राग से काम, काम से ही भोगेच्छा, इच्छा से ही लोभ, तृष्णा उत्पन्न होती है। विनाशी से सम्बन्ध रहने तक भय रहता है। अविनाशी की योगानुभूति में भय की समाप्ति है।

प्रश्न–हम आचार्य किसे मानें ?

उत्तर–जो अनाचार, दुराचार, व्यभिचार से दूर रहकर सदाचार में तत्पर है, जो धर्माचरण से विचलित नहीं होता जिसे वेद शास्त्र की सम्यक् जानकारी है, जो सत्य धर्म प्रवचन में कुशल है, जो अविद्या–पाश से मुक्त है, जो प्रतिकूलता में सम, शान्त, स्थिर बुद्धि से युक्त है, उसी को आचार्य समझना चाहिए ।

प्रश्न–पूर्ण संयमी किसे समझें ?

उत्तर–जो वृत्ति को विषयाकार, देहाकार न होने दे वही पूर्ण संयमी है। देहेन्द्रियों के साथ भोगी न बनकर बुद्धियोगी होना संयम है।

जो किसी वस्तु–व्यक्ति से प्रभावित न हो किसी की ओर रसास्वादन के लिए आकर्षित न हो, वही संयमी है।

जो आलस्य, इन्द्रियलोलुपता, विलासिता को कहीं स्थान न देता हो वही संयमी है।

प्रश्न–जगत्गुरुपद का अधिकारी कौन हो सकता है ?

उत्तर–जो जगत् से मान, धन, भोग न चाहता हो वही जगत् गुरु है। जो किसी कामना–वासना की पूर्ति का पक्ष न लेकर द्वन्द्वों में सम शान्ति से युक्त रहता हो वही जगत् गुरु है। जिसके संगोपदेश से लघुता दूर होकर गुरुता आती हो वही जगत् गुरु है।

प्रश्न–जीवन में पूर्णता कैसे प्राप्त होती है ?

उत्तर–विनाशी वस्तुओं से आशा एवं सम्बन्ध न रखने पर ही जो निरन्तर पूर्ण है उसके नित्य सम्बन्ध की अनुभूति होती है। अपूर्ण के भोग में अपूर्णता है, पूर्ण के योग में ही पूर्णता है। जो जीवन के केन्द्र में शान्त है और परिधि में होने वाले कर्मों को द्रष्टा होकर देखता है उसे पूर्णता उपलब्ध होती है।

जीवन के बाहर गति दुर्गति का भोग है, जीवन के अन्तराल में विश्राम है, शान्ति है, वही पूर्णता है। अहंकार में विनाशी के संयोग का सुख है, वियोग का दुख है, अहंकार के जाते ही पूर्णता के योग में अखण्ड आनन्द है।

प्रश्न–अहंकार का अन्त कैसे सम्भव है ?

उत्तर–अनन्त चैतन्य सिन्धु में अहंकाररूपी बिन्दु को देखने से ही वह उसी में लीन दिखता है। अज्ञान में ही अहंकार की सीमा है। ज्ञान में ही सीमा असीम में विलीन होती है।

अहंकार जब शब्द स्पर्शादि विषयों को ग्रहण करता है तब इन्द्रियों में होता है। अहंकार जब सुख दुःख का भोगी बनता है तब मन में होता है। अहंकार जब भोग के परिणाम को देखता है तब बुद्धि में होता है, अहंकार जब कुछ नहीं करता, कुछ नहीं देखता, कुछ भी नहीं चाहता तब आत्मा में होता है।

प्रश्न– अपने श्रद्धेय गुरू के अतिरिक्त अन्य सन्तों से उतना प्रेम क्यों नहीं होता ?

उत्तर–गुरु के तत्त्वतः ज्ञानस्वरूप को न जानने के कारण मन से नाम रूपमय गुरु को अपना मानने के कारण अन्य नाम रूप–मय गुरू से प्रेम नहीं होता। प्रेम वास्तव में एक ही से होता है एक से नाता रखने वाले से अनेक की सेवा तो हो सकती है, स्नेह किया जा सकता है, किन्तु वह सब कुछ एक को ही सन्तुष्ट रखने के लिए होता है। प्रेमी एक को ही अनेक में देखता है। और ज्ञानी एक से ही अनेक नामों रूपों को प्रकाशित देखता है ।

प्रश्न–एक नाम, रूप में गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा का क्या फल है ?

उत्तर–अपने श्रेद्धय से जब अपूर्ण के संयोग भोग की कामना नहीं रह जाती तब श्रद्धा पूर्ण योग का साधन बन जाती है। नाम रूप विनाशी है,

नाम–रूप–मय ज्ञान स्वरूप गुरुतत्व अविनाशी है। श्रद्धालु, जब विनाशी नाम रूप में अटक कर जगत् के विनाशी, नाम–रूप वाली वस्तुओं का संयोग भोग चाहता है तब तक वह भोगी ही बना रहता है किन्तु नाम रूप की सीमा को पार कर जाने वाला अविनाशी गुरुतत्व का योगी हो जाता है । भोगी अहंकार नित्य योग का अधिकारी नहीं हो पाता। श्रेद्धय गुरु के संग से जब अहंकार की कुरूपता का अर्थात् प्रकृति विकृति का ज्ञान में दर्शन होता है तब सम्यक् कृति द्वारा शुद्ध अहंकार का त्याग कर योग द्वार में प्रवेश पाता है ।

प्रश्न–**एक ही सन्त में सबकी श्रद्धा क्यों नहीं होती?**

उत्तर–मन की अनुकूलता भिन्न–भिन्न होती है। लोभी व्यक्ति उसी महात्मा पर श्रद्धा करेगा जिसके आशीर्वाद से धन प्राप्त होने की आशा होगी। मोही तथा कामी उसी पर श्रद्धा करेगा जो बाह्य आकृति में दर्शनीय होगा, व्यसनी उसी पर श्रद्धा करेगा जिसके साथ रहने में उसके दुर्व्यसन की पूर्ति हो। विचारवान उसी पर श्रद्धा करेगा जो शास्त्रों का विद्वान होगा। ऐश्वर्य वैभव सम्पन्न व्यक्ति उसी पर श्रद्धा करेगा जो कोई चमत्कार दिखाकर अपनी सिद्धि का परिचय देगा। प्रभु का प्रेमी उसी पर श्रद्धा करेगा जो भगवद् प्रेम में डूबा हुआ सन्त होगा। विचारक जिज्ञासु उसी पर श्रद्धा करेगा जिससे सम्यक् समाधान होगा।

प्रश्न–**अन्धविश्वास युक्त श्रद्धा से क्या कोई उन्नति नहीं होगी ?**

उत्तर–जहाँ तक किसी में श्रेष्ठ मानकर श्रद्धा है वहाँ तक नम्रता, उदारता सेवा की रूचि आदि अनेक सद्‌गुण बढ़ेंगे । श्रद्धा यदि अश्रद्धा में न बदले तब तो उन्नति ही होगी ।

प्रश्न–**कदाचित् दोषी साधु महात्मा मिल गया तो अश्रद्धा कैसे न होगी ?**

उत्तर–यदि अपनत्व भाव से पूजा के साथ प्रगाढ़ प्रीति होती है तब दोष दीखने पर दोष निवृत्ति की चेष्टा तो होती है लेकिन अश्रद्धा नहीं होती। जिसके भीतर जो दोष या गुण होते हैं वही संग से प्रगट होते हैं निष्काम प्रेम में घृणा आदि विकार नहीं होते ।

प्रश्न–आसक्ति कैसे छूटती है ?

उत्तर–सेवा धर्म की पूर्णता से आसक्ति विरक्ति में बदल जाती है। स्वेच्छापूर्वक भोग से आसक्ति बढ़ती है प्रीतिपूर्वक निष्काम सेवा से विरक्ति आ जाती है। भोग में ही दुरूपयोग है । निष्काम प्रीतिपूर्वक प्राप्त के द्वारा सेवा करना सदुपयोग है। कुसंग के प्रभाव से भोग का संकल्प सभी मनुष्यों में होता है । सुसंग के प्रभाव से सदुपयोग का दृढ़ संकल्प किसी पुरुषार्थी साधक में ही होता है ।

प्रश्न–प्रारब्ध कैसे बनता है ?

उत्तर–वर्तमान में किये गए कर्म का फल, जो कभी भोगना ही होगा वही प्रारब्ध है। जो प्रारब्ध कर्म कल तुम्हारा स्वामी होगा, उसके आज अभी तुम स्वामी हो। जो प्रारब्ध कर्म आज तुम्हारा स्वामी है उसके स्वामी तुम कल थे। वर्तमान में ही भविष्य का प्रारब्ध बनता है ।

प्रश्न–कोई निर्धन और कोई बहुत धनी क्यों है ?

उत्तर–जो दूसरों की दी हुई वस्तुओं तथा सम्पत्ति को भोगता है परन्तु दूसरों को कुछ देता नहीं है, वही निर्धन होता है। जो अपने अधिकार की वस्तुओं का दूसरों को, सुपात्र को दान करता है वही धनी होता है ।

प्रश्न–सेवा करते हुए कभी–कभी नीरसता, खिन्नता क्यों आती है?

उत्तर–सेवक में जब तक कामना अथवा लोभ या मान की इच्छा होती है तभी बाधा पड़ने पर प्रतिकूलता या हानि या अनादर की वेदना से नीरसता, खिन्नता आती है। कोई–कोई साधक नीरसता से खिन्न हो जाते हैं। उनके भीतर कुछ पाने की, कुछ नवीन देखने की, कहीं जाने की या किसी से मिलने की चाह, नीरसता उत्पन्न करती है। लोभी–मोही व्यक्ति ही शोकग्रस्त होता है। जो निरन्तर सन्तुष्ट रहकर प्रेम में ही प्रसन्न रहता है वही नीरसता के आक्रमण से बच पाता है।

प्रश्न–अपने को मन से कैसे असंग करे ?

उत्तर–अपने में कुछ रखकर अपना स्वीकार कर लेना ही संग है। अपना कुछ न मानकर शून्य हो जाना ही असंग होना है। किसी वस्तु व्यक्ति को अपनी मानने का अभ्यास हो गया है, इस अभ्यास को अगणित

बार दोहराया गया है, उसी प्रकार प्रत्येक सम्बन्धित वस्तु व्यक्ति को अपनी न मानने का अभ्यास दोहराते रहने से संगाभ्यास मिटकर असंगता आ जाती है।

प्रश्न–साधना अभ्यास में दृढ़ता कैसे हो ?

उत्तर–दृढ़ता के लिए दृढ़ संकल्प आवश्यक है ।

दृढ़ संकल्प के लिए शक्ति आवश्यक है ।

शक्ति के लिए संयम आवश्यक है ।

संयम के लिए अनर्थ और व्यर्थ का त्याग आवश्यक है ।

त्याग के लिए सार्थक एवं सत्य के प्रति प्रेम आवश्यक है ।

प्रेम के लिए सार्थक एवं सत्य का विवेक आवश्यक है ।

विवेक के लिए सन्त संग आवश्यक है ।

सन्त संग के लिए श्रद्धा आवश्यक है।

श्रद्धा के लिए निर्दोष बुद्धि आवश्यक है ।

निर्दोष बुद्धि के लिए मन का प्रीतियुक्त होना आवश्यक है ।

प्रीतियुक्त होने के लिए पूर्ण अपनत्व भाव आवश्यक है ।

पूर्ण अपनत्व के लिए कामना अथवा स्वरूचि का त्याग आवश्यक है ।

प्रश्न–मनुष्य का पुरुषार्थ क्या है ?

उत्तर–पुरुषार्थ के माने हैं पुरुष का लाभ। पुरुष का सच्चा लाभ वही कहा जाएगा जो हानि से घिरा न हो, इसलिए पुरुष का अन्तिम लाभ है पूर्णता की प्राप्ति । जहाँ किसी प्रकार की कमी का दुख न हो वही पूर्णता है।

प्रश्न–पुरुषार्थ की सिद्धि कैसे होती है?

उत्तर–वर्तमान में जो शक्ति, सम्पत्ति योग्यता तथा समय सुलभ है उसके सदुपयोग से पुरूषार्थ की सिद्धि होती है ।

जो कुछ भी जीवन के साथ शक्ति समय आदि सुलभ है उसके सदुपयोग के लिए कर्त्तव्याकर्त्तव्य धर्माधर्म एवं पाप व पुण्य का निर्णय करने वाले विवेक की परम आवश्यकता है।

विवेक की जाग्रति के लिए श्रद्धा, सन्त संग और स्वाध्याय की आवश्यकता है ।

पुरुषार्थ की भौतिक सिद्धि प्रकृति की अनुकूलता से होती है। आध्यात्मिक सिद्धि परमात्मा की कृपा से तथा उपासना से होती है

प्रश्न–**आत्म कल्याण का सुलभ साधन क्या है ?**

उत्तर–जो कुछ जीव को देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता आदि प्राप्त हैं, जिसके उपयोग में स्वाधीनता है वही सुलभ साधन है ।

प्रश्न–**कीर्तन, जप, पाठ, पूजा, आदि क्या कल्याण के साधन नहीं हैं ?**

उत्तर–जप, कीर्तन, स्मरण, चिन्तन आदि सुलभ साधनों की शुद्धि के साधन हैं।

प्रश्न–**साधनों की अशुद्धि क्या है** ?

उत्तर–देह के द्वारा हिंसा, चोरी, व्यभिचार करना देहरूपी साधन की अशुद्धि है। झूठ बोलना, पर निन्दा करना, व्यर्थ चर्चा करना, कठोर वचन बोलना, वाणी रूपी साधन की अशुद्धि है अर्थात् इन्द्रियों के विषयों में सुख मानते हुए विषयाशक्ति बढ़ाते जाना इन्द्रियरूपी साधन की अशुद्धि है। इसी प्रकार मन द्वारा सम्बन्धित वस्तुओं व्यक्तियों को प्रीतिपूर्वक अपना मानकर मोहलोभादि विकार बढ़ाना मनरूपी साधन की अशुद्धि है। बुद्धि द्वारा सत्य तत्व को न जानकर असत् वस्तुओं का ही उपार्जन करते रहना बुद्धिरूपी साधन की अशुद्धि है। प्राप्त शक्ति का क्षणिक सुखोपभोग में दुरुपयोग करना शक्तिरूपी साधन की अशुद्धि है। योग्यता द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए छल, कपट, दम्भ, पाखण्ड करना योग्यता रूपी साधन की अशुद्धि है।

प्रश्न–**साधनों की अशुद्धि कैसे दूर हो ?**

उत्तर–विवेकपूर्ण साधनों के सदुपयोग से अशुद्धि दूर हो सकती है।

प्रश्न–साधनों का सदुपयोग कैसे करें ?

उत्तर–शरीर द्वारा सेवाकार्यों में श्रम करना, दुःखी जीवों की यथाशक्ति रक्षा करना, हाथों के द्वारा दान देना आदि शुभ कर्म करते रहना शरीर रूपी साधन का सदुपयोग है ।

इन्द्रियों के बल द्वारा दूसरों के काम आना, अर्थात् सेवा करना एवं सम्यक् बोलना, सम्यक देखना, सम्यक सुनना आदि इन्द्रियों रूपी साधन का सदुपयोग है ।

मन द्वारा परमात्मा को ही प्रीतिपूर्वक अपना सर्वस्व मानना, उन्हीं को स्मरण रखना मनरूपी साधन का सदुपयोग है।

बुद्धि द्वारा सृष्टि एवं सृष्टि के रचयिता के विषय में यथार्थ जानकारी प्राप्त करना बुद्धिरूपी साधन का सदुपयोग है। शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता के द्वारा सेवा, सदाचार, दोषों का त्याग एवं प्रेम को पूर्ण कर लेना ही इन साधनों का सदुपयोग है। साधनों की सेवा में सदुपयोग एवं सद्विचारों में सदुपयोग करने से अशुद्धि निवृत्त होकर शुद्धि हो जाती है ।

प्रश्न–दान का सुपात्र किसे माना जाये ?

उत्तर–जो मिले हुए का अपने निर्वाह में उपयोग करे उसका भोगी न बने और बच जाने पर दूसरों को देते हुए प्रसन्न रहे। जो उत्तम कुलीन हो सदाचारी हो, विद्वान हो, स्वावलम्बी हो, दयालु हो, कर्त्तव्यपरायण हो आस्तिक हो वही सुपात्र है।

प्रश्न–कितना भाग दान करना चाहिए?

उत्तर–कुटुम्ब के भरण पोषण से जो अधिक हो वही दान करने योग्य है। जो धन प्राप्त हो उसका दसवाँ भाग देने का विधान है। जो अपनी आवश्यकता से अधिक हो, उसे ही दूसरों की आवश्यकता पूर्ति के लिए देश काल पात्र का विचार रखते हुए दान करना धर्म दान है। इसी प्रकार लोभवश दान, कामासक्त होकर दान, लज्जित होकर दान, भयातुर होकर दान और हर्षित होकर दान – यह दान के छः भेद हैं। दान में भेद होने से फल में भी भेद होता है ।

प्रश्न–दान न करने से क्या हानि है ?

उत्तर–जो दान नहीं करते वह लोभवश आगे चलकर मूर्ख होते हैं रोगी होते हैं, दूसरों के सेवक बनकर दुखी होते हैं। भिखारी बनते हैं। दरिद्रता से पीड़ित रहते हैं ।

प्रश्न–दान से क्या लाभ है ?

उत्तर–धर्मपूर्वक दान करने वाले लाभ के लोभी न रहकर उदार होते हैं, श्रद्धा आदि दैवी गुणों के धनी बनते जाते हैं, शरीर से निरोग होते हैं, अनुकूलता से सुविधाओं से सुखी रहते हैं, धनी कुल में जन्म लेते हैं और विरक्त होते जाते हैं।

प्रश्न–दान का फल लोक–परलोक में कैसे मिलता है ?

उत्तर–श्रेष्ठ पुरुषों को सात्त्विक धर्म दान का फल परलोक में मिलता है। अविवेकी लोभी, मोही, कामी के दान का फल इस लोक में मिलता है। जो देकर पश्चात्ताप करता है, जो अपात्र कुपात्र को देता है अश्रद्धापूर्वक देता है, उसे कहीं भी दान का फल नहीं मिलता है। जो कुछ देता है उसके संग्रह की चिन्ता से मुक्त हो जाता है, इतना ही लाभ होता है। तमोगुणी दान का फल कामोपभोग की सुविधा है। रजोगुणी दान का फल धन और मान की प्राप्ति है। सतोगुणी दान का फल भोगों से विरक्ति और दैवी सम्पत्ति की प्राप्ति है।

प्रश्न–भिखमंगों को दान देना चाहिए या नहीं ?

उत्तर–भिखमंगों को अन्न की भीख तो देनी चाहिए परन्तु दान में संकल्प की हुई सम्पत्ति तो विद्वान् सन्तोषी, सदाचारी सद्गुणों से सम्पन्न ब्राह्मण को ही देना चाहिए ।

श्रम करते हुए जो परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य धन नहीं कमा पाते उनकी आवश्यकता पूर्ति के लिए सहायता करनी चाहिए। आलसी, विलासी, हिंसक, क्रोधी धर्म विमुख दान का पात्र नहीं होता।

प्रश्न–सेवा सहायता का सुपात्र कौन है ?

उत्तर–बालक, विद्यार्थी, रोगी, वृद्ध, विरक्त, संन्यासी, समाज–सेवक, अभाव ग्रस्त परिश्रमी, निराश्रित आर्तनारी, अतिथि, आगन्तुक व्यक्ति यह सब सहायता सेवा के सुपात्र हैं। इन्हें धन न देकर इनकी सामयिक

आवश्यकता की पूर्ति करनी चाहिए। आवश्यकता की पूर्ति से शरीर का निर्वाह होता है, इच्छा की पूर्ति से भोग होता है, अभाव पीड़ित की सेवा करना हो तब उसके निर्वाह के लिए आवश्यकता की पूर्ति करो। भोगी की सेवा करना हो तो उसकी इच्छाओं की पूर्ति करते रहो। रोगी की सेवा करते हुए उसके हित–अहित का ध्यान रखकर शक्ति–सम्पत्ति द्वारा उसका उपचार करो। साधक की सेवा करते हुए उसकी साधना में बाधक आहार विहार, व्यवहार से बचाते हुए उसकी सुविधा का ध्यान रखो, गुरू की सेवा में सदैव आज्ञापालन में तत्पर रहो ।

प्रश्न–पितरों को पिण्डदान दिया जाता है क्या उनकी देह होती है ?

उत्तर–पितरों का शरीर पाँच तन्मात्रा तथा मन, बुद्धि चित्त अहंकार से बना है। देवता पितर सदा गन्ध से और रस से तृप्त होते हैं, श्रद्धा से नित्य पितर तृप्त होते हैं।

प्रश्न–अक्षत, तिल, कुश के साथ तर्पण दान क्यों दिया जाता है ?

उत्तर–देवताओं को अक्षत चावल के साथ, पितरों को तिल जल कुश के साथ जो कुछ संकल्प किया जाता है वह देवता ही पाते हैं, दैत्य नहीं पाते। यदि अक्षत चावल, तिल कुश, जल का सुयोग न हो तब दैत्यों का अधिकार होता है ।

प्रश्न–ब्राह्मण को भोजन कराने से पितरों की क्षुधा क्यों शान्त होती है ?

उत्तर–स्थूल शरीर स्थूल भोजन से तृप्त होता है, सूक्ष्म अर्थात् लिंग शरीरधारी जीवात्मा मन से तृप्त होता है जिस प्रकार मनुष्य सो जाने पर मिठाई का स्वाद लेकर तृप्त होता है जब तक जागता नहीं है तब तक स्वप्न में दुःख–सुख दोनों का भोग होता है, उसी प्रकार स्थूल शरीर धारण न करने तक सूक्ष्म देह द्वारा अनुकूल–प्रतिकूल का भोग होता है, इसीलिए श्राद्ध–तर्पण का विधान है ।

प्रश्न–मृत प्राणी को क्या दान का फल प्राप्त होता है ?

उत्तर–देह सदा मुर्दा ही है वह चेतन नहीं है और चेतन सदा ही जीवित है वह कभी मृत नहीं है। जीवन वही है जिसे मृत्यु नहीं छू पाती

इसीलिए देह त्यागकर जाने वाले जीवात्मा को दान का फल प्राप्त होता है। दान की वस्तु यदि सुन्दर होती है तब उसे विशेष तृप्ति होती है, यदि दान दिया हुआ वस्त्र छोटा होता है तब उसे भी वह नहीं पहनने योग्य छोटा प्रतीत होता है, जो कुछ नहीं दिया जाता उसी के अभाव से वह दुखी, अशान्त रहता है। जो दिया जाता है उसी का भोगी बनता है।

जो देह के रहते ही स्वयं दान कर लेता है, उसे दूसरे दान की अपेक्षा नहीं रहती, जो यहाँ देता है वही परलोक में अपने साथ पाता है, जो कुछ आवश्यक वस्तु नहीं देता उसी के अभाव से दुखी होता है। दान करने वाले को सुखोपभोग की वही सामग्री दूसरे जन्म में भी सुलभ होती है। तीर्थों में तप करने वाले को केवल सुख सुलभ रहता! सामग्री की कमी रहती है, अन्नदान, जलदान, वस्त्रदान, स्वर्णदान, पात्रदान, भूमिदान, भवनदान, विद्यादान, मानदान, अधिकारदान, कन्यादान, आदि जो भी दिया जाता है वही आगे मिलता है। जो कुछ दो विधिवत् दो श्रद्धा से दो, सुन्दर रूप में दो, अधिक दो सरलतापूर्वक प्रेम से दो ।

प्रश्न–पुण्यवान सत्पुरुष के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर–जो सदा धर्माचरण में तत्पर है, जिनकी वाणी मधुर है, जो दान देने में सर्वत्र उदार है, निष्कपट, शुद्ध आचरण में प्रमादी नहीं है, जो गम्भीर है, गुरुजनों के प्रति विनम्र रहता है। जो दूसरों के गुण ग्रहण करने में सावधान है, जो शास्त्र ज्ञान प्रवीण है, जो सुन्दर आकृति और सौम्य प्रकृति वाला है, जो परमेश्वर में भक्ति भावना से युक्त है, वही सुलक्षण सम्पन्न आर्दश पुरुष है ।

प्रश्न–सन्त प्रवचन सुनते हुए भी विवेक क्यों नहीं होता ?

उत्तर–अनेक श्रोता श्रद्धालु तो अच्छे होते हैं, पर बुद्धि मन्द होने के कारण विचारक नहीं होते । वह केवल सत्चर्चा सत्कथा सुनते हुए सन्तुष्ट रहते हैं, विवेकी नहीं हो पाते जिस श्रोता का कोई लक्ष्य नहीं होता उस उद्देश्यहीन को विवेक नहीं हो पाता। जो ऐश्वर्य से, धन से, अधिकार के मद से उन्मत है, जो कामना से पीड़ित है, अभावों से दुखी है, जो अहंकार से मोह से विमूढ़ है उसे भी विवेक नहीं होता है।

प्रश्न–अहंकार किस प्रकार नष्ट होता है ?

उत्तर–किसी भी प्रकार जितना अधिक संग्रह होता है उतना ही अहंकार बढ़ता है। संग्रह छोड़ने से उसके दान से अहंकार सूक्ष्म होता जाता है । अहंकार को नष्ट नहीं करना है प्रत्युत उसे देखना है, देखने से वह कुछ मिलेगा ही नहीं ।

प्रश्न–सत्य के विषय में विचार करना क्या अनुचित है ?

उत्तर–विचारों की जहाँ समाप्ति होती है वही सत्य की अनुभूति का आरम्भ होता है ।

प्रश्न–दुःख की पूर्ण निवृत्ति और पूर्ण सुख की प्राप्ति कैसे हो ?

उत्तर–संसार में किसी प्रकार के सुख से दुख की निवृत्ति नहीं हो सकती और विनाशी वस्तुओं द्वारा कभी पूर्ण सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। पूर्ण परमात्मा के योग से ही सुख पूर्ण होगा और संसारिक सुखों की इच्छा के त्याग से ही दुःखों की पूर्ण निवृत्ति होगी ।

प्रश्न–मनुष्य पापों से मुक्ति कैसे पा सकता है ?

उत्तर–तत्वेता पुरुष आत्मज्ञान द्वारा सभी पापों से मुक्त हो जाता है । जो सांसारिक नाम रूपों में तथा सुखों में कहीं नहीं अटकता वही आत्मज्ञान से सम्पन्न होता है ।

प्रश्न–तत्त्वेत्ता के सुलक्षण क्या होते हैं ?

उत्तर–जो लौकिक या स्वर्गीय काम सुख में आसक्त नहीं रहता, जो निन्दा का, क्रोध का, कृपणता का, द्वेष का त्यागी होता है । जो अनुरोध विरोध नहीं करता । जो प्रिय अप्रिय में उदासीन रहता है । जो अनाश्रित है, निरपेक्ष रहता है । जो उपाधि से, ग्रहण से मुक्त रहता है जो धर्म परायण है जो तृष्णा से रहित है, संशय रहित है, अहिंसक है, जिसकी प्रज्ञा शुद्ध है। जो निर्विकार है वही तत्त्ववित् है।

प्रश्न–ईश्वर में विश्वास कैसे दृढ़ होगा ?

उत्तर–जब तक ईश्वर का ज्ञान नहीं होता तब तक ईश्वर के विषय में सुनकर विश्वास किया जाता है–यह विश्वास ईश्वर को मानकर होता है। स्वयं को ज्ञान में जान लेने के पश्चात् जो ईश्वर की अखण्ड सत्ता का बोध

होता है यही दृढ़ होता है। मान कर विश्वास और जान कर विश्वास में अन्तर है। प्रकाश के विषय में सुनकर विश्वास करने में और प्रकाश में आँखें खोल कर देखने में जो अन्तर है वही विश्वास और ज्ञान में अन्तर है ।

अज्ञान में विश्वास होता है ज्ञान में दर्शन होता है । दर्शन के साथ दृढ़ आस्था होती है । लोभी, मोही, अभिमानी और निर्लोभी, निर्मोही, निरभिमानी के विश्वास का फल भिन्न–भिन्न होता है। एक संसार से आसक्त रहता है, दूसरा विरक्त रहकर प्रभु में अनुरिक्त प्राप्त करता है ।

मनोमय पुरुष सुनकर विश्वास करता है । विज्ञानमय पुरूष दर्शन करता है। जो अज्ञानी रहकर विश्वास करते हैं उनकी भूल को समर्थ सम्हाल लेता है। ज्ञान में देखते हुए विश्वास रखने वालों में भूलभ्रम की निवृत्ति हो जाती है ।

प्रश्न–संसार में, समाज में, सर्वत्र–संघर्ष क्यों है ?

उत्तर–'मैं' के साथ 'मेरा' दिखना ही संघर्ष का कारण है। जहाँ तक लालच है वहाँ तक भय है और भय की सीमा में ही संघर्ष है ऐसी कोई वस्तु या व्यक्ति जो तुम्हें अपनी दिखती है वही दूसरे को भी अपनी दीखती है। तुम जिसे देखकर मेरा या मेरी मानते हो उसी को अनेक मेरा या मेरी मानते हैं, इसीलिए अधिकार के अभिमान तथा लोभ में परस्पर संघर्ष चलता है। संघर्ष से वही मुक्त होगा, जो परमात्मा के अतिरिक्त और किसी को मेरा नहीं मानेगा, जिससे मन में किसी प्रकार का लोभ नहीं रहेगा ।

प्रश्न–भगवान् ने यह अहंता ममता क्यों उत्पन्न की है ?

उत्तर–भगवान् ने नहीं, भगवान की विमुखता ने और जगत् की वस्तुओं के सम्बन्ध ने ममता अहंता उत्पन्न की है । कामना के कारण सम्बन्ध जुड़ गया है। निष्काम हुए बिना सम्बन्ध नहीं टूटता है और योगयुक्त हुए बिना निष्कामता नहीं आती ।

प्रश्न–पूर्ण अहिंसा धर्म का पालन कैसे सम्भव है ?

उत्तर–जगत् के लिए, समाज के लिए, परिवार के लिए जो कुछ आवश्यक है उस पर अधिकार न रखकर उसे, जब दूसरों की सहायता में देते रहोगे तब अहिंसा धर्म की पूर्णता होगी । संसार में सभी कुछ का

स्वामी परमेश्वर है उसे भूल कर जो किसी वस्तु का स्वामी बनकर अपनी मानता है वही हिंसक है । राग, द्वेष, लोभ, अभिमान, क्रोध के रहते हिंसा ही होगी । जिस किसी व्यक्ति के मन में अपनी इच्छा पूर्ति की उतावली है, जो परिणाम न देखकर लाभ को चाहता है, जो विचारहीन अपनी ही तृप्ति चाहता है वही अहिंसक नहीं हो सकता।

जब तुम सभी प्राणियों के अन्तर चेतना में प्रभु प्रेम को जानोगे, तब तुम प्रेम में तृप्त शान्त होकर निष्काम हो सकोगे । तब हिंसक न रहकर अहिंसा धर्म में दृढ़ रह सकोगे । प्रेम की पूर्णता में ही अहिंसा धर्म की पूर्णता सम्भव है । अहंकार की बनावट में हिंसा होती रहती है। आत्मा का बोध होने पर ही अहंकार का मिथ्यात्व दिखता है और पापों का नाश होकर प्रेम प्राप्त होता है। परमात्मा से पूर्ण प्रेम ही अहिंसा धर्म में प्रतिष्ठित रख सकता है। प्रज्ञा की जागृति हुए बिना प्रेम की प्राप्ति नहीं होती । जितना प्रेम शरीर पर है उतना ही प्रेम जब सभी प्राणियों में होगा तभी अहिंसा पूर्ण होगी ।

प्रश्न–**प्रेम की पूर्णता से क्या लाभ है ?**

उत्तर–प्रेम की पूर्णता में ही सबमें परिपूर्ण परमात्मा की अनुभूति होती है। प्रेम की पूर्णता में परम तृप्ति तथा पूर्ण योग के द्वारा विश्रान्ति सुलभ रहती है। प्रेम की पूर्णता में जगत् के द्वन्द्वों का प्रभाव नहीं पड़ता। किसी अन्य वस्तु व्यक्ति के सौन्दर्य ऐश्वर्य का आकर्षण नहीं रहता। भरपूर प्रेम में ही सेवा पूर्ण होती है, त्याग पूर्ण होता है, दान पूर्ण होता है ।

प्रश्न–**गीता में ज्ञान विज्ञान का क्या अर्थ है ?**

उत्तर–अनन्त नाम–रूपों में एक परमात्मा ही व्यापक है यह निश्चय, ज्ञान कहा जाता है । उसी परमात्मा की सतत् अनुभूति को विज्ञान कहते हैं । आग से भोजन बनाने की कला जान लेना ज्ञान है, आग से भोजन बना लेना विज्ञान है ।

प्रश्न–**ज्ञान**–**विज्ञान से युक्त होने की क्या साधना है ?**

उत्तर–ज्ञान–विज्ञान में अज्ञान एवं देहाभिमान ही बाधक है। बुद्धि को स्थिर करना और जो कुछ बुद्धि से जाना गया है उससे असंग होकर जिस प्रकाश में जाना गया है उस ज्ञान से अभिन्न होना–ज्ञान–विज्ञान

से युक्त होने की साधना है। अहंकार द्वारा ज्ञान–विज्ञान का सीमित भोग होता है और ज्ञान–विज्ञान द्वारा अहंकार को देख लेने पर अहंकार के स्थान में परमात्मा का योग होता है।

प्रश्न–जप कीर्तन पूजा पाठ आदि से काम क्रोधादि क्यों नहीं दूर होते ?

उत्तर–वाणी तथा हाथों से जप पूजा आदि साधना करते हुए जब तक धन में, स्त्री में आसक्ति रहती है तब तक हृदय मन निर्मल नहीं होता, अशुद्ध अन्तःकरण के भीतर काम क्रोधादि विकार रहा करते हैं और बाहर जप कीर्तन चलता है ।

प्रश्न–नाम जप की अथवा सुमिरन की महिमा क्या झूठी है?

उत्तर–महिमा तो सत्य ही है परन्तु जप स्मरण करने वालों में विधि की भूल होती है, भावना की कमी रहती है । ऊपर से जप चलता रहता है भीतर से विनाशी सम्बन्धित नाम रूपों का स्मरण चलता रहता है। स्मरण वही पूर्ण है जिसमें सब कुछ विस्मरण हो जाय ।

प्रश्न–अशिक्षित नर नारी जितनी श्रद्धा से पूजा पाठ करते हैं उतनी श्रद्धा से शिक्षित नर नारी क्यों नहीं करते ?

उत्तर–जितनी अधिक बुद्धि में जड़ता होगी उतने ही जड़ साधन प्रिय लगते हैं, इसीलिए बुद्धि योग की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए । शिक्षित विद्वान् दूर के साधनों को छोड़ता है, निकट की साधना को स्वीकार करता है । विद्वान् विचारवान क्रमशः बाहर स्थूल साधनों के द्वारा अभ्यास करते हुए उपराम होकर भीतर ही नाद में शून्य में मन को शान्त रखते हुए निश्िंचत होकर योगानुभाव करता है ।

प्रश्न–ईश्वर विश्वासी का कर्त्तव्य क्या है ?

उत्तर–जो ईश्वर को सर्वव्यापक होने का विश्वास रखता है उसे स्वयं में भी व्यापकता का अनुभव करना चाहिए।

सर्व में और स्वयं में अविनाशी ईश्वर को व्यापक होने के विश्वासी को अपने और दूसरों के नाम रूपों में आसक्ति ममता से मुक्त रहना चाहिए।

विश्वास की परिधि को विचार द्वारा देखते हुए अंत में विचार शून्य होकर ईश्वर की सत्ता का स्वयं में बोध प्राप्त करना चाहिए ।

अविनाशी आत्मा परमात्मा परमेश्वर पर विश्वास रखते हुए विनाशी वस्तुओं का रागी लोभी तथा कामी नहीं रहना चाहिए ।

ईश्वरीय विधान से स्वतः होने वाली प्रतिकूल घटना भी अमंगलमय अहितकारी नहीं हो सकती –ऐसा विश्वास रखकर शान्त सम रहकर घटना के मंगलमय परिणाम को देखना चाहिए–यही विश्वासी का हितकर कर्त्तव्य है ।

प्रश्न–विश्वास के द्वारा हानि क्या है ?

उत्तर–जिसे तुम जानते नहीं हो, उस पर विश्वास करके धोखा खा सकते हो। परमात्मा के होने पर विश्वास, उसकी पूर्णता पर विश्वास, उसके विधान को मंगलमय होने का विश्वास, उसकी अखण्डता अनन्तता पर विश्वास तो परम हितकर है परन्तु उससे स्वेच्छित धन पाने का, अधिकार, सम्मान पाने का, सब कुछ अनुकूल बने रहने का विश्वास कभी–कभी दुःखद होता है, प्रतिकूल होता है ।

परमेश्वर के स्थान में किसी व्यक्ति के तन पर, मन पर, उसके ऐश्वर्य वैभव पर विश्वास तथा किसी साधु सन्त को वरदाता, शापदाता होने का विश्वास हानिप्रद है । नित्य प्राप्त पर, सर्व समर्थ पर, अविनाशी पर, विश्वास न करके विनाशी नाम रूपों में विश्वास अति कष्टप्रद होता है । परम शुद्ध नित्य निर्विकार परमात्मा हमारे साथ चिन्मात्र सत्ता के रूप में निरन्तर विद्यमान है–ऐसा विश्वास उत्तम है। जब तक तुम ईश्वर को मन्दिर मूर्ति तीर्थ में तथा अवतरित नाम रूपों में विश्वास करते हुए स्वयं में ही उस अविनाशी प्रभु को आत्मा के रूप में अनुभव न करोगे तब तक कहीं भी बाहर विश्राम नहीं मिलेगा ।

प्रश्न–मनुष्य ही पशुमय और वही प्रभुमय कैसे होता है ?

उत्तर–अहंकार जब मन द्वारा विषय वृत्तियों से बँधा रहता है तब वह पशुमय होता है। जब बुद्धि द्वारा विचारक विवेकी बनता है तब वहाँ मानवता आती है।

जब विवेक के साथ द्रष्टा साक्षी होकर दृश्य को देखता रहता है भोक्ता नहीं रहता तब वही प्रभुमय हो जाता है ।

सभी इन्द्रियों की विषय वृत्तियाँ पाशविक हैं , विचार युक्त बुद्धि मानवीय है। विवेक की जागृति दिव्यता है ।

प्रश्न–विकारों से छुटकारा कैसे होगा ?

उत्तर–विकारों की जड़ें तो अचेतन मन में हैं परन्तु विकारों की निवृत्ति चेतन मन में देखना चाहते हो – यही भूल है । किसी विकार के साथ बाहर न आकर उसकी पूर्ति न करते हुए अचेतन मन के भीतर लौटकर ही जड़ों को काटा जा सकता है। इसके लिए अन्तर में साक्षी द्रष्टा होकर देखना होता है ।

प्रश्न–साधुवेष में असाधु को कैसे पहिचाना जाय ?

उत्तर–जो स्वस्थ है वही साधु है जो स्वयं अपने आप में स्थिर नहीं वह अस्वस्थ व्यक्ति ही असाधु है। जो इन्द्रियों को मन तथा क्रोधादि विकारों के वेगों को नहीं रोक पाता वही असाधु है। जो पराधीन है अशान्त है, चिन्तित है, भयातुर है, जो अहंकारवश कर्त्ता तथा भोक्ता बनता है, द्रष्टा नहीं हो पाता, वही असाधु है ।

प्रश्न–यथार्थ में सच्चा सुखी कौन है ?

उत्तर–जो शरीर छूटने के प्रथम ही शक्ति समय के रहते ही काम क्रोध के वेग को रोककर, शान्त, स्वस्थ रहता है वही सच्चा सुखी है, वही आत्मा से युक्त होता है ।

प्रश्न–अनेक गृहत्यागी साधु रागी क्यों बन जाते हैं ?

उत्तर–बाहर से त्याग करते हुए भी भीतर राग बना रहता है। वही धनिकों के, भोगियों के संग से तथा वस्तुओं के सम्बन्ध से रागी बन जाते हैं। जो अज्ञान में रहता है वही देहादिक वस्तुओं के संयोग का भोगी होता है । जो ज्ञान में जाग्रत है वही नित्य सत्य आत्मा का योगी होता है। संग से ही जीवात्मा पशु बना रहता है और संग परिवर्तन से मानव दिव्यता प्राप्त करता है ।

प्रश्न–अशान्ति को कैसे मिटायें ?

उत्तर–दूसरों के अनिष्ट चिन्तन से, पराये धन की इच्छा से, देहों में आसक्ति रहने से, सुखोपभोग की तृष्णा से अशान्ति रहती है, अतः इन दोषों के त्याग से अशान्ति मिट जाती है ।

प्रश्न–क्या सदा शान्त रहना सम्भव है ?

उत्तर–जो सदा ही एक रस निरन्तर शान्त परमात्मा है, उसी में अपने को देखते हुए सदा शान्त रह सकते हो। सदा ही क्षमा करने के लिए

उदारतापूर्वक दान देते रहने के लिए, अहिंसा व्रत में दृढ़ रहने के लिए, सत्याश्रय के लिए यदि सावधान रहो तो सदा शान्ति सुलभ रह सकती है। शान्त रहने में सात्विक भोजन, सत्साहित्य का अध्ययन और सन्त सद्गुरू की निकटता अथवा सत्चर्चा सहायक है। जिसकी बुद्धि भ्रष्ट होती है वही अशान्त उत्तेजित होता रहता है। वहीं सत्य परमात्मा का बोध है जहाँ निर्विकार है। वहीं निर्विकारत्व है, जहाँ शून्यत्व है, वहीं शून्यत्व है, जहाँ शान्ति है। जो चित्त के भीतर चेतना की शोध करता है वही शान्त होता है।

प्रश्न–आकस्मिक संकट निवारण का क्या उपाय है ?

उत्तर–प्रथम तो धैर्य धारण करना चाहिए। धैर्य से बुद्धि में विचार सहायक होता है । भयातुर होने से, निराश होने से धैर्य छूट जाता है। धैर्य छूटने लगे तब सर्व समर्थ प्रभु से, सम्पूर्ण ह्रदय से प्रार्थना करनी चाहिए और केवल जल पीकर उपवास करना चाहिए। इससे असह्य कष्ट में, अनिवार्य संकट में, अदृश्य सहायता प्राप्त होती है।

प्रश्न–तृष्णा कैसे छूट सकती है ?

उत्तर–तृष्णा तभी छूटेगी जब लोभ न रहेगा । लोभ तभी मिटेगा जब सुखोपभोग की इच्छा नहीं रहेगी । भोगेच्छा तभी नहीं रहेगी जब काम का अन्त होगा और काम की समाप्ति तभी होगी जब प्रभु में ही अनुराग होगा। अनुराग तभी होगा जब प्रभु में ही पूर्ण अपनत्व होगा। प्रभु में अपनत्व तभी होगा जब गुरु ज्ञान में प्रभु की सत्ता तथा महत्ता का अनुभव होगा। ऐसा अनुभव तभी होगा जब निज स्वरूप में बुद्धि स्थिर होगी। बुद्धि स्थिर तभी होगी जब चित्त शान्त होगा। चित्त शान्त तभी होगा जब चाह रहित होकर चित्त को चैतन्य में देखा जायगा। चित्त को चैतन्य में देखना तभी सहज होगा जब संयम के साथ दृढ़ संकल्प होगा ।

प्रश्न–साधारण मनुष्य महान कैसे बन सकता है ?

उत्तर–कोई भी मनुष्य जितनी सावधानी से विवेकपूर्वक परहित में तत्पर रहता है, उतनी ही मात्रा में महान् होता जाता है। किन्तु जो क्षुद्र में, क्षणस्थायी में, विनाशी में अटक जाता है, जो जड़ वस्तु में प्रीति करते हुए सन्तुष्ट होना चाहता है वह महत्त्व से वंचित रहता है ।

प्रश्न–गृहस्थ होकर लोक–परलोक में शान्ति कैसे प्राप्त करें?

उत्तर–गृहस्थ होकर नहीं बल्कि स्वस्थ होकर परावलम्बन छोड़कर आत्मा का आश्रय लेकर शान्ति का अनुभव करो ।

प्रश्न–परस्पर कलह को कैसे दूर किया जाय?

उत्तर–जब वस्तु अधिक प्रिय होती है, सम्बन्धी उतना प्रिय नहीं होता तब कलह, विवाद, शोक, मत्सर, निन्दा, कलंक का भोग चलता रहता है। यदि वस्तुओं की अपेक्षा सम्बन्धी प्रिय हो, सम्बन्धी की अपेक्षा धर्म प्रिय हो, धर्म के साथ विवेक हो और विवेक के साथ प्रेम पूर्ण हो तब पारिवारिक जीवन स्वर्ग बन जाता है और कलह क्रोध का आक्रमण नहीं होता।

प्रश्न–साधु समाज का संगठन कहाँ तक आवश्यक है ?

उत्तर–लड़ाई–झगड़े के लिए, दुर्बल को दबाने के लिए अथवा अपनी दुर्बलता को सबल बनाने के लिए संगठन आवश्यक है किन्तु भक्ति एवं मुक्ति अथवा शान्ति के लिए एकान्त एकाकी साधना की सिद्धि चाहिए। जो स्वस्थ है वही साधु है। अस्वस्थ को संगठन की सहायता की अपेक्षा होती है।

प्रश्न–मनुष्य के बनाये हुए मन्दिर तथा मनुष्य की बनाई भगवान् की मूर्तियों द्वारा क्या भक्ति मुक्ति नहीं मिल सकती ?

उत्तर–मन्दिर एवं मूर्ति से भक्ति मुक्ति मिलती होती तो सभी कारीगर, सभी पुजारी तथा मन्दिर बनवाने वाले धनी जन भक्त मुक्त हो गये होते। मनुष्य जो कुछ भी बनायेगा वही असत्य होगा, नश्वर होगा।

जो मानव विवेकपूर्वक स्वीकृतियों को मान्यताओं का त्याग कर देगा वही स्वतन्त्र होगा, वही मुक्त होगा।

जो साधक अपने प्रभु को स्वयं में ही नित्य प्राप्त अनुभव कर लेगा वही भक्त होगा। जो दुखी जगत् की कोई वस्तु या कोई सुख न चाहेगा वही शान्त स्वस्थ होगा।

प्रश्न–परमात्मा को किसी ने पाया है तो कैसे पाया है ?

उत्तर–जो खो गया है वही खोज सका है। जो मिट सका है वही पा सका है। परमात्मा केवल प्रेम है, प्रेम में ही प्राप्त दिखता है।

प्रश्न–अज्ञानी के समान ही बड़े–बड़े ज्ञानवान् भी अशान्त क्यों होते हैं?

उत्तर–जितने भी विद्वान् गन्थ पढ़कर, धर्मशास्त्र सुनकर ज्ञानवान बने हैं, यह सब दूसरे के ज्ञान से बुद्धि को भरते गए हैं, अहंकार को सन्तुष्ट करते गए हैं । ऐसे ज्ञानी बाहर से आये हुए ज्ञान के अभिमानी तो हो गए परन्तु स्वयं को नित्य सुलभ ज्ञान में देख नहीं सके हैं, इसीलिए यह ज्ञानाभिमानी जैसे हैं, जहाँ हैं वहाँ अपने स्वरूप में तृप्त न होने के कारण पराश्रय लेने के कारण अशान्त हैं ।

बाहर से आया हुआ ज्ञान, सीखी हुई विद्या, संग्रह किये हुए विचार, अहंकार को भोगी बनाते हैं। शान्ति तो तभी सुलभ होती है जब भूत एवं भविष्य से सम्बन्ध नहीं रहता । वर्तमान में जो कुछ स्वयं हैं, जहाँ हैं वहीं पर शान्ति का अनुभव होता है। जहाँ अशान्ति नहीं है वहीं ज्ञान में स्वयं के एकाकीपन में शान्ति है।

ज्ञान वही है जो आता नहीं है, जाता भी नहीं है। केवल जो सबके आश्रय रूप में निरन्तर विद्यमान है वही ज्ञान है। शुद्ध चिन्मात्रतत्व ही ज्ञान है, उस ज्ञान में स्वयं को देखना है शान्त रहना है। जहाँ कुछ बनने का अथवा कुछ से कुछ होने का या कुछ प्राप्त करने का, अपनी उन्नति का, सद्‌गति का प्रयत्न है वहीं अशान्ति है। शान्त होने का जहाँ प्रयास है वहीं अशान्ति है।

प्रश्न–अपना सच्चा हितैषी कौन है ?

उत्तर–जो अपने से प्रेम करते हैं, और आयु में, बल में, बुद्धि में, विद्या में, ज्ञान में बड़े हैं वह सभी हितैषी हैं ।

सन्त सद्‌गुरु परम हितैषी हैं सबसे अधिक निकटस्थ हितैषी अपना संयमित शान्त चित्त है और विवेकवती बुद्धि है। असंयमित चित्त और अविवेकी बुद्धि वाले मनुष्य ही राग द्वेषादि द्वन्द्वों से ग्रसित रहते हैं। जो तुम्हारे दोषों, पापों, अपराधों को जानते हुए भी तुम्हारा त्याग नहीं करता तुमसे घृणा नहीं करता वही पूर्ण हितैषी है। जो तुम्हें आवश्यक वस्तु बिना माँगे ही देता रहता है और अनावश्यक वस्तु तुम्हारे चाहने पर भी ले लेता है, साथ ही तुम्हारे शोक, विलाप, क्रोध से सम शान्त रहकर कृपा ही करता है वही सच्चा हितैषी है।

प्रश्न–यदि हम आनन्द में ही हैं तो अनुभूति क्यों नहीं होती ?

उत्तर–तुम जहाँ हो वहाँ स्वयं को न देखकर, आनन्द को सुख के रूप में बाहर खोज रहे हो इसीलिए आनन्द से विमुख हो । स्वयं में आनन्द का अनुभव न करने वाला साधक ही सुख के लिए दरिद्र रहता है ।

जो स्वयं से संसार की ओर दौड़ता है, सुख के पीछे दीन दरिद्र ही रहता है । जो संसार से स्वयं की ओर लौटता है वह आनन्दानुभव से तृप्त हो जाता है ।

तुम निरन्तर आनन्द के द्वार पर उपस्थित रहकर अज्ञानवश नश्वर सुख की तृष्णा से अशान्त हो रहे हो ।

प्रश्न–हम सबके प्रिय हितैषी कैसे हो सकते हैं?

उत्तर–किसी को दुःख देकर सुख न चाहो । किसी की हानि से लाभ न उठाओ।

किसी को अपमानित करके सम्मान न चाहो ।

किसी को दुखी करके किसी को सुखी देखने का पक्ष न लो ।

किसी की हानि करते हुए किसी को लाभ न पहुँचाओ ।

किसी का अनादर करते हुए किसी के आदर में सन्तुष्ट न बनो ।

किसी का अधिकार छीनकर उस अधिकार के भोगी न बनो, न दूसरे को बनाओ ।

सबके अधिकार की रक्षा करते हुए अपने अधिकार का तथा सुखोपभोग की कामना का त्यागकर प्रेम से भरे रहकर सबके हितैषी और सर्वप्रिय हो सकते हो। बुद्धियुक्त विवेकी होकर ही तुम सर्व हितैषी हो सकते हो ।

प्रश्न–मैं चाहता हूँ सभी भगवत् प्रेमी बन जायें ?

उत्तर–आपकी चाह वहीं तक पूर्ण हो सकती है जहाँ तक तुम्हारा किसी पर अधिकार है। किसी शरीर पर जितना अधिकार है उतना ही उससे काम ले सकते हो । मन पर जितना अधिकार है उतना ही अपनी रुचि की पूर्ति कर सकते हो । वास्तव में तभी कोई भगवत् प्रेमी बन सकेगा जब स्वयं ही चाहेगा । वही तुम्हारी प्रेरणा को मानेगा और अपनी बिखरी हुई प्रीति को समेटकर प्रभु की ओर समग्रभाव से मोड़ते हुए वह प्रभु प्रेमी होगा । किन्तु तुम्हारा अहंकार यही मानकर सन्तुष्ट होगा कि मैंने इसे प्रभु प्रेमी बनाया है ।

कोई सज्जन हरिनाम कीर्तन का प्रचार करना चाहते हैं, कोई नाम जप का प्रचार कर रहे हैं, कोई वेदान्त–ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं, कोई देश–सेवा, जाति–सुधार, समाज–सुधार तथा अपने–अपने मत सम्प्रदाय का प्रसार प्रचार चाहते हैं, यह सब शुभ है, सुन्दर हैं परन्तु अहंकार जब रागी–द्वेषी बनता है तब अशुभ असुन्दर है।

प्रश्न–किसी धर्म प्रचारक साधु संन्यासी से ठगे जाने पर हमारा क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर–ठगे जाने पर अपनी भूल का, भ्रम का, अज्ञान का, विवेक प्राप्त करते हुए आगे के लिए सावधान रहो और तुम उस प्रकार से किसी को न ठगने का संकल्प कर लो । किसी से घृणा द्वेष न रखते हुए दूसरों को सावधान कर दो।

प्रश्न–हमें संकीर्तन का नाम जप का प्रचार करना चाहिए या नहीं ?

उत्तर–यदि तुम लोभी नहीं हो तब तो यही उचित है कि तुम स्वयं उसी कीर्तन या जप में व्यस्त रहो जिसका समाज में प्रचार करना चाहते हो । तुम्हारा जीवन हरिनाम संकीर्तन अथवा नाम जप के द्वारा जितना अधिक दोष रहित होकर सुन्दर प्रेम से पूर्ण होता जायगा उतना ही वह इतना मोहक, आकर्षक होगा कि दर्शक जन स्वतः ही प्रेरित होकर तुम्हें देखकर उसी भाँति संकीर्तन अथवा नाम जप करने लग जायेंगे । पुष्प अपनी सुगन्ध का प्रचार नहीं करता, वह खिलता है, उसकी सुगन्ध फैलती है, किन्तु पुष्प जान भी नहीं पाता कि मेरा कहाँ तक प्रचार हो रहा है । जहाँ प्रचार किया जाता है वहाँ कर्ता अहंकार भोक्ता बनता है। तुम प्रचारक न बनो, अपनी दृष्टि का उपचार करो जिससे सम्यक् दर्शन कर सको ।

प्रश्न–जितने भी अध्यात्म क्षेत्र में प्रचारक हैं क्या वे सभी अहंकार को ही पोषित करते हैं ?

उत्तर–सभी के विषय में निर्णय करना अपनी जानकारी का अहंकार होगा। सभी साधकों को या साधु संन्यासी को स्वयं के विषय में निर्णय करना चाहिए । सभी साधकों को अपना निरीक्षण करते हुए प्रचार के साथ अपने प्रति होने वाले प्रभाव पर विचार करना चाहिए। रजोगुण की प्रबलता में प्रचार का संकल्प प्रबल होता है। सतोगुण की जाग्रति में प्रचार के

साथ विचार की प्रधानता रहती है और जब प्रचार विचार के फल का अहंकार भोगी नहीं बनता तब अपना सम्यक् उपचार हो पाता है। सावधान साधक प्रचार के साथ गम्भीरता पूर्वक विचार करते हैं और विचार बल से अपने दोषों को देखते हुए अपना उपचार करते हैं । अपने उपचार से ही दोषों की निवृत्ति होती है और निर्दोष साधक ही सिद्धि प्राप्त करता है।

प्रश्न–संकल्प साधक है या बाधक ?

उत्तर–जो संकल्प अपने मन की पूर्ति के लिए अथवा अहंकार की सन्तुष्टि के लिए होता है वह सब भोग बन जाता है। जब अपना कोई संकल्प नहीं उठता है किन्तु सम्बन्धित जनों के शुभ संकल्प की पूर्ति करना अपना कर्त्तव्य दिखाई देता है तब वह अन्तःकरण की शुद्धि का साधन बन जाता है। इसीलिए विवेकी साधक अपने लिए आत्मा में ही प्रीति करते हैं। आत्मा की योगानुभूति में ही निरन्तर सन्तुष्ट एवं तृप्त रहते हैं। उनके भीतर कोई संकल्प नहीं उठते हैं, फिर भी समाज से, संसार से, परिवार से जो कुछ शुभ, सुन्दर, सुखद लिया है उसे ही परिवार के प्रति, समाज के प्रति, संसार के प्रति लौटाते रहना अर्थात् प्राप्त वस्तु शक्ति एवं सम्पत्ति तथा योग्यता द्वारा दूसरों की अहंकार रहित होकर सेवा करते रहना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। कर्त्तव्यनिष्ठ साधक अपनी पूर्ति के लिए संकल्प नहीं करता है लेकिन दूसरों के उचित संकल्पों की पूर्ति करना अपना कर्त्तव्य समझता है ।

प्रश्न–क्या शुभ–सुन्दर विचार के प्रचार से भी अहंकार पुष्ट होता है ?

उत्तर– **''कोटि कर्म बनते रहें संग दोष की धार ।**
किया कराया सब गया जब आया अहंकार ।।''

अहंकार में जितनी पापप्रवृत्ति है वह किसी भी शुभ कर्म से , शुभ भावना से, शुभ विचार से दूर नहीं होती । उसकी निवृत्ति तो केवल ज्ञान में अहंकार की सीमा को देखते हुए प्रेम में पूर्ण तृप्त होने से होती है। अशुभ की अपेक्षा किसी भी प्रकार का शुभ संकल्प उत्तम है। लेकिन संकल्प का कर्ता जब तक अहंकारी बना रहता है तब तक शुभ कर्म का , सद्भाव का एवं सद्विचार का भोग करते हुए प्रेममय प्रभु की योगानुभूति से विमुख ही रहता है ।

प्रश्न–भगवद् प्रेरित होकर हम हरिकीर्तन तथा नाम जप का प्रचार करते हैं तो क्या भूल है?

उत्तर–अनेक साधु संन्यासी वेष में अपने भीतर छिपी हुई वासना कामना से प्रेरित होकर हरिनाम संकीर्तन का प्रचार, नाम जप का प्रचार अथवा धर्म प्रचार, धर्म ग्रन्थों का प्रचार करते हुए मान की या धन की अथवा सुखोपभोग की पूर्ति चाहते हैं परन्तु समाज के समक्ष यही कहते हैं कि भगवद् प्रेरित होकर यह प्रचार किया जा रहा है।

प्रश्न–मेरे भीतर जो भी शुभ पवित्र संकल्प उठता है वह किसकी प्रेरणा है ?

उत्तर–अनेक संकल्प वासना से प्रेरित होते हैं, अनेक संकल्प संगी सम्बन्धी से प्रेरित होते हैं, कोई शुभ संकल्प अचानक आघात से प्रेरित होने पर तीव्र हो जाते हैं, कोई संकल्प प्रारब्ध प्रेरित उठा करते है। कुछ ऐसे भी संकल्प हैं जो शास्त्र प्रेरित या गुरु प्रेरित होते हैं। भगवद् प्रेरित संकल्प उसे ही समझना होगा जिसके पीछे अपने को कुछ भी श्रम न प्रतीत हो और किसी प्रकार धन की, जन की, पदाधिकार की अपेक्षा न हो।

प्रश्न–हमें सत्संग किस प्रकार सुलभ होगा ?

उत्तर–जो बिना किये ही निरन्तर रहता है वह सत्संग है। जो करना पड़ता है वह अनित्य का असत् का संग है। सत् के विषय में सुनने के लिए गुरु की आवश्यकता है। सत्संग की अनुभूति के लिए केवल अपने को असंग करने की आवश्यकता है, किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है। कामना, सत्संग में बाधक है, इसीलिए निष्काम होना सत्संग में साधक है।

जो अभी और सदा विद्यमान है उसी में अपने को देखो, जो अभी, यहीं, तुम में नहीं है, जो तुमसे भिन्न है उसके पीछे दौड़ना बन्द कर दो, तभी सत्संग का अनुभव होगा।

प्रश्न–हमें विनाशी, क्षणस्थायी के पीछे कौन दौड़ाता है ?

उत्तर–सुखासक्ति तथा सुखोपभोग की कामना दौड़ती है।

प्रश्न–हम निष्काम कैसे हो सकते हैं?

उत्तर–जहाँ ममता होती है वहीं कामना होती है। ममता के त्याग से कामना का द्वार बन्द हो जाता है।

प्रश्न–**सत्संग को तो बहुत दुर्लभ कहा है, वह कैसे सुलभ होगा ?**

उत्तर–सत्संग दुर्लभ नहीं है, वह तो नित्य निरन्तर सुलभ है परन्तु सत्संगी अवश्य दुर्लभ है। सत्य की प्यास अवश्य दुर्लभ है। सत् वही है जो अभी है, निरन्तर है, जिसका कहीं अभाव नहीं है और जिसमें असत् की, अनित्य की प्रतीति होती है–ऐसे सत् के संग को चाहने वाले कोई बिरले ही साधक हैं।

प्रश्न–**सन्तों के प्रवचन सुनने वाले क्या सत्संगी नहीं हैं?**

उत्तर–जो श्रोता असत् के अनित्य के रागी, मोही, लोभी, अभिमानी, कामी नहीं हैं, जो अपना कुछ मानते ही नहीं हैं , जो अपने लिए जगत् से कुछ चाहते ही नहीं हैं जिन्हें अपने लिए कुछ करना शेष नहीं है, जो आत्मा में ही सन्तुष्ट हैं, तृप्त हैं, आत्मा में ही जिनकी पूर्ण प्रीति है वही सत्संगी हैं। प्रवचन सुनने मात्र से श्रोता हो सकते हैं, सत् परमात्मा के संगी नहीं सिद्ध हो सकते।

प्रश्न–**ज्ञान और विवेक में क्या अन्तर है?**

उत्तर–ज्ञान एक प्रकाश की भाँति है जिसमें सब कुछ देखा जाता है। विवेक उस दृष्टि कौशल की भाँति है जिसके द्वारा सत्–असत् का, नित्यानित्य का, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का, शुभाशुभ तथा पाप–पुण्य का एवं मिले हुए जड़ चेतन का निर्णय किया जाता है।

प्रश्न–**भगवान् यदि अति निकट हैं तो दीखते क्यों नहीं हैं?**

उत्तर–भगवान् के निकट होने की बात सुनी गई है किन्तु उनको देखने की दृष्टि नहीं खुली है। ज्ञान में ज्ञान स्वरूप भगवान् का दर्शन होता है और प्रेम में प्रेम स्वरूप भगवान् के नित्य मिलन का अनुभव होता है। ज्ञान में और कुछ न रहे तब ज्ञान मात्र में दर्शन की दृष्टि खुलती है। इसी प्रकार प्रेम में अन्य कुछ न रहे तब केवल प्रेम में नित्य मिलन की अनुभूति होती है।

प्रश्न–**हमें भगवान् का मिलना जीवन में असम्भव सा क्यों लगता है ?**

उत्तर–भगवान् और तुम्हारे बीच में जो संसार–प्रपंच भर गया है यदि उसका हटना असम्भव है तो दर्शन भी असम्भव है। भगवान् सर्वत्र सुलभ हो सकता है परन्तु भगवद् प्रेमी भक्त बहुत दुर्लभ हैं।

प्रश्न—सन्त—संगति में जितना मन शुद्ध रहता है बाद में क्यों नहीं रहता ?

उत्तर—सन्त—संगति में सत् चर्चा सुनते हुए तुम अपने आप में सुलभ सत्य के सम्मुख होते हो, इसीलिए शान्ति एवं सात्त्विक सुख का अनुभव होता है। सन्त एवं सत् चर्चा से विमुख होते ही अनित्य एवं पर के सम्मुख होने पर राग, द्वेष, तृष्णा एवं परापेक्षी सुखभोग की सीमा में आने से मन अशुद्ध हो जाता है।

प्रश्न—सदा सन्त की संगति में रहना कैसे सम्भव है ?

उत्तर—जहाँ से सन्त का संग होता है वहाँ से अन्य किसी का संग न रहने पर स्वतः सदा सन्त का ही संग रहेगा । क्योंकि सन्त संग शरीर से नहीं होता, वरन् हार्दिक प्रीति एवं श्रद्धा के द्वारा होता है। हृदय में जो भर जाता है वह बाहरी प्रभाव को भीतर नहीं जाने देता। जिसके हृदय में मान, भोग, धन की तृष्णा भरी है, वह बाहर सन्त का संग करते हुए, सत् चर्चा सुनते हुए भी सत्य के सम्मुख न हो पायेगा। केवल सत्संगी होने का अभिमान ही बढ़ेगा।

सत्संगी होने का अभिमान बहुत ही सरल है किन्तु सत्संग के द्वारा अभिमान का ज्ञान बहुत कठिन है। अविवेकी मूढ़ में सत्संग का अभिमान होता है। विवेकी द्रष्टा में अभिमान का ज्ञान होता है।

प्रश्न—जड़ रूप में प्रीति होती है, चेतन स्वरूप में क्यों नहीं होती ?

उत्तर—जब तक स्वरूप का अज्ञान है तब तक जड़रूप से प्रीति रहती है। प्रीति वहीं होती है जहाँ सुख की प्रतीति होती है ।

सुख की प्रतीति वहीं होती है जहाँ वास्तविक सुख नहीं सुख की छाया होती है। सुख का प्रतिबिम्ब वहीं पड़ता है जहाँ दर्पण होता है। दर्पण अपने से भिन्न होता है। उसमें पड़ता हुआ प्रतिबिम्ब भी अपने से भिन्न होता है। जिसका प्रतिबिम्ब होता है वह अपने से अभिन्न होता है। अपने से अभिन्न का ज्ञान नहीं है इसीलिए अपने से भिन्न प्रत्येक सम्बन्ध रूपी दर्पण में इन्द्रिय दृष्टि से अपने ही प्रतिबिम्ब में सुखासक्त प्राणी मुग्ध हो रहा है।

प्रश्न–प्रेम और प्रीति में क्या अन्तर है ?

उत्तर–प्रेम की किरणों से प्रकाशित हुई किसी भी वस्तु में मुग्ध होना उससे प्रीति करना है। प्रीतिरूपी किरणों के सहारे किसी वस्तु व्यक्ति में न अटक कर उसके उद्‌गम की तरफ लौटकर पूर्ण तृप्त होना प्रेम में होना है ।

प्रेम किया नहीं जाता, प्रेम में होकर प्रीति के पथ से सदा दिया ही जाता है।

प्रश्न–प्रेमयोगी के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर–प्रीति पथ से जो सदा प्रीति पात्र को ही प्रीति के रस से तृप्त करता रहता है वही प्रेम योगी है, प्रीति के पथ से जो सदा लेता ही रहता है वह प्रीति का भोगी है । प्रीति पथ से सदा लेते रहने वाला यदि अपने दाता को नहीं देखता है तो वह रोगी है ।

प्रश्न–प्रीति के पथ में भोगी और रोगी में क्या अन्तर है ?

उत्तर–प्रीति के दान को भोगते हुए दाता को देखने वाला दान में न अटक कर दाता से सम्बन्धित होकर उसी से तल्लीनता प्राप्त करता है ।

रोगी वह है जो प्रीति के दान का भोग करते हुए दाता को न देखकर मिली हुई वस्तु का लोभी मोही अभिमानी बन जाता है ।

प्रश्न–हम रोग से बचने के लिए क्या करें ?

उत्तर–जो कुछ भी तन, मन, धन आदि मिला है उसका भोग न करके दूसरों की सेवा सहायता में उपयोग करो। अपने लिए केवल सर्वस्व के दाता को ही चाहो तभी मानसिक रोगों से मुक्त रह सकते हो ।

प्रश्न–अशुद्ध अन्तःकरण को शुद्ध कैसे किया जाय ?

उत्तर–अशुद्ध के संग से ही अशुद्धि होती है, इसीलिए शुद्ध के संग से ही शुद्धि हो सकती है। पूर्ण शुद्ध वही है जो कभी अशुद्ध ही न हो। उस नित्य निरन्तर शुद्ध को ही परमात्मा कहते हैं। अंतःकरण को उसी में लगा देना शुद्धि का सुलभ साधन है।

प्रश्न–**जिस नित्य शुद्ध परमात्मा को हम देखते नहीं हैं उसमें अन्तःकरण को लगायें कैसे ?**

उत्तर–जिस अनात्मा में अन्तःकरण लगा हुआ है उससे हटा लो तो यह उसी में शान्त हुआ दिखेगा जो कि दिखाई नहीं देता । अनात्मा से हटाने के लिए उसके द्रष्टा बनो, भोक्ता न बनो। वास्तव में अशुद्ध को, असत्य को अथवा जिसे भी तुमने पकड़ रखा है उसे छोड़ना ही छोड़ना है, पाना कुछ भी नहीं है, क्योंकि छोड़ने के बाद जो शेष रहता है उसे पाया नहीं जाता, उसमें ही अपने को विश्राम पाते देखा जाता है ।

संगाभिमान से, आसक्ति से, राग द्वेष से, अन्तःकरण अशुद्ध होता है। असंग होने पर, अकिंचन होने पर शुद्ध होता है। माया के द्वारा ईश्वर बहुरूपिया बना है और काया के द्वारा जीव बहुरूपिया बना हुआ है।

प्रश्न–**ममता कैसे छूटेगी ?**

उत्तर–विवेकपूर्वक 'मैं' को और मेरा अधिकार किस पर है–उसे जान लेने पर अनाधिकार वस्तु एवं व्यक्ति के प्रति ममता का त्याग अपने ही द्वारा करना होगा ।

प्रश्न–**अपना अधिकार किस पर है ?**

उत्तर–जो अपना है उसी पर अपना अधिकार है । अपना वही है जो मुझे कभी नहीं त्यागता है। जो मुझे कभी नहीं छोड़ता, उसी को आत्मा–परमात्मा कहते हैं।

परमात्मा ही सत् है, चिद् है, आनन्द है । इसी के संग में अपने को शान्त देख लेने पर काम की निवृत्ति होती है और प्रेम की प्राप्ति होती है।

प्रश्न–**जब परमात्मा निरन्तर प्राप्त है तब काम की उत्पत्ति कैसे हो गई ?**

उत्तर–परमात्मा में होते हुए उससे विमुख होकर असत् के संग से, देह के संग से काम की उत्पत्ति हो गई है, जितने विकार हैं सब विनाशी वस्तुओं के संग से उत्पन्न हो गए हैं।

प्रश्न–विमुख के लिए परमात्मा के सम्मुख होने का उपाय क्या है ?

उत्तर–अपने सम्मुख जो कुछ इन्द्रियों के द्वारा प्रतीत हो रहा है वहीं से लौटकर अपने आप में शान्त होना ही परमात्मा के सम्मुख होने का द्वार पा लेना है।

प्रश्न–योग्यता कैसे बढ़ाई जा सकती है ?

उत्तर–योग्यता वृद्धि के लिए ब्रह्मचर्य और श्रेष्ठ विद्वानों विरक्त गुरुजनों का संग तथा सेवा महान् साधन है। विषयासक्ति कुसंग महान् बाधक है।

जो तन, मन, धन में विषय सुखों में आसक्त है वह गुरु की उपासना नहीं कर पाता वह भोगासक्त भोगीजनों की ही उपासना में जीवन खोता रहता है। सहनशील, विनम्र सेवाव्रती और परिश्रमी रहकर, तथा व्यर्थ समय न खोकर स्वाध्याय–पूर्वक इन्द्रियों तथा मन को संयम में रखकर शक्ति एवं योग्यता बढ़ाई जा सकती है। योग्यता सम्पन्न श्रेष्ठ पुरुषों के प्रति श्रद्धा रखते हुए उनकी संगति से ब्रह्मचर्यवती होकर योग्यता प्राप्त की जा सकती है।

प्रश्न–विश्व में शान्ति लाने के लिए महात्माओं का प्रत्यय सफल क्यों नहीं होता ?

उत्तर–जो विश्व में, देश में, समाज में शान्ति स्थापित करने के लिए उपदेश दे रहे हैं वे पण्डित उपदेशक सन्त साधु आचार्य प्रायः स्वयं ही अशान्त रहते हैं तब दूसरों को शान्ति देने की बात ही व्यर्थ है।

जो गुरु स्वयं ही अज्ञान में हैं, जो माता–पिता स्वयं दुखी हैं वह शिष्य को, सन्तान को अज्ञान के दुखों से मुक्त नहीं कर पाते । अशान्त साधक को आत्मा का बोध नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य अहंता, ममता, तृष्णा कामना का त्यागकर स्वस्थ शान्त हो सकता है परन्तु दूसरों को शान्ति नहीं दे सकता।

प्रश्न–बुद्धि को कैसे स्थिर किया जा सकता है ?

उत्तर– हर्ष, शोक, राग, भय, क्रोधादि विकारों के रहने तक बुद्धि स्थिर नहीं हो सकती।

स्वतः कोई विचार न करते हुए अपने आप जो कुछ देह के मन के भीतर हो रहा है उसे तटस्थ रहकर देखते रहने से बुद्धि में स्थिरता आती है। आत्मा के बोध की केवल प्रतीक्षा रहे कोई विचार या प्रयत्न नहीं रहे तब बुद्धि स्थिर होती है।

प्रश्न–**नित्य प्राप्त आनन्द की झलक क्या अभी मिल सकती है?**

उत्तर–यदि तुम मन से मुक्त होकर स्वयं में शान्त होकर प्रेम से हृदय भर सको तो तत्काल ही आनन्द की झलक मिल सकती है। यदि तुम ज्ञान के अहंकार से अज्ञान के अन्धकार से मुक्त हो जाओ, यदि तुम स्वरूप में प्रतिष्ठित परमात्मा का अनुभव कर सको तो अभी आनन्द ही आनन्द गाने लग सकते हो ।

यदि अभावों का अभाव देख सको तब तो अभाव की वेदना मिटते ही आनन्द ही आनन्द है। आत्मज्ञान की पूर्णता में ही आनन्द है। सुख के अन्त में दुःख ही भोगी को सावधान करता है कि जब तक स्वयं में शान्त होकर आनन्द का अनुभव न करोगे तब तक प्रत्येक सुख के अन्त में दुःख ही आता रहेगा।

प्रश्न–**शिवोहं जपने से या उच्च स्वर से घोष करने से क्या लाभ है ?**

उत्तर–शब्द का बार–बार जप एक अभ्यास है । अभ्यास से अभ्यास दबता है और तत्त्व का साक्षात् होने पर जो शिवोहं का उद्घोष है वह अनुभूति का उल्लास है। साक्षात् हुए बिना शिवोहं कहना भिखारी को सम्राट का वेष बनाने के समान है । झूठा तत्व–ज्ञान सपने की मुक्ति दे देता है, झूठे तत्व ज्ञान से अहंकार ही सन्तुष्ट होता है।

प्रश्न–**अन्तःकरण को स्थिर करने का क्या उपाय है ?**

उत्तर–चंचल के संयोग से अन्तःकरण में चंचलता बढ़ती है। स्थिर परमात्मा के योग से स्थिरता आ जाती है। अपने से जो कुछ भिन्न है उसे चाहने से चंचलता बढ़ती है। चाह रहित होना ही योगयुक्त होने का उपाय है। चाह रहित होते ही विनाशी से असंगता, अविनाशी से एकता स्वतः ही हो जाती है।

जिस प्रकार जल में तरंगें उठती हैं उसी प्रकार चित्त में चाह उत्पन्न होती रहती है। तरंगें शान्त होते ही जलाशय शान्त होता है उसी प्रकार चाहरहित होते ही अन्तःकरण शान्त होता है । योगयुक्त, आत्मवित्, ब्रह्मवित् होने का सहज उपाय चाह रहित होना है। कोई संकल्प न उठे, कोई विचार न रहे, कोई चाह उत्पन्न न हो, तब जो शेष है, जाग्रत है, (जिसमें ही संकल्प की, विचार की, चाह की हलचल चलती है) वही आत्मा–परमात्मा है। अन्तःकरण के स्थिर होने पर उसी आत्मा में विश्राम मिलता है।

प्रश्न–उत्तम साधक का सदाचार क्या है ?

उत्तर–जो विचारहीन मूर्खों के संग से दूर ही रहता है, जो विद्वानों की संगति में बैठता है जिसे पवित्र स्थान, शुद्ध वस्त्र, निर्मल पात्र तथा सादा रहन–सहन प्रिय है जिसे गुरुजनों को आदर, मान देना, पूजा करना प्रिय लगता है, जो अध्ययन में समय सार्थक करता है , जिसे कला, ज्ञान, विज्ञान प्रिय है, जिसे सद्–व्यवहार का, मधुर वचन शुद्ध वाक्य बोलने का तथा संक्षेप में बोलने का अभ्यास है, जो माता–पिता गुरु की सेवा में आलस्य नहीं करता, जो परिवार की रक्षा में उनकी सम्हाल में प्रमाद नहीं करता, जो सभी को यथाशक्ति सन्तुष्ट प्रसन्न रखने में सावधान रहता है जो अपने निर्वाह करने योग्य सामग्री से सन्तुष्ट रहता है, जो क्रोध के वेग को रोक कर शान्त रहता है जो क्षमा करते हुए प्रसन्न रहता है, जो साधु सन्तों में श्रद्धा रखता है, उनकी सेवा करता है, जो धर्मतत्त्व, सत्यतत्व के विषय में यथार्थ जानकारी प्राप्त करता है, जो कुछ करने के प्रथम ही परिणाम पर विचार करता है, जो पाप से डरता है, पुण्यों का ही पक्ष लेकर पुण्य बढ़ाता जाता है। वही उत्तम साधक का आचरण है।

प्रश्न–अनेक जन्मों के कुसंस्कार अथवा दोष इस जन्म में मिट सकते हैं ?

उत्तर–यदि इन्द्रियों को विषय–पथ में चंचल होने से रोक लो, और विषय चिन्तन के बदले में ईश्वर चिन्तन, आत्मा का मनन करने लगा और जिस शक्ति सम्पत्ति समय को अपनी इच्छा पूर्ति में लगाये रहते थे उसे प्राणियों की सेवा में लगाते रहो तब इसी जन्म में कुसंस्कार अथवा दोष नष्ट हो सकते हैं।

प्रश्न–प्रतिकूल प्रारब्ध–भोग का भय कैसे छूट सकता है ?

उत्तर–जो कुछ भी अपने आप हो रहा है वह प्रभु के विधान से होता हुआ देखो और उसे मंगलमय समझो तब भय नहीं रहेगा ।

प्रश्न–लोभ मोह ममता कैसे छूट सकती है ?

उत्तर–जो कुछ मिला है उस पर अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है, किसी समय मिला हुआ छिन जाता है, छूट जाता है या वही छोड़ देता है–ऐसा समझने से लोभ मोहादि छूट सकते हैं।

प्रश्न–हम निश्चिन्त किस प्रकार हो सकते हैं ?

उत्तर–सब कुछ प्रभु का है, सब कुछ परिवर्तन युक्त है – ऐसा निर्णय करते हुए जो आता है उसका सदुपयोग करते हुए जो कुछ जाता है उसे अपने हिस्से का न मानते हुए निश्चिन्त रह सकते हो। सृष्टि के रचयिता को भूल कर जब तुम स्वयं ही मिली हुई देहादिक वस्तुओं के स्वामी बन जाते हो तभी चिन्ता का आक्रमण होता है।

प्रश्न–सेवा योग्य साधन सामग्री न हो तो सेवा कैसे करें ?

उत्तर–तुम्हारे साथ जैसी भी देह है, जितनी भी योग्यता है, जितनी भी सामर्थ्य है, जिसके द्वारा अपने लिए कुछ–न–कुछ करते रहते हो वही सेवा के लिए साधन सामग्री है।

प्रश्न–व्यवहार में अचानक अपराध क्यों बन जाते हैं ?

उत्तर–असावधानी से और अनुचित क्रोधपूर्वक कटु वचन बोलने के अभ्यास से अपराध बन जाते हैं। जब तुम्हारे साथ कोई प्रतिकूल बर्ताव करे तब अपने भाग का समझ कर सहन करो, शान्त रहो और जब दूसरों के साथ कुछ करने चलो, बोलने लगो, कुछ देने लगो तब सावधान रहो। किसी के साथ वह बर्ताव न करो जैसा तुम अपने प्रति नहीं चाहते परन्तु अवसर पर तभी सावधान रहोगे जब गम्भीर रहोगे, विवेक विचार का अभ्यास बढ़ा लोगे ।

प्रश्न–क्रोध कैसे छूट सकता है ?

उत्तर–तुम क्रोध छोड़ने की चिन्ता न करके उस अहंकार को देखो जो क्रोध में होता है । कदाचित कभी क्रोध को रोक लोगे, तब भी अहंकार गर्वित होगा कि 'मैंने अहंकार को जीत लिया,' क्षमा करने से भी अहंकार

पुष्ट होगा, काम को वश में करने से भी अवसर पर अहंकार सबल होगा। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष लोभादि सभी अहंकार की ही सन्तान हैं अतः अहंकार को जानो देखो ।

प्रश्न—बलहीन व्यक्ति के लिए सफलता का क्या साधन है ?

उत्तर—सांसारिक सफलता के लिए कदाचित तनबल, जन—बल, विद्याबल, धनबल, अधिकारबल में से कोई भी बल न हो तब भी मानव द्वारा श्रद्धाबल, वीर्यबल, स्मृतिबल, समाधिबल और प्रज्ञाबल द्वारा भक्ति, मुक्ति, शान्ति अर्थात् सत्य का साक्षात् प्राप्त किया जा सकता है। भौतिक सुखोपभोग के लिए जिन बलों की अपेक्षा है वह भाग्यानुसार मिलते हैं परन्तु परमार्थ सिद्धि के लिए जो पाँच बल हैं — दृढ़ संकल्प एवं समर्थ प्रभु की शरण लेने से किसी भी परमार्थी साधक को सुलभ हो सकते हैं।

प्रश्न—परमार्थ सिद्धि के लिए हम कहाँ तक स्वतन्त्र हैं ?

उत्तर—भोग की प्राप्ति के लिए पराश्रय की अपेक्षा है, परमार्थ सिद्धि के लिए स्वाश्रय, सत्याश्रय की अपेक्षा है। अतः स्वाश्रय—सत्याश्रय के लिए सभी को स्वतन्त्रता है, परन्तु अपने से भिन्न का आश्रय लेकर जीव पराधीन है, अस्वस्थ है। जो स्वयं में नहीं है वही अस्वस्थ है। अनुकरण ने पराधीनता से जकड़ दिया है, जो स्वस्थ है, सत्यावलम्बी है, वही स्वतन्त्र है।

प्रश्न—तीर्थ यात्रा से क्या लाभ है ?

उत्तर—भारतवर्ष में वही तीर्थ माने गए हैं जहाँ किसी ने तप किया है, यज्ञ किया है, दान दिया है अथवा सन्तों—महात्माओं के साथ सद् गृहस्थों का समागम हुआ है या जहाँ भगवान् अथवा भगवान् की विभूतियाँ प्रकट हुई हैं। उन तीर्थों में जाने से तप की, त्याग की, साधना की, दान की, यज्ञ की प्रेरणा मिलती है और साधु सन्तों, तपस्वियों, त्यागियों, परमहंसों का सुसंग सुलभ होता है। तीर्थ में स्नान से तन शीतल होता है, देवता के दर्शन से श्रद्धा बढ़ती है, दान से लोभ कम होता है उदारता बढ़ती है। तीर्थ में विद्वानों के संग से सनातनधर्म, आर्यधर्म, वर्णाश्रम धर्म का ज्ञान होता है। दुःखों से पापों से छूटने का और पुण्यों की वृद्धि का उपाय ज्ञात होता है।

प्रश्न–तीर्थ यात्रा से क्या हानि है ?

उत्तर–तीर्थ यात्रा में अपने सुख के कारण जहाँ तक किसी को दुःख होता है और शारीरिक सुविधाओं के पीछे जितना अधिक धन खर्च होता है उतने अंश में पुण्यों की पूँजी नष्ट होती है। असंयमित आहार–विहार से रोगों का आक्रमण होता है। असावधानी से कभी–कभी धन नष्ट होता है। तीर्थ में रहकर जो क्रोधी है, परनिन्दक है, हिंसा करता है, दम्भी है, जो कामी विषयासक्त है वह अपने द्वारा दूसरे लोगों के मन को दूषित करता है। तीर्थों में जाकर लोभी की लोभवृत्ति अधिक बढ़ जाती है, कामी मद–इन्द्रिय लोलुपतावश शब्द अथवा रूप में अधिक चंचल हो जाता है। संयम के विरुद्ध असंयम बढ़ जाता है। एकान्त साधना करने वाले साधकों को एकान्त की सुविधा न होने से बाधा पड़ती है।

तीर्थों में एकत्रित होने वाले शिष्यों–सेवकों के द्वारा मिलने वाली भेंट पूजा से लोभी गुरुओं के भीतर लोभ की वृद्धि होती है। कार्य प्रपंच अधिक बढ़ जाता है। अभिमानी गुरुओं में परस्पर किसी की प्रसिद्धि देखकर प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है और महत्वाकांक्षा का ज्वर अधिक तीव्र हो जाता है। तीर्थ में जाकर जो पापों से तैरने की कला नहीं जानता वह तीर्थ में घुसकर डूबता है। यही तीर्थों में लाभ के विपरीत हानि भी होती है।

प्रश्न–तीर्थ यात्रा क्या सभी धर्मप्रेमी के लिए आवश्यक है?

उत्तर–जिसकी ज्ञानदृष्टि खुली है और वह सभी में प्रभु को विद्यमान देखता है उसके लिए सभी कुछ तीर्थरूप ही है, सभी स्थान प्रभु के मन्दिर हैं, उसे कहीं जाने का संकल्प ही नहीं होता, वह अपने लिए नहीं जाता, दूसरों के लिए भले ही जाता हो ।

प्रश्न–तीर्थों के सेवन से मनुष्य तर जाता है इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर–दुःखों से छूटना तथा पापों से छूट जाना ही तरना है।

प्रश्न–तीर्थ यात्री यदि पापों से तर जाते हैं तो तीर्थों से लौटकर पाप क्यों करते हैं ?

उत्तर–तीर्थ यात्रा में यदि मन में कुविचार, दुर्भाव, दोष नहीं उठते और जब तक नहीं उठते तब तक वह यात्री पवित्र ही माना जायगा। स्नान करने के पश्चात् जब तक शरीर अशुद्ध के संस्पर्श से बचा है तब तक वह

शुद्ध ही कहा जायगा। यदि कोई स्नान करने के पश्चात् तत्काल अपवित्र वस्तु को ग्रहण करे तो उसी समय अपवित्र हो जायगा। इसी प्रकार पाप से छूटने के पश्चात् जब तक मनुष्य पुनः पाप नहीं करता तब तक वह शुद्ध ही है ।

जहाँ तीर्थों की बहुत बड़ी महिमा का वर्णन है वहाँ यह भी निर्णय दे दिया है कि जो यात्री अपनी इन्द्रियों को मन को वश में रखता है, कोई पाप नहीं होने देता, बुद्धि जिसकी विचारवती है उस निरभिमानी श्रद्धालु को ही तीर्थयात्रा का पूर्ण लाभ सुलभ होता है। जितनी सुन्दर सात्विक श्रद्धा होती है, जितना अधिक परम प्रभु के होने का विश्वास होता है उतना ही अधिक तीर्थों की यात्रा का शुभ फल होता हैं और जितना अधिक लोभ, काम, अभिमान एवं अविश्वास होता है उतना ही पाप होता है।

प्रश्न–सबसे उत्तम तीर्थ किसे माना गया है ?

उत्तर–जिस किसी को जिस तीर्थ से दुःखों से छुटकारा मिला है, पाप का अन्त हुआ है भगवद् प्राप्ति हुई है, शान्ति सुलभ हो सकी है उसी तीर्थ को, तीर्थ–प्रेमी ने सर्वोत्तम तीर्थ माना है ।

इसीलिए मुसलमान, ईसाई, यहूदी, हिन्दू अथवा सिक्ख, जैन, बौद्ध आदि भिन्न–भिन्न जातियों के भिन्न–भिन्न तीर्थ हैं । अपनी–अपनी मान्यता तथा श्रद्धा एवं विश्वास के अनुसार सभी को तीर्थसेवन से कुछ–न–कुछ लाभ होता ही है । भावुक भक्त भगवान् के नाम को ही सर्वोपरि तीर्थ मानता है। तत्वदर्शी जन आत्मा को ही परमतीर्थ कहते हैं।

धर्मतत्व के ज्ञाता सत्पुरुष सत्य को, क्षमा को, इन्द्रिय निग्रह तथा दया, सरलता दान को एवं मन के निरोध को, सन्तोष, ब्रह्मचर्यव्रत, प्रिय भाषण, तत्वज्ञान को, धैर्ययुक्त बुद्धि को अर्थात् शुद्ध अन्तःकरण को तीर्थ मानते हैं।

प्रश्न–विद्वानों ने गृहस्थाश्रम को ही उत्तम तीर्थ क्यों माना है?

उत्तर–जिन माता–पिता की सेवा करते हुए पुत्र में सहिष्णुता, नम्रता, जितेन्द्रियता, संयम एवं श्रम की पूर्णता होती है उसके लिए माता–पिता ही तीर्थ हैं ।

जिस पत्नी की प्रीति से नम्रता, सरलता, सहिष्णुता से तथा निष्कामता एवं सतत् सेवा से पति इतना सन्तुष्ट हो जाता है कि दूसरी नारी की विशेषता दिखती ही नहीं, वह पत्नी पति के लिए तीर्थरूप ही है ।

जो पति मर्यादा के भीतर पत्नी को सन्तुष्ट रखता है पत्नी की आवश्यकताओं को आदर–प्यार के साथ पूर्ण करता है, जो कामी बनकर पत्नी की देह का महत्व न बढ़ाकर प्रेमी होकर आत्मा अथवा सद्गुणों का मूल्य बढ़ाता है, जिसके संग से पत्नी में सद्गुणों की ही पुष्टि होती है, प्रेम से ही जो तृप्त रहती है, ऐसे पति पत्नी के लिए तीर्थ ही हैं ।

गृहस्थाश्रम में माता–पिता, पति–पत्नी, आचार्य गुरु तथा अतिथि ही तीर्थ स्वरूप निश्चित किये गये हैं, क्योंकि इन सभी के संग से परस्पर दोषों का नाश, गुणों का विकास, प्रेम की पूर्णता का सुयोग सुलभ रहता है।

प्रश्न–सभी गृहस्थाश्रमी परस्पर तीर्थ स्वरूप क्यों नहीं हैं?

उत्तर–सभी को आश्रमधर्म का ज्ञान नहीं है इसीलिए अज्ञान में जो न करना चाहिए, सुखासक्ति वश वही करते रहते हैं, कर्त्तव्यपरायण नहीं हो पाते । जो परस्पर तीर्थ स्वरूप होकर पावन हो रहे हैं वह सभी की चिन्ता नहीं करते, वह तो अपने कर्त्तव्य में ही दृढ़ रहते हैं।

प्रश्न–जिस मूर्ति में किसी को भगवान के दर्शन हुए, उसी में अब क्यों नहीं होते ?

उत्तर–किसी को कभी भगवान् किसी मूर्ति में नहीं मिले, वह तो प्रेम में मिले हैं। मूर्ति तो जड़ है परन्तु प्रेम नित्य चेतन है, वह प्रेम ही मूर्तिमान हो जाता है। प्रेम के अभाव में मन्दिर, भगवान के मन्दिर नहीं हैं, वह मनुष्य द्वारा निर्मित दीवारें हैं।

"प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना, हरि व्यापक सर्वत्र समाना"

प्रश्न–किस प्रकार प्रेम करने से व्यापक हरि प्रकट होते हैं?

उत्तर–प्रेम करने से नहीं, केवल प्रेम में होकर अन्य सब कुछ भूल जाने से प्रभु प्रकट होते हैं।

प्रश्न–प्रेम में होने के लिए क्या उपाय हैं ?

उत्तर–मोह में होकर तुम संयोग चाहते हो । लोभ में होकर वस्तु अथवा सम्पत्ति चाहते हो। काम में होकर सुखोपभोग चाहते हो। जब कुछ न चाहोगे तब प्रेम में होकर परम प्रेमास्पद प्रभु को चाहोगे। प्रभु के अतिरिक्त कुछ न चाहना प्रेम में होना है ।

प्रेम और प्रभु के मध्य में जब कुछ आ जाता है तब प्रेम मोह–लोभ काम मय बन जाता है।

प्रश्न–विकारों की उत्पत्ति कैसे होती है ?

उत्तर–आत्मा के अज्ञान में ही समस्त विकारों की जड़ें जमती हैं। आत्मा से विमुख बुद्धि तथा देह को देखने वाला मन एवं विषयों का चिन्तन करने वाला चित्त और मिथ्या विनाशी क्षणिक का संगाभिमानी अहंकार विकारों से युक्त बना रहता है ।

आत्मा के अज्ञान में ही जन्मने मरने वाली देह का प्रभाव जीवन के सम्मुख नहीं होने देता ।

अज्ञान में , देहासक्ति की सीमा में, देह के साथ ही भूख, प्यास, भय, आलस्य, मोह, शोक, संशय, हर्ष, अभिमान, ग्लानि, वैर, ईर्ष्या, डाह, मद, मत्सर, श्रम, सुख, दुख, बुढ़ापा, मृत्यु आदि समस्त विकार ज्ञान को ढके रहते हैं ।

प्रश्न–विकारों का अन्त कैसे हो सकता है ?

उत्तर–अन्तवान से विरक्त होने पर, अन्तवान को अपना न मानते हुए अनन्त परमात्मा को ही अपना परमाश्रय जानते हुए परमात्मा में ही पूर्ण प्रेम लगा देने पर विकारों का अन्त होता है।

विनाशी देहादिक वस्तुओं अथवा विकारवान व्यक्तियों से प्रीतिपूर्वक संग करते हुए विकार बढ़ते हैं । अविनाशी आत्मा में शान्त रहते हुए और विरक्त सन्त से प्रीति करते हुए विकार मिटते हैं।

प्रश्न–पापों से मुक्ति कैसे मिलती है ?

उत्तर–समाज में दीन–दुखी, निर्धन, निर्बल, दुर्बल, आर्त्तजन तुम्हारे पापों के उद्धार के लिए ही सुलभ हैं। यदि लोभवश पाप अपराध बन गए हैं तो धन के द्वारा दूसरों की सेवा सहायता से पाप कटेगा । यदि अहंकार अभिमानवश कोई पाप बना है तो वह दूसरों को मान देने से अधिकार देने से कटेगा। यदि कर्मोपभोग की आतुरतावश पाप बना है तब दूसरों की कामना पूर्ति करते हुए पाप कटेगा।

यदि कभी दूसरों का धन कपट से, चोरी से या बलात्कार पूर्वक लिया है उसे नम्रता, प्रसन्नतापूर्वक समाज को लौटा देने से पापों का अंत होगा। पुण्यकर्मों द्वारा पापों का नाश होता है, आत्मज्ञान में नित्य शान्त तृप्त

रहकर निष्काम होकर कर्त्तव्य कर्म की पूर्ति करते हुए पापों से मुक्ति मिलती है।

प्रश्न–हम कैसे समझें कि पापों से मुक्ति मिल गई है?

उत्तर–मोह, लोभ, अभिमान, अहंकार, राग द्वेषादि द्वन्द्वों समेत अज्ञान की निवृत्ति ही पापों से मुक्ति है ।

प्रश्न–ज्ञानी किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो अहंकार अज्ञानी कहा जाता है, वही जब वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जान लेता है, उसे ही ज्ञानी कहते हैं ।

प्रश्न–क्या ज्ञानी में अहंकार बना रहता है ?

उत्तर–जो किसी को अज्ञानी और अपने को ज्ञानी समझता है वह अहंकार ही है। अहंकार को ही जानकारी होती है ।

प्रश्न–अहंकार से छुटकारा कब मिलता है ?

उत्तर–ज्ञान में अहंकार को देख लेने से अहंकार के स्थान में परमात्मा की सत्ता ही शेष रह जाती है। आत्म अज्ञान में ही अहंकार की सीमा है, आत्मज्ञान में ही अहंकार की सीमा टूट जाती है। सीमा टूट जाने पर जो सीमा के भीतर होता है वह विभु हो जाता है। जहाँ अहंकार नहीं रहता वहीं आत्मा शेष रहता है ।

प्रश्न–ज्ञान में ही मुक्ति है–इसका क्या अर्थ है?

उत्तर–जो अनित्य वस्तुओं के लोभ, मोह, संगासक्ति से मुक्त है और सत्यानन्द से नित्य युक्त है, वही ज्ञान में मुक्ति–लाभ कर रहा है, अहंकार ही बन्धन है उसी से मुक्ति होनी है।

प्रश्न–अहंकार को कैसे देखते रह सकते हैं?

उत्तर–जिस ज्ञान में भूतकाल की घटनाओं का मनन करते हो तथा भविष्य का चिन्तन करते हो उसी ज्ञान से वर्तमान में उठते हुए, बैठते हुए, चलते हुए, लेटे हुए, देह की मन की क्रियाओं को देखो, तभी कर्ता, भोक्ता अहंकार को देख सकते हो ।

प्रश्न–संसार प्रंपच से सम्बन्ध कैसे छूट सकता है ?

उत्तर–सुख की कामना अथवा लोभ या तृष्णा न रहने पर ही जगत् से सम्बन्ध टूट जाता है। जिस देह से मिलकर मैं कह रहे हो, जिस वस्तु या व्यक्ति को अपना मान रहे हो उसे स्वयं से भिन्न देखो और पुनः अपने स्वरूप को जानो तभी सम्बन्ध टूट सकता है। संग में ही बन्धन है असंग होकर स्वयं की स्मृति में शान्त रहना ही मुक्ति है।

जो किसी सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करता, जो कहीं कुछ नहीं बनता जो अपना कुछ नहीं मानता, जो अकिंचन होकर अपने को पूर्ण परमात्मा से अभिन्न अनुभव करता है वही बन्धनों से मुक्त होता है और प्रभु का ही भक्त होता है ।

प्रश्न–हमें किसी को वेषभूषा देखकर महात्मा मानना चाहिए या नहीं ?

उत्तर–नेत्रों से साधु–संन्यासी देखकर उस वेष को नमस्कार करो। देह से देह को नमन करते हुए उसके मन का, बुद्धि का, अहंकार का अध्ययन करते हुए यदि भीतर उसका मन विरक्त हो तब अपने मन को झुका दो। यदि उसकी बुद्धि विवेकी सिद्ध हो तभी बुद्धि से नमस्कार करो और जब अहंकार जगदाकार विषयाकार, देहाकार न रहकर निराकर, ब्रह्माकर दर्शित हो तब अपने अहंकार को उस अहंकार के समक्ष झुका दो। बाह्य दर्शन के साथ आन्तरिक दर्शन आवश्यक है ।

प्रश्न–हम सबको सन्तुष्ट–प्रसन्न कैसे रख सकते हैं ?

उत्तर–तुम स्वयं किसी से कुछ भी न चाहते हुए आत्मा के योग में ही सन्तुष्ट रहो । सदा प्रसन्न रहो शान्त रहो अपने सुख के लिए किसी को असन्तुष्ट न करो । यह बहुत बड़ी तैयारी है। दूसरों को सन्तुष्ट रखने के लिए हर वस्तु से, सम्बन्धित व्यक्ति से अपना अधिकार हटा लो और दूसरे के अधिकार को यथाशक्ति पूर्ण करते रहो, इतना ही बहुत है। जो दूसरों की प्रत्येक रूचि को पूर्ण करने की शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता रखता है, वही सबको सन्तुष्ट प्रसन्न कर सकता है।

कोई विवेकी साधक सुखोपभोग की तृष्णा मान तथा नाम की तृष्णा का त्याग करके स्वयं सन्तुष्ट हो सकता है, निष्काम होकर स्वयं प्रेम में निरन्तर प्रसन्न रह सकता है, परन्तु दूसरों को नहीं रख सकता है।

प्रश्न–हम चाहते हैं कि हमारे कारण कोई दुखी न हो तो क्या करें ?

उत्तर–स्वयं तुम सदा किसी का भी आश्रय न लेकर स्वयं में ही आनन्दित रहो, किसी के कुछ न बनो, न बनाओ। समस्त उपाधियों से दूर रहो, क्योंकि समस्त दुःख उपाधियों से ही अथवा दोषों से ही उत्पन्न होते हैं। तुम अपने दुःखों से मुक्त हो जाओ, दूसरों की चिन्ता सृष्टि के स्वामी पर छोड़ दो ।

प्रश्न–गृह–परिवार का त्यागकर आरम्भिक साधना क्या है?

उत्तर–गृह–परिवार में रहकर आरम्भिक साधना, आसक्ति, ममता, कामना का त्याग है ।

जो साधक गृह–परिवार का त्यागकर साधु संन्यासी बनते हैं, वह आगे चलकर कुछ जप ध्यानादि साधना के पश्चात् बड़े घर बड़े परिवार के घेरे में आते हैं और छोटे घेरे को छोड़ने के फल में बड़े घेरे के भोगी बनते हैं। कालान्तर में प्रभु कृपा से जब उस बड़े आश्रम, संस्था, शिष्य समुदाय, गुरू परिवार में जब सम्बन्ध के रहते संन्यासी होते हैं, त्यागी होते हैं तब साधना पूर्ण होने का द्वार मिलता है ।

प्रथम यह अहंकार त्यागी, विरागी, संन्यासी, हंस, परमहंस, विरक्त भक्त बनता है और बनावट सजावट को भोगता है, पुनः प्रभु कृपा से कभी–न–कभी यह अपने को त्यागी, विरागी, संन्यासी, परमहंस अभिमान शून्य होकर देखता है।

प्रश्न–हम संन्यासी साधु बने नहीं किन्तु हो जाएँ इसका क्या उपाय है ?

उत्तर–बुद्धियोगी होकर प्रत्येक बनावट के परिणाम को, उसके अन्त को देखो और प्रज्ञा को जाग्रत होने दो –यही उपाय है ।

प्रश्न–जो दिखता नहीं, उस आत्मा से प्रीति कैसे करें?

उत्तर–जो दिखता है, उससे तुम प्रीति उसी के कारण करते हो, जो दिखता नहीं है। क्योंकि जो नेत्रों से नहीं दिखता उसी की सत्ता से प्रत्येक वस्तु नाम रूपमय प्रकाशित हो रही है। उसी की चेतना से प्रत्येक वस्तु में जीवन एवं सौन्दर्य दिख रहा है। उसी से मिले हुए प्रेम के द्वारा कोई भी वस्तु अथवा व्यक्ति सुन्दर, सुखद, आकर्षक प्रतीत हो रही है ।

जो कुछ भी दीखता है उसे आत्मा के ही द्वारा आत्मा में ही दिखता है–ऐसा बार–बार मनन करते हुए जिसके द्वारा शरीर इन्द्रियों मन तथा बुद्धि अपना–अपना स्वधर्म पालन कर रहे हैं उसी के प्रेम में होकर उसी के नाते सबसे प्रीति करो परन्तु धन, मान भोगादि, सुख पाने के लिए प्रीति न करो, प्रत्युत दूसरों को वही लौटाते हुए प्रीति का परिचय दो ।

जिसके होने से ही सब कुछ प्रिय लग रहा है, सुन्दर दिख रहा है वह आत्मा ही परम सुन्दर है, परम प्रेममय है, ऐसा समझते हुए उसी के प्रेमी हो जाओ ।

प्रश्न–जीवन के प्रति अथवा आत्मा में जागृति का क्या अर्थ है?

उत्तर–कामी सुखोपभोग के लिए जाग्रत रहता है। लोभी धन के लिए जाग्रत रहता है।

मोही देहासक्ति वश देह को रक्षित रहने के लिए मति के अनुसार सावधान रहता है उसी प्रकार विनाशी जड़ देहादिक वस्तु की सीमा को पार कर नित्य चेतन अविनाशी जीवन के प्रति ज्ञान ध्यान द्वारा साधक जागता है। मैं अपने को नहीं जानता हूँ, यह जागृति का प्रधान लक्षण है।

स्वयं में शान्त होना, केन्द्र में होना, नित्य वर्तमान में होना, विचार शून्य होना, निर्विषय एवं निर्विकल्प होना, अस्थि, मज्जा, रुधिर, मल, मूत्र, मिट्टी, जल, वायु, अग्नि आदि तत्वों से युक्त देह को देखना, प्राणों की गति को देखना, मन की विविध वृत्तियों को देखना, चित्त के विकारों को देखना, बुद्धि के विचारों को देखना, सबके अन्त में देखने वाले को देखना ही जीवन के प्रति आत्मा में जाग्रत होना है। दृष्टि को द्रष्टा में स्थिर कर लेना जागृति है।

प्रश्न–असत् दृश्य का, संसार प्रपंच का त्याग कैसे सम्भव है?

उत्तर–साधना द्वारा असत् दृश्य प्रपंच का त्याग करने का श्रम न करो। तुम केवल नित्य प्राप्त सत्य को स्वयं से अभिन्न देखा। जड़ का त्याग न करो, निरन्तर चेतन तत्त्व में शान्ति का अनुभव करो। त्याग के लिए जहाँ प्रयास है वहाँ अहंकार की ही लीला है।

प्रश्न–सहस्त्रों साधु सन्त, संन्यासी सब कुछ त्याग करके क्या अहंकार रहित नहीं हैं ?

उत्तर–जो त्याग की तैयारी करता है और अपना मानकर जो कुछ त्याग करता है वह अहंकार ही है। जिसे प्राप्त की अनुभूति होती है उसे त्याग की स्मृति नहीं रहती । जिसे त्याग की स्मृति रहती है उसे, अहंकार को सत्य प्राप्ति की अनुभूति नहीं होती। अज्ञान में अहंकार त्याग का भोगी होता है , अभिमान की सीमा में राग द्वेष ममता आदि विकारों से रोगी होता है।

प्रश्न–अहंकार इतना शक्तिशाली क्यों है ?

उत्तर–जितना अधिक बल का, विद्या का, विचारों का, धन का, विविध ज्ञान विज्ञान का संचय होता है उतना ही अहंकार स्थूल विशाल काम वाला होता है। जिसका स्वयं के सत्य पर विश्वास नहीं है वही संचय करता है।

प्रश्न–अहंकार को कैसे पहिचाना जाय ?

उत्तर–जिस ज्ञान में देह इन्द्रियाँ मन बुद्धि एवं अहंकार को मैं और मेरा मान रहे हो उसी ज्ञान में मानने वाले अहंकार की सीमा को देखो और विनाशी अविनाशी की स्मृति में जाग्रत रहो। ज्ञानालोक में अहंकाररूपी रश्मि द्वारा आगे देखोगे तो यह रश्मि नाम रूपाकार बनी रहेगी और इसी अहंकार रूपी रश्मि के पीछे की ओर उद्गम को देखोगे तो पूर्ण आलोक से तदाकार हो जायेगी । ज्ञान में अहंकार की स्मृति विसर्जित होती है।

प्रश्न–अहं और अहंकार में क्या भेद है ?

उत्तर–'मैं हूँ' यही 'अहं' है। ' मैं हूँ' के मध्य में जो कुछ भी लग जाता है वही अहं का आकार अर्थात् अहंकार बन जाता है। देह इन्द्रियों मन बुद्धि के साथ मिलकर तथा प्रत्येक सम्बन्धी जनों के साथ मिलकर एवं दुःखद सुखद के साथ मिलकर अपने को काला, गोरा, मोटा, दुबला, बालक, युवा, वृद्ध मानना अथवा अपने को पुत्र–पुत्री, माता–पिता, भाई–बहन, बड़ा–छोटा, ऊँचा–नीचा, ज्ञानी–अज्ञानी, दुखी–सुखी मानना–यही अहंकार है। 'मैं हूँ' 'मैं' अमुक हूँ–यही अहंकार का परिचय है ।

प्रश्न–अहं और अहंकार किस प्रकार बना है ?

उत्तर–संग से अहं और सम्बन्ध से अहंकार बना है । संग के ज्ञान से अहं स्फुरित होता है और सम्बन्ध से अहंकार बनता है। सम्बन्ध के बिना मनुष्य कुछ है ही नहीं । सम्बन्ध से ही मनुष्य सब कुछ बना है और सम्बन्ध के द्वारा मनुष्य के भीतर जो कुछ छिपा होता है वह प्रकट हो जाता है। सम्बन्ध ही दर्पण की भाँति सुन्दरता को या कुरूपता को स्पष्ट कर देता है।

प्रश्न–अहंकार मिटाने की युक्ति क्या है ?

उत्तर–जहाँ तक कुछ अपनी वस्तु दिखती है वहाँ तक अहंकार पुष्ट होता रहता है। जब ज्ञान में अपना कुछ न दिखेगा तब अहंकार नहीं रहेगा।

किसी वस्तु के साथ तद्रूप हो जाने पर मैं पुष्ट होता है, किसी को अपना मान लेने पर 'मेरापने' का अहंकार पुष्ट होता है।

प्रश्न–जीवन में संघर्षों का पीड़ाओं का अन्त कैसे होगा ?

उत्तर–जब तक तुम्हें कोई वस्तु अपनी प्रतीत होती रहेगी तब तक ममता के रहते संघर्ष बना ही रहेगा, पीड़ायें चलती ही रहेंगी। अपना कुछ न मानो, किसी वस्तु में प्रीति न फँसाओ, केवल आत्मा में ही प्रीति करो, तभी संघर्ष, भय, पीड़ा से बच सकोगे ।

प्रश्न–परिवार में रहकर कर्म करते हुए बन्धन से कैसे बच सकते हैं ?

उत्तर–बन्धन का कारण परिवार नहीं है, कर्म नहीं है–उससे अपनत्व का सम्बन्ध है और सम्बन्ध कामना के कारण ही जुड़ता है, कामना भी उसी के प्रति जागती है जिससे आशा होती है। सबसे निराश होने पर सम्बन्ध का अन्त होता है। बन्धन से मुक्त होना हो तो परिवार के जनों को जो कुछ देना हो वह धन, मान, सुख अपना कर्त्तव्य समझकर देते रहो और जो कुछ लेना हो उसको और लेने के अधिकार को छोड़ दो। अपना मानकर लोभ–मोह न करो। प्रभु का मानकर प्रत्येक वस्तु द्वारा प्रत्येक सम्बन्धित की सेवा करते रहो । प्रायः मोही जन जिसके बन्धन से छूटना चाहते हैं उसी से ममता करते रहते हैं।

प्रश्न–हमें अपने समर्थ प्रभु से कुछ माँगना चाहिए या नहीं ?

उत्तर–जो प्रभु सदैव अपने ही हैं, अपने में ही हैं वे हमसे भी अधिक हमारी आवश्यकताओं को जानते हैं, हमारे मांगे बिना ही वे आवश्यक वस्तु दिये बिना रह ही नहीं सकते क्योंकि पूर्ण उदार हैं, उनका सब कुछ हमारे लिए ही है। ज्ञान में ही यह अनुभव होता है कि अनेक रूपों से लेने–देने वाले वे ही हैं और कोई है ही नहीं ।

प्रश्न–सर्व रूपों में प्रभु ही हैं, यह अनुभव कैसे हो?

उत्तर–चेतना की पूर्ण जागृति में जड़ता से असंग होने पर ही नाम–रूपों के प्रकाशक प्रभु का अनुभव होता है। जो कृपण है, कठोर हृदय वाला है, भेद–भाव रखकर द्वेषी–क्रोधी है, संशय से जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती, वह परमात्मा की अभिन्नता का अनुभव नहीं कर सकता। अब तुम देखो कि तुममें कौन दोष कितने अंश में अभी शेष रह गया है।

सर्व में अथवा स्वयं में प्रभु की अनुभूति के लिए सावधान रहकर सच्चिदानन्द सागर में इस 'मैं' को एक घट के समान कल्पना करो, जिसके भीतर भी वही भरा है जो बाहर है ।

प्रश्न–योग के लिए क्या मन को शान्त करना आवश्यक नहीं है ?

उत्तर–तुम मन को शान्त न करो, स्वयं शान्त होकर मन से उतर कर उसे देखते रहो, उससे कोई काम न लो ।

परमात्मा के योगानुभूति के लिए तुम्हें सर्व संग से असंग होना आवश्यक है।

प्रश्न–हम संसार प्रपंच को कैसे भूल सकते हैं ?

उत्तर–सत्य परमात्मा की विस्मृति में ही संसार प्रपंच की स्मृति का अभ्यास दृढ़ हो रहा है। अज्ञान में ही संसार का प्रभाव है, ज्ञान में वही संसार प्रभुमय दीखता है, अज्ञान में ही पराश्रय पराधीनता सुख की प्रतीति होती है, ज्ञान में स्वयं के द्वारा ही आनन्द की अनुभूति होती है।

सत्य का द्वार स्वयं में ही है, पर में नहीं, अतः स्वतन्त्र स्वाधीन होकर ही साधक संसार प्रपंच से मुक्त हो सकता है।

प्रश्न–हम स्वतन्त्र कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर–जो कुछ भी स्वयं से भिन्न नाम रूप वाली वस्तु है, वह 'पर' है। 'पर' का आश्रय तभी तक लेना होता है जब तक अपने से भिन्न के द्वारा मिलने वाले सुख में मन आसक्त रहता है। देह इन्द्रियाँ मन के द्वारा जब तक सुख चाहोगे तब तक परतन्त्र ही रहोगे । सुख की कामना छोड़कर स्वयं में शान्त होते ही स्वतन्त्रता सुलभ हो जाती है।

प्रश्न–देह मिट्टी की बनी है–यह सुनते हुए भी आसक्ति क्यों नहीं छूटती ?

उत्तर–प्रीति के साथ जो कुछ देखा जाता है, सुना जाता है, भोगा जाता है, वही सुन्दर सुखद मनोहर प्रतीत होता है, उसी से आसक्ति हो जाती है। प्रीति हटे बिना आसक्ति नहीं छूटती। प्रीति तभी हटती है जब पहिले से अधिक सुन्दर सुखद मिल जाता है अथवा प्रीति पात्र में दोष दिखने लगते हैं।

जिसे स्वयं के साथ रहने वाली देह प्रिय लगती है उसे ही दूसरे की देह सुखद सुन्दर प्रतीत होने पर प्रिय दिखती है। जो स्वयं की देह में अटक गया है वही दूसरी देहों में अटकता रहेगा । जो देह के पीछे नित्य चेतन आत्मा को नहीं जानता वही अज्ञान वश विनाशी देह में क्षणिक सुखाभास के लिए आसक्त रहता है। आत्मा के अज्ञान में ही देहासक्ति, सुखासक्ति, सम्बन्धासक्ति तथा तृष्णा, क्रोध, काम, लोभ, मोह, संग्रह एवं हिंसा आदि दोष पुष्ट होते हैं ।

आत्मज्ञान में जाग्रत रहने पर ही आत्म अज्ञान में पुष्ट होने वाले सारे दोषों–विकारों का दुष्परिणाम दिखने लगता है, तभी देहादिक जड़ वस्तु में प्रीति नहीं रहती । वह शुद्ध चिन्मात्र स्वरूप के प्रति लौट आती है तभी आसक्ति छूटती है, विरक्ति बढ़ती है और सत्यानुरक्ति में बदल जाती है।

प्रश्न–देह का ज्ञान होने पर विरक्ति, आत्मा का ज्ञान होने पर भी अनुरक्ति क्यों नहीं हो रही है?

उत्तर–कुछ पढ़कर या सुनकर देह के विषय में अथवा आत्मा के विषय में जानकारी हुई है। जानकारी बुद्धि द्वारा हो सकी है और आसक्ति मन द्वारा दृढ़ीभूत है, अहंकार ही मन के संग से देहासक्त

सुखासक्त हो रहा है, बुद्धि के संग से आत्मा अनात्मा के विषय में जानकर उस ज्ञान का अभिमानी बन रहा है। यह अहंकार ही इन्द्रियों के संग से मन द्वारा अनुकूलता का भोगी बना हुआ है। साथ ही बुद्धि द्वारा जानकारी से भी सन्तुष्ट हो रहा है। इसीलिए दोषयुक्त से राग वश विरक्ति नहीं होती और गुणयुक्त से प्रीति न होने के कारण अनुरक्ति नहीं होती ।

प्रश्न–विनाशी से विरक्ति अविनाशी से अनुरक्ति कैसे होगी ?

उत्तर–यह विरक्ति एवं अनुरिक्त अहंकार की ही मांग है, अतः आसक्ति छोड़ने तथा अनुरक्त होने की चिन्ता छोड़कर शान्त होकर ज्ञान में अहंकार की सीमा को देखो। जिसमें अनुरक्त होना चाहते हो उसकी दूरी को देखो और जिससे विरक्त होना चाहते हो उसके बाह्य या अन्तर रूप में अपने अधिकार को देखो– इस प्रकार ज्ञान में सत् असत्, नित्य अनित्य, जड़ चेतन तथा स्व और पर को देखते–देखते अहंकार की सीमा टूटेगी तब विरक्ति–अनुरक्ति का संकल्प ही शान्त हो जायेगा ।

प्रश्न–एकान्त हुए बिना भीड़ में परिवार के कोलाहल में ज्ञान ध्यान कैसे सध सकता है ?

उत्तर–एकान्त की खोज में बाहरी जन कोलाहल से भागने वाले सहस्त्रों साधक दिखते हैं परन्तु मन के भीतर वस्तुओं व्यक्तियों के सम्बन्ध से जो हलचल होती रहती है उस कोलाहल को, उस भीड़ को हटाते हुए अपने को एकान्त में लाने वाले बिरले ही विवेकी दिखते हैं।

तुम्हें भीड़ से भागकर बस्ती का अन्त तो मिल सकता है, पर मन एकान्त नहीं होगा । तुम्हें एकान्त होना है तो अनेकता का, भेद भावना एवं भिन्नता का अन्त कीजिए । बाहर भागकर नहीं, प्रत्युत भीतर अपने अकेलेपन में लौटकर स्वयं में शांत होने पर एकान्त सुलभ होगा ।

प्रश्न–मन–बुद्धि की स्थिरता कैसे सम्भव है ?

उत्तर–चंचल के संग से चंचलता आती है, स्थिर के संग से स्थिरता होती है। यदि तुम प्राप्त में ही सन्तुष्ट रहो, अप्राप्त की कामना न करो, किसी के रागी न बनो, द्वेषी न बनो, समता धारण कर लो, चंचलता को दूर से देखते रहो, सहिष्णु बने रहो, इन्द्रियों पर अधिकार रखो, भय से, तृष्णा से, क्रोध से बचते रहो, तभी मन बुद्धि में स्थिरता आयेगी ।

प्रश्न–परमात्मा यदि साकार नहीं है तो साकार रूप में कैसे होता है ?

उत्तर–परमात्मा निराकार प्रेम स्वरूप है, आकार भक्त के हृदय में होता है, उसी आकार में निराकार प्रेम साकारमय हो जाता है। किसी पत्थर में मूर्ति नहीं होती, फिर भी पत्थर में कारीगर अपने मन में भरी हुई मूर्ति के रूप में पत्थर को ही मूर्तिमान देखने लगता है, इसी प्रकार भक्त भगवान् को प्रकट देखने लगता है। परमात्मा सत्चित् आनन्द स्वरूप निराकार है, उसी में अनित्य, जड़ अकारमय जगत् भर गया है। जो अरूप है, अमूर्त है, वही मूर्तिमान नाम रूपों में छिप गया है, बुद्धियोगी साधक मिथ्या जड़ नाम रूपात्मक जड़ जगत् की सीमा को निकालते हुए उसी स्थान में परमात्मा का अनुभव करता है ।

प्रश्न–परमात्मा आता जाता नहीं तो प्रकट और तिरोधान कैसे होता है ?

उत्तर–पत्थर में मूर्ति आती नहीं, प्रत्युत मूर्ति के अतिरिक्त जो कुछ होता है वह हटाते ही मूर्ति प्रकट हो जाती है, इसी भाँति प्रभु के अतिरिक्त जो कुछ तुम्हारे आगे प्रतीत होता है उसे हटाते जाओ, हटाते जाने पर प्रभु प्रकट हो जायेंगे । दो जड़ वस्तु टकराती हैं क्योंकि साकार हैं परन्तु जो शब्द का ज्ञान होता है वह निराकार है। प्रत्येक वस्तु साकार है परन्तु वस्तुओं के संयोग से, इंद्रियों के, मन के संयोग से जो शब्द स्पर्श रसादि द्वारा सुख दुख होता है, वह निराकार है ।

साकार से साकार मिलता है, निराकार से निराकार का ज्ञान होता है। निराकार में ही साकार स्थित है। मूर्तिमान जगत् से वह सत् परमात्मा छिप गया है। जिसकी कोई मूर्ति नहीं है उस निराकार परम सत्ता में ही आकार भर गया है, वही समस्त विराट विश्वाधार को लिए हुए है। स्वयं अपने स्वरूप को निराकार अनुभव करो ।

प्रश्न–निराकार से साकार कैसे उत्पन्न हो गया ?

उत्तर–योगमाया के संग से अथवा मूल प्रकृति के संग से आकार की उत्पत्ति होती है।

प्रश्न–मेरी बनावट का अन्त कैसे हो सकता है ?

उत्तर–जब तक तुम स्वयं को नहीं जानते हो तभी तक संग दोष से अहंकार बने हुए हो । जो स्वयं को जान लेता है वह आकार शून्य हो जाता है। तुम शान्त होकर सावधान रहकर मैं की स्फुरणा को देखो क्योंकि तुम 'मैं' को नहीं जानते हो, इसीलिए तुम कुछ बने हुए हो, कुछ और बनना या होना चाहते हो । अज्ञान में ही सारी बनावट है ।

प्रश्न–निराकार ब्रह्म से साकार कैसे उत्पन्न हो सकता है ?

उत्तर–निराकार स्पर्श रहित आकाश से स्पर्शगुण युक्त वायु जैसे उत्पन्न हो जाती है, रूप रहित वायु से रूपयुक्त अग्नि जैसे उत्पन्न होती है, रस रहित तेज से (अग्नि से) रस–युक्त जल जैसे उत्पन्न होता है, गन्ध रहित जल से गन्धयुक्त पृथ्वी जैसे उत्पन्न होती है, वैसे ही निराकार ब्रह्म से साकार ईश्वर प्रकट होता है।

प्रश्न–हम निराकार तत्व का अनुभव कैसे करें ?

उत्तर–तुम जिस देह को आँखों द्वारा देखते हो वह साकार है, जड़ है। जड़ वस्तु उसे कहते हैं जिसकी उत्पत्ति होती है, जिसका विनाश होता है। जड़ को अपने आप जड़ता का ज्ञान नहीं होता। ज्ञान में ही जड़ वस्तु की जानकारी होती है। ज्ञान निराकार है। जो कुछ दीखता है वह जड़ है किन्तु तुम जड़ को देखने वाले जड़ नहीं हो, चेतन हो । जिन देहादिक वस्तुओं को देखते हो वह सब साकार है। तुम चेतन ज्ञानरूप से देखने वाले निराकार हो।

जो जड़ वस्तु साकार रूप में क्षण–क्षण बदल रही है वह सब साकार है किन्तु ज्ञान स्वरूप द्रष्टा ज्यों का त्यों चेतन है वही निराकार है। मुख से कोई वस्तु खाई जाती है वह साकार है किन्तु ज्ञान में जो स्वाद का अनुभव होता है वह निराकार है। पुष्प अपने रंग रूप से साकार किन्तु जिस गन्ध का अनुभव होता है वह निराकार है ।

प्रश्न–ब्रह्म ईश्वर और जीव में क्या अन्तर है ?

उत्तर–सर्वोपाधि से रहित चित् सत्ता ब्रह्म है, मायोपाधि से युक्त चिन्मात्र तत्त्व ईश्वर है, अविद्योपाधि से युक्त चैतन्य ज्ञान जीव है, जीवात्मा और परमात्मा के बीच में जो कुछ है वही माया है, जिसके हृदय को परम प्रभु का प्रभाव ऐश्वर्य माधुर्य आकर्षित करता रहे वही भक्त है।

जिस पर संसार का प्रभाव न पड़े वही मुक्त है, जो स्वयं के ज्ञान में नित्य तृप्त सन्तुष्ट रहे वही शान्त है, सत् का निरन्तर संग स्वधर्म है, अनित्य वस्तुओं के प्रति मोह, लोभ, अभिमान न रहने पर ही नित्य प्राप्त परमात्मा में विश्राम है, अहंता ममता आसक्ति की सीमा में काम ही काम है, परमात्मा में आस्था, श्रद्धा तथा विश्वासपूर्वक शरणापन्न होने से काम का अन्त होकर विश्राम सुलभ होता है।

प्रश्न–काम के अन्त में विश्राम कैसे सुलभ होता है ?

उत्तर–शरीर द्वारा श्रम करते हुए थककर कुछ न करके जिस प्रकार शरीर को विश्राम सुलभ होता है उसी भाँति मन के द्वारा, बुद्धि के द्वारा कुछ न करते हुए शान्त शून्य होने पर स्वयं को सत्य में अर्थात् आत्मा परमात्मा में विश्राम सुलभ होता है। शून्य होना शान्त रहना ही आत्मिक स्वास्थ्य लाभ करना है, मोक्ष का द्वार खोल लेना है। निष्क्रिय होना शरीर का विश्राम है। निःसंकल्प होना मन द्वारा विश्राम है। निर्विचार होना बुद्धि का विश्राम है। निष्काम असंग होना अहंकार का विश्राम है। स्वयं में शान्त शून्य रहना परम आत्मिक विश्राम है।

प्रश्न–ज्ञान और ध्यान में क्या अन्तर है ?

उत्तर–जो कुछ भी इन इन्द्रियों द्वारा, मन द्वारा, बुद्धि द्वारा स्वीकार कर लिया है उनको विनाशी परिवर्तनयुक्त क्षणस्थायी रूप में रह–रहकर देखना ही ध्यान में देखना है। जो कुछ भी अनित्य, नश्वर, क्षणस्थायी रूप में देखा है उसके भीतर अविनाशी आत्मतत्व का अनुभव करना ज्ञान में दर्शन करना है। विचार शून्य होकर चेतना से तद्रूप होना ध्यान है।

प्रश्न–विनाशी नाम रूपों में अविनाशी आत्मा का अनुभव कैसे हो ?

उत्तर–यदि तुम देहों में अटके रहोगे तब आत्मानुभव नहीं होगा। जो क्षुद्र में अटक जाता है वह विराट को नहीं समझ पाता। जो विनाशी नामरूपों में आसक्त हो जाता है वह अविनाशी से विमुख बना रहता है। आँखों को रूप में अटकने दो, मन को नाम में लगने दो, बुद्धि को नाम रूप के प्रकाश आत्मा में स्थिर करो, तब स्वयं को परमात्मा से अभिन्न अनुभव कर सकोगे ।

प्रश्न–परमात्मा का अनुभव क्या सभी मनुष्य कर सकते हैं ?

उत्तर–परमात्मा का अनुभव वही कर सकते हैं जो केवल परमात्मा के ही प्रेमी हैं, और कुछ नहीं चाहते हैं। वास्तव में परमात्मा सभी के लिए अति सुलभ है परन्तु परमात्मा का अनुभव करने वाला महात्मा अवश्य ही दुर्लभ है। परमात्मा तो सभी नाम रूपों के पीछे सत्ता रूप, चेतन रूप, ज्ञान रूप में निरंतर विद्यमान है परन्तु उसे चाहने वाला प्रेमी नहीं मिलता इसीलिए परमात्मा सर्वत्र सुलभ कहा है, महात्मा को गीता में दुर्लभ कहा है। लज्जा, घृणा, भय, तृष्णा के रहते , विनाशी से ही आसक्ति सिद्ध होती है, परमात्मा में अनुरक्ति नहीं हो सकी । अतः पूर्ण अनुरक्ति बिना प्रभु का अनुभव नहीं होता ।

प्रश्न–संसार में कोई ऐसा मनुष्य है क्या, जिसमें चाह न हो?

उत्तर–चाह है इसीलिए मनुष्य संसार में है । जहाँ चाहों का अन्त है, कोई चाह शेष नहीं है वही परमात्मा में है।

प्रश्न–चाहों का अन्त कैसे होता है ?

उत्तर–जो बुद्धियोगी चाहों की पूर्ति का सुख भोगते हुए, उसके आगे न चाहते हुए भी सुख का अन्त दुःख देखता है और देखते देखते जब पूर्ण दुखी होता है तभी चाहों से विरक्त हो जाता है।

प्रश्न–विरक्त होकर वह घर में रहता है या संन्यास ले लेता है?

उत्तर–संन्यास लेना भी एक अहंकार की चाह ही है। घर में रहना या वन में जाना भी चाह ही है। इसीलिए विरक्त होकर वह कुछ भी अपना नहीं देखता–सब कुछ प्रभु का ही जानता है। इसीलिए उसे कुछ छोड़ना या पकड़ना नहीं होता क्योंकि उसकी दृष्टि बदल जाती है और उसकी चाहों द्वारा वस्तुओं, व्यक्तियों में बिखरी हुई प्रीति सिमिट कर केन्द्रित हो जाती है, इसीलिए वह प्रेम में ही सन्तुष्ट तृप्त रहकर आत्मवित् होता है। उसके चित्त में कोई चाह नहीं जाती । चित्त जब पूर्ण रूपेण शून्य होता है तभी आत्मा की ज्ञान ज्योति प्रकाशित मिलती है।

प्रश्न–चित्त का शून्य होना क्या जड़ समाधि नहीं मानी जाती ?

उत्तर–शून्य होने पर स्वयं का ज्ञान न रहना, तन्द्रा निद्रा में होना जड़ समाधि है किन्तु चित्त के शून्य होने पर सतत् चेतनतत्त्व में बुद्धि का स्थिर रहना चेतन समाधि है।

प्रश्न–क्या असमय मृत्यु होती है ?

उत्तर–जो अति अभिमान से भरा रहता है, जो अधिक बोलता रहता है, जो कुटेव, दुर्व्यसन का त्याग नहीं कर पाता, जो क्रोध के वेग को रोक नहीं पाता, जो अधिक खाता रहता है। जो मित्र से, परिवार से द्रोह करता है उसकी आयु समय से प्रथम ही समाप्त होती है, इसीलिए आयुनाशक दोषों से सावधान रहना चाहिए ।

प्रश्न–आयुवर्धक उपाय क्या हैं ?

उत्तर–ब्रह्मचर्य व्रत से, प्राणायाम से, प्रणव जप, इष्ट मन्त्र के जप से, सिद्ध पुरूष की कृपा से, रासायनिक औषधि सेवन करने से, मिताहार से आयु बढ़ती है।

प्रश्न–कर्म–भोगी और कर्म–योग में क्या अन्तर है ?

उत्तर–जो शुभ कर्मों के बदले में धन, मान, भोग चाहता है वही कर्म–भोगी है। जो किसी से धन, मान, सुखोपभोग न चाहते हुए शरीर से सर्वहितकारी कर्म करता है, मन से परमात्मा की उपासना में तत्पर रहता है, जो बुद्धियोग द्वारा परिणाम देखते हुए अनित्य का रागी न रहकर आत्मा परमात्मा के योग में शान्त रहता है वही कर्म योगी है। जिस कर्म का फल–भोग भगवान् से विमुख बनाये वही कर्म–भोग, जिस कर्म का फल भगवान् के योग में बाधा न डाले वही कर्म–योग है।

प्रश्न–संन्यास के लिए घर कब छोड़ा जाये ?

उत्तर–केवल गृह छोड़ने से, नाम–परिवर्तन से, वेष–परिवर्तन से कोई विरागी–संन्यासी नहीं हो पाता। बाहर का त्याग वास्तविक त्याग नहीं है, वह तो दम्भ का रूप ले लेता है । भीतर जब अहंता, ममता, कामना आसक्ति नहीं रहती तभी त्याग पूर्ण होता है।

प्रश्न–सहस्त्रों संन्यासी जिनकी पूजा भेंट में सहस्त्रों रूपये चढ़ते हैं, सहस्त्रों नरनारी जिन्हें भगवत् स्वरूप मानते हैं क्या वे विरक्त नहीं हैं हम विरक्त को कैसे पहिचाने ?

उत्तर–कोई सुखासक्त, धनासक्त, विषयासक्त व्यक्ति किसी के विरक्त होने की कल्पना कर सकता है परन्तु किसी की विरक्ति को बाह्य दृष्टि से देख नहीं सकता। तुम्हारे लिए वही सच्चा विरक्त संन्यासी है जिसके संग से आप स्वयं ही भीतर से राग रहित विरक्त हो जायें ।

प्रश्न–अपने श्रेद्धय संन्यासी महात्मा के संग से यदि हम भी घर–परिवार छोड़ दें तो क्या उनकी विरक्ति का प्रभाव न कहा जायेगा ?

उत्तर–अवश्य ही अनेक अविवेकी जन साधु–संन्यासी के संग से प्रभावित होकर उन्ही की भाँति वेष बदल लेते हैं, घर त्यागकर आश्रम में रहने लगते हैं, नाम भी बदल लेते हैं परन्तु भीतर से विरक्त नहीं हो पाते। विरागी, त्यागी कहलाकर भी संगी संग्रही सुखासक्त बने रहते हैं। जितनी शीघ्रता से कुछ किया जाता है वह सदा नहीं रहता है, जो स्वतः भीतर से होता है वही स्थायी रहता है।

प्रश्न–समाज में सभी विद्वान उन्नति चाहते हुए क्या अहंकारी ही हैं अज्ञानी ही हैं ?

उत्तर–जब तक कोई विद्वान निरन्तर विद्यमान सत्ता में अपने को सिन्धु में विन्दु के समान नहीं देखता और कुछ बनता रहता है, तब तक वह अहंकारी ही है। और अज्ञान में ही है। जब किसी को अपनी योग्यता से नीचे देखता है और किसी को अपने से बहुत अधिक योग्य मानता है, तब तक वह भेददर्शी है, इसीलिए सर्व से श्रेष्ठ होना चाहता है। परिणामदर्शी सन्त ने महत्वाकांक्षा को जीवन का ज्वर बताया है। मनुष्य में श्रेष्ठ होने की इच्छा का अन्त, महत्वाकांक्षा का अन्त ज्ञान में स्वयं को देख लेने पर ही होता है।

प्रश्न–ज्ञान में स्वयं को किस रूप में देखना है ?

उत्तर–ज्ञान में स्वयं को चैतन्य सागर में एक घट के समान देखना है–जिसके बाहर–भीतर सागर ही सागर है। यह जो 'मैं' भाव की पतली

सी दीवार बाहर भीतर के भेद को उत्पन्न करती रहती है उसे भी देखते रहना है।

महान ज्ञानालोक में स्वयं को निरन्तर नित्ययुक्त किरण के समान अनुभव करना है। किरण प्रकाश–पथ से अपने आगे देखते हुए जड़ वस्तुओं से सम्बन्धित हो जाती है और प्रकाश पथ से अपने उद्गम को देखते हुए पूर्ण से नित्ययुक्त अनुभव करते हुए पूर्ण शान्त आनन्द में योगयुक्त अनुभव करती है। इसी प्रकार ज्ञान में साधक की अनुभूति होती है।

प्रश्न–ईश्वर की उपासना के लिए मनुष्य क्या स्वतन्त्र है ?

उत्तर–चूँकि ईश्वर परतन्त्र नहीं है, इसीलिए उसके सम्बन्ध में हर एक को स्वाधीनता है। जो परतन्त्र है, पराधीन है, उसी की प्राप्ति में पराधीनता है।

मनुष्य असत् की, अनित्य की अथवा भोग सुखों की कामना से शून्य होकर परमात्मा की उपासना के लिए स्वतंत्र है।

जो मनुष्य दृश्य के पीछे दौड़ते हैं, जो विनाशी वस्तु को अपनी मानकर लोभी, मोही, बने हुए हैं, जो क्षणिक सुखोपभोग में आसक्त रहकर विनाशी नाम रूपों को मन में भरे हुए हैं, वे असत् के , अनित्य के उपासक हैं। जो अपने से भिन्न वस्तु व्यक्ति में सुख निर्भर रखकर स्वयं में शान्त हैं, वही ईश्वर की उपासना के लिए स्वतन्त्र हैं।

प्रश्न–हजारों भक्त मन्दिरों में घंटो भगवान् की क्या उपासना नहीं करते ?

उत्तर–उपासना के अर्थ हैं, निकट स्थित होना। भगवान की मूर्ति के निकट शरीर बैठा है किन्तु मन बाजार में धन के लिए, मान के लिए घूम रहा है, तब शरीर मूर्ति की उपासना करता है और मन भोग का, धन का उपासक है।

प्रश्न–सत् परमात्मा के बोध की साधना क्या है ?

उत्तर–जिससे भेद नहीं होता उसी का बोध होता है। अज्ञान में भेदभाव पुष्ट होता है, ज्ञान में भेद मिट जाता है ।

प्रश्न–ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर–सत् और असत् को जानना ही ज्ञान है ।

प्रश्न–सत्य और असत्य क्या है ?

उत्तर–जिसका कभी अभाव या नाश नहीं होता वही सत्य है। इसके विपरीत जो कुछ अविनाशी है वही असत्य है।

प्रश्न–ज्ञानी कौन है ?

उत्तर–जो असत् के मोह–दुख से मुक्त है, सत्यानन्द से नित्य युक्त है, वही ज्ञानी है।

प्रश्न–सत्य का दर्शन कैसे होगा ?

उत्तर–जो कुछ परिवर्तनशील है, असत्य है, उससे दृष्टि हटा लेने पर सत्य का दर्शन होगा ।

प्रश्न–इन बाहरी नेत्रों से क्या सत्य को देखा जा सकता है ?

उत्तर–बाहरी नेत्रों से बाह्य रूप ही दिखेगा जो सदा एकरस नहीं रहता।

प्रश्न–सत्यदर्शिनी दृष्टि क्या है ?

उत्तर–जिस बुद्धि से असत् का ज्ञान होता है उसी से सत्य का ज्ञान होता है। निर्मल बुद्धि ही सत्यदर्शिनी दृष्टि है ।

प्रश्न–ज्ञान और योग में क्या अन्तर है ?

उत्तर–जानने को ज्ञान कहते हैं, मिलने को योग कहते हैं। जानना बुद्धि से होता है, मिलना अहं (आत्मा) से होता है ।

प्रश्न–'मैं' और 'मेरा' यह अभिमान कैसे छूटेगा ?

उत्तर–जिस नामरूप के साथ मिलकर 'मैं' कहते हो उसको अपने से अलग कर दो, जिस वस्तु तथा व्यक्ति को अपने साथ मिलाकर 'मेरा' कहते हो उससे अपने को अलग कर लो–यही अभिमानशून्य होने का सर्वोच्च उपाय है। (जिसे हमने उत्पन्न नहीं किया और जिससे हम उत्पन्न नहीं हुए उसे 'मैं' और मेरा मानना भूल ही है)

प्रश्न–जीव का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–चैतन्य अथवा ज्ञान ही जीव का स्वरूप है ।

प्रश्न–परमात्मा का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–सत्, चित् आनन्द ही परमात्मा का स्वरूप है ।

प्रश्न–परमात्मा और जीव का सम्बन्ध क्यों है ?

उत्तर–देने के लिए परमात्मा का जीव से और लेते रहने के लिए जीव का परमात्मा से सम्बन्ध होता है। (जिससे सब कुछ की पूर्ति होती है, सभी अभावों की निवृत्ति होती है वह परमात्मा है, और जिसमें अपूर्णता तथा अभाव का दुःख होता है वही जीव है।)

प्रश्न–सुख कैसे मिलता है ?

उत्तर–इच्छाओं की पूर्ति होने से।

प्रश्न–इच्छाओं की पूर्ति कैसे होती है?

उत्तर–पुण्यबल से और विधिपूर्वक प्रयत्न से।

प्रश्न–पुण्यबल किस प्रकार बढ़ता है ?

उत्तर–प्राप्त शक्ति–सम्पत्ति द्वारा और वृद्धों–गुरुजनों, दीन–दुखियों की सहायता करने से ।

प्रश्न–दुःख क्यों होता है ?

उत्तर–इच्छाओं की पूर्ति न होने से और पाप कर्मों के फल भोग से।

प्रश्न–सदा इच्छाओं की पूर्ति क्यों नहीं होती ?

उत्तर–विधिवत् प्रयत्न और पुण्य की कमी के कारण इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती ।

प्रश्न–पाप कैसे बनते हैं ?

उत्तर–अपने सुख के लिए दूसरों को दुःख देने से अथवा सत्य से विमुख होने पर अज्ञानवश पाप बनते हैं।

प्रश्न–पाप से बचने का उपाय क्या है ?

उत्तर–दूरदर्शी दृष्टि द्वारा दुःखों को देखना और उनसे डरना पाप से छूटने का उपाय है ।

प्रश्न–पुण्यकर्म करते हुए भी दुःख क्यों आता है ?

उत्तर–मन में किसी–न–किसी दोष के छिपे रहने के कारण।

प्रश्न–दोष का त्याग कैसे होता है ?

उत्तर–दुःखी होकर त्याग का दृढ़ संकल्प करने पर ।

प्रश्न–त्याग का वास्तविक अर्थ क्या है ?

उत्तर–किसी वस्तु या व्यक्ति को, अपना न मानना त्याग है। अशुभ, अनावश्यक संग्रह को छोड़ना त्याग है।

प्रश्न–अशुभ अनावश्यक संग्रह क्या है ?

उत्तर–जिससे जीव को दुःख भोगना पड़ता है वही सब प्रकार के दोष अशुभ संग्रह हैं।

प्रश्न–वह दोष कौन–कौन हैं जिनका त्याग करना है ?

उत्तर– पराश्रित सुखासक्ति, कामना, लोभ, मोह, अभिमान, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, निंदा, दूसरों को दुःखदायी स्वभाव अर्थात् हिंसा यही सब दोष हैं, जिनका त्याग करना है।

प्रश्न–दुःख भोगते हुए दोषों का त्याग क्यों नहीं होता है ?

उत्तर–सुखों के प्रति आसक्ति प्रबल होने से दोषों का त्याग नहीं होता ।

प्रश्न–गृह, कुटुम्ब, धन को छोड़ने वाले क्या त्यागी नहीं हैं ?

उत्तर–किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति मन में राग रहते हुए ऊपर के त्याग से त्याग पूर्ण नहीं होता । राग का त्याग ही सच्चा त्याग है।

प्रश्न–राग क्या है ?

उत्तर–किसी भी पदार्थ को, देह को अपना मानकर मोहित रहना राग है । सुखद वस्तु के प्रति प्राणों का जो आकर्षण है वही राग है ।

प्रश्न–राग से क्या–क्या हानियाँ हैं?

उत्तर–सारे दोष तथा दुःख और बन्धन राग से परिपुष्ट होते हैं ।

प्रश्न–राग होता ही क्यों है ?

उत्तर–सत्य परमात्मा अथवा स्वरूप से विमुख होने पर माने हुए सुखद पदार्थों के प्रति राग होता है।

प्रश्न–राग का त्याग कैसे होता है ?

उत्तर–सुख के अन्त में दुःखानुभव होने पर जब सबसे निराशा होती है तब विवेक–बल द्वारा राग का त्याग होता है ।

प्रश्न–त्याग और दान में क्या अन्तर है ?

उत्तर–फेंकने को, छोड़ देने को, त्याग कहते हैं । विधिपूर्वक स्थापन को, बोने को दान कहते हैं। फेंकने और बोने में जो अन्तर है वही त्याग और दान में अन्तर है।

(त्याग से सम्बन्ध टूट जाता है किन्तु दान से सूक्ष्मतर सूक्ष्मतम सम्बन्ध दृढ़ होता जाता है। अशुभ, असुन्दर का त्याग किया जाता है, शुभ तथा सुन्दर का दान किया जाता है।)

प्रश्न–त्याग का सुअवसर कब होता है ?

उत्तर–जब दुःखानुभव होता है तभी उस राग का अथवा दोष का त्याग करना चाहिए जिसके कारण दुःख होता है।

प्रश्न–दान कब करना चाहिए?

उत्तर–जब देने योग्य पात्र मिल जाये तभी दान करना चाहिए। (सुखी दशा में दान और दुःखी दशा में दोषों का त्याग किया जाता है।)

प्रश्न–देने योग्य उत्तम वस्तु क्या है ?

उत्तर–जिस अवस्था में तुमने जो कुछ पाया है उसी अवस्था वाले व्यक्ति को उसी प्रकार देना उत्तम दान है।

(दान में सदा शुद्ध, सुन्दर आवश्यक वस्तु ही देनी चाहिए। अशुद्ध, जूठी, काम में लाई हुई, अनावश्यक वस्तु का दान नहीं होता।)

प्रश्न–दान किसे देना चाहिए ?

उत्तर–बालक को, विद्यार्थी को, वृद्ध को, विरक्त को, रोगी को, असहाय अभाव पीड़ित को, असमर्थ को केवल रक्षा मात्र के लिए आवश्यक वस्तु देनी चाहए। जो दूसरों को दे सके उसे विद्या और धन देना चाहिए।

प्रश्न–दान में क्या लेना चाहिए ?

उत्तर–जिससे जीवन का निर्वाह हो, जिससे जीवन में सद्गति हो, जिसकी वृद्धि की जा सके और दूसरों को दी जा सके वही लेना चाहिए।

प्रश्न–दान क्यों देना चाहिए ?

उत्तर–चूंकि कभी लिया गया है इसलिए उद्धण होने के लिए देना चाहिए या फिर कई गुना अधिक पाने के लिए देना चाहिए ।

प्रश्न–दाता से उद्धण कैसे हुआ जा सकता है ?

उत्तर–जिस दशा में जिस अवस्था में तुमने दाता से पाया है उसी अवस्था में जब किसी को अपने सम्मुख देखो उसे तुम भी मिली हुई वस्तु का दान करो, यही दाता से उद्धण होने का उपाय है । (देने की वस्तु शुद्ध हो, सुन्दर हो, समयोपयोगी हो)।

प्रश्न–उत्तम कोटि का दान किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसके पीछे अभिमान न हो, बदले में कुछ लेने की इच्छा न हो, देकर पश्चात्ताप न हो, किसी दूसरे को दुःख न हो वही उत्तम कोटि का दान है ।

प्रश्न–दान के योग्य सुपात्र कौन हैं ?

उत्तर–जो संतोषी हो, परिश्रमी हो, उदार हो, तपस्वी हो, दोषों का त्यागी हो, और भगवद् भक्त अथवा आत्मज्ञानी हो, वही सुपात्र है।

प्रश्न–तप किसे कहते हैं?

उत्तर–कर्त्तव्य पालन में कष्टों से विचलित न होना तप है। साधन भजन की पूर्णता के लिए इन्द्रियों को संयम में रखना तप है।

अपने आप आने वाले दुःख को धैर्य–पूर्वक सहते हुए शान्त रहना तप है।

प्रश्न–तप का फल क्या है ?

उत्तर–दुर्बलता की निवृत्ति और शक्ति की प्राप्ति तप का फल है।

प्रश्न–तप की आवश्यकता कब होती है ?

उत्तर–त्याग का संकल्प जब प्रलोभन से डिगने लगता है तब तप की आवश्यकता होती है।

(मन से त्याग करना मनुष्य के लिए अति सुगम है किन्तु त्याग का संकल्प जब राग से शिथिल होने लगता है तभी तप करना पड़ता है। तप से वह शक्ति प्राप्त होती है जिससे त्याग का संकल्प दृढ़ होता है। मान लो किसी ने मिठाई खाने का त्याग किया और कुछ दिन बाद किसी ने मिठाई खाने का आग्रह किया तब इसके रागवश उसने मिठाई खाली, ऐसी दशा में उस मिठाई के त्यागी को जिह्वा वश में रखने के लिए तप करना होगा जिससे स्वाद की आसक्ति से छुटकारा मिल जाये। जिस क्षेत्र में

दुर्बलता होती है उसी क्षेत्र को संयम तप के द्वारा शक्तिशाली बना लेना होता है। जिससे शरीर से आलस्य तथा असहिष्णुता दोष की, इन्द्रियों के विषय–प्रवृत्ति की, मन से विषय जनित सुखासक्ति की निवृत्ति हो उसी का नाम तप है।)

प्रश्न–उत्तम तप कौन–सा है ?

उत्तर–जिससे मानव सर्वोत्तम पद अर्थात् सर्वोत्तम लाभ प्राप्त करे। जिस तप से अहंकार अभिमान प्रबल होता है, जिस तप की शक्ति भोग की प्राप्ति में व्यय होती है, जिस तप की शक्ति क्रोधाग्नि में आहुति का काम देती है, उस तप से मानव का प्रायः पतन ही होता है। लेकिन जिस तप से मानव की सारी दुर्बलता दूर होती है, जिस तप की शक्ति से जितेन्द्रियता प्राप्त होती है, मन स्ववश होता है, मानव दूसरों की निष्काम सेवा कर सकता है, जिस तप की शक्ति से सद्‌गुणों का विकास, दोषों का नाश, सद्ज्ञान का प्रकाश होता है–वही सर्वोत्तम तप है ।

प्रश्न–भेदभाव क्यों है ?

उत्तर–बुद्धि में भेदभाव रहने के कारण भाव तथा क्रिया में भेद रहता है।

प्रश्न–भेदभाव किस प्रकार मिटता है ?

उत्तर–यथार्थ सत्य लक्ष्य का ज्ञान होने पर बुद्धि के ऊपर उठ जाने पर भेद–भाव दूर होता है ।

(जितना अधिक सत्य का ज्ञान होता जाता है, अनेकता की संकीर्णता के भीतर से बुद्धि जितना ऊपर उठ जाती है उतना ही नीची भूमि में रहने वाली सारी वस्तुएं बहुत छोटी प्रतीत होती हैं । दृष्टि की व्याप्ति और उसका आकार विस्तार–परिधि बढ़ती जाती है तभी ऊंच–नीच का भेदभाव मिटता जाता है।)

प्रश्न–सत्य लक्ष्य का ज्ञान किस प्रकार होता है ?

उत्तर–ज्ञानी महापुरुष की श्रद्धापूर्वक सुसंगति से ।

प्रश्न–क्या पुस्तक पढ़कर ज्ञान नहीं होता है ?

उत्तर–बुद्धि की योग्यता के अनुसार ज्ञान होता है और उस ज्ञान का अधिकांश में अभिमान होता है।

(पुस्तक में शब्द हैं, शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं, अर्थ के पीछे भाव और भाव के पीछे रहस्य छिपा रहता है, उसका ज्ञान सद्‌गुरु कृपा से ही होता है।)

प्रश्न–ज्ञानी महापुरूष के सुसंग से भी किसी–किसी को ज्ञान क्यों नहीं होता ?

उत्तर–ज्ञान के साधन शुद्ध न होने से ज्ञान नहीं होता।

(बुद्धि पूर्वक संग, सात्विक श्रद्धा, जानने की प्रबल इच्छा, इन्द्रिय–संयम तथा आज्ञा पालन रूप सन्त सद्‌गुरु की सेवा, यही ज्ञान के साधन हैं)।

प्रश्न–बुद्धि पूर्वक संग का क्या अर्थ है ?

उत्तर– ज्ञानी पुरूष के सद्ज्ञान को बुद्धि में धारण करना ही बुद्धिपूर्वक संग है ।

(ज्ञानी पुरुष के समीप शरीर बैठा रहे किन्तु मन तथा बुद्धि सांसारिक बातों में उलझी रहे तो वह ज्ञानी का सुसंग नहीं कहा जा सकता । यदि शरीर बाजार में बैठा रहे किन्तु मन ज्ञानी पुरुष में लगा हो, बुद्धि ज्ञानी पुरुष के ज्ञान स्वरूप में स्थिर हो रही हो, तो शरीर से दूर होने पर भी ज्ञानी का सुसंग सिद्ध हो जाएगा।)

प्रश्न–सात्विक श्रद्धा किसे कहते हैं ?

उत्तर–सत्य श्रेय को (जिससे परम शान्ति मिलती है) धारण करने के लिए अपने हृदय को ज्ञानी के आगे अर्पण करना सात्विक श्रद्धा है ।

(त्याग, तप, दान की भांति श्रद्धा भी निकृष्ट, मध्यम उत्तम–तीन प्रकार की होती है । गीता में इसका वर्णन है। संक्षेप में श्रद्धा के भेद समझना हो तो जो अपने श्रद्धास्पद देव से सांसारिक सुख चाहता है वह तमोगुणी, निकृष्ट श्रद्धालु है, जो उनसे शक्ति चाहता है वह रजोगुणी, मध्यम श्रद्धालु है और जो केवल शान्ति चाहता है वह सतोगुणी, उत्तम श्रद्धालु है।)

प्रश्न–मनुष्य अपने कर्त्तव्य को जानते हुए भी उसे पूर्ण क्यों नहीं करता ?

उत्तर–कर्त्तव्यपालन से प्रेम नहीं है। (भोग–सुखों के प्रति आसक्तिवश मानव कर्त्तव्य–पालन में आलस्य, प्रमाद करता है)।

प्रश्न–योगी की पहिचान क्या है ?

उत्तर–जो भोगी न हो वही योगी है। जो अपने आपको परमात्मा से अभिन्न देखते हुए सभी दशा में समस्थित, शांत, निर्भय, निश्चिन्त रहता है, वही योगी है। जिसका चित्त परमात्मा से जुड़ा है वही योगी है ।

प्रश्न–योग किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसको भूलने से संयोग–वियोग का बन्धन होता है और जिसके अनुभव से संयोग–वियोग का बन्धन मिट जाता है, वही योग है।

प्रश्न–योग सिद्धि का साधन क्या है ?

उत्तर–संयोग से मिलने वाले सुखों से विरक्ति, चित्त वृत्ति की निवृत्ति योग सिद्धि का साधन है। चित्त का चिन्मय होना ही योग सिद्धि है।

प्रश्न–विरक्ति क्यों नहीं होती ?

उत्तर–सुखासक्ति ही विरक्ति में बाधक है। सुख के अन्त में बार–बार दुःखानुभव होने पर सुखासक्ति छूटेगी, तभी विरक्ति होगी ।

प्रश्न–भगवान का भजन कैसे करें ?

उत्तर–जिस प्रकार कामी प्रिय कामिनी का तथा लोभी धन का भजन करता है, वैसे ही भगवद्–भजन करना चाहिए ।

(भगवान को सर्वभावेन अपना जानकर उन्हीं के होकर रहना, उनके अनुकूल ही सब कुछ करना, उनके नित्य सम्बन्ध को कहीं न भूलना, यही भजन है। संसार से निराशा होने पर ही भगवद्–भजन पूरा हो सकता है।)

प्रश्न–दोषों की वृद्धि कैसे रुकती है?

उत्तर–जो कुछ अपने को शुभ सुन्दर मिला है, उसका दान करने से दोष नष्ट होते हैं ।

प्रश्न–सद्गुणों की वृद्धि कैसे होती है ?

उत्तर– अपने प्रति प्रतिकूल व्यवहार का बदला न देने से तथा निष्काम सेवा से ।

प्रश्न–जानते हुए भी दोषों का त्याग क्यों नहीं होता ?

उत्तर–मस्तिष्क और हृदय में एकता न होने से। (बुद्धि–विवेक द्वारा मानव जिसे छोड़ना चाहता है, मन से उसको सुखद मानकर पकड़े ही रहता है)।

प्रश्न–भय क्यों लगता है ?

उत्तर–निर्भय का आश्रय न लेने से अथवा हानि तथा दुःख की आशंका से या फिर विवेक एवं अभ्यास की कमी के कारण भय लगता है।

प्रश्न–मनुष्य को किससे डरना चाहिए ?

उत्तर–उस अज्ञान से तथा अहंकार एवं पाप से जो परमेश्वर से विमुख रखता है।

प्रश्न–अज्ञान की निवृत्ति कैसे होगी ?

उत्तर–ज्ञानी महापुरुष के श्रद्धापूर्वक सुसंग से ।

प्रश्न–अहंकार कैसे नष्ट होगा ?

उत्तर–अपने को परमात्मा की सत्ता में अनुभव करके विनम्र होने से।

प्रश्न–ज्ञानी पुरुष का सुसंग कैसे मिलेगा ?

उत्तर–जिज्ञासा प्रबल होने पर परमेश्वर की कृपा से ।

प्रश्न–आत्मकल्याण का सरल साधन क्या है ?

उत्तर–जो कुछ तुम कर सकते हो, वही सरल साधन है । वास्तव में जो कुछ करने का अभ्यास हो जाता है वही सरल है जिसका अभ्यास नहीं होता, वही कठिन है।

प्रश्न–कल्याणार्थी का कर्त्तव्य क्या है ?

उत्तर–जो कुछ मनुष्य जानता है वही करे।

प्रश्न–जिस मनुष्य को ज्ञान न हो वह क्या करे ?

उत्तर–जो मनुष्य कर्त्तव्य का प्रश्न उठायेगा उसे जो कुछ करना चाहिए और जो कुछ न करना चाहिए उसका अवश्य ही ज्ञान होगा। इसी ज्ञान के अनुसार कर्त्तव्य की पूर्ति, अकर्त्तव्य का त्याग करना चाहिए।

(प्रत्येक मनुष्य को भले और बुरे का ज्ञान होता है, जो कुछ अपने लिए दूसरों से चाहता है वही दूसरों के लिए करे, जो कुछ अपने प्रति दूसरों से नहीं चाहता वही दूसरों के साथ न करे–इसी को सदाचार, सत्कर्त्तव्य कहते हैं।)

प्रश्न–धर्म का सरल अर्थ क्या है ?

उत्तर–किसी भी वस्तु का नाम लो–उसका जो जीवन है वही धर्म है। किसी भी वस्तु में जब धर्म का नास तथा विनाश हो जाता है वही मृत्यु है। जो जिसको धारण करता है वही उसका धर्म है।

प्रश्न–निष्काम कर्म का अर्थ क्या है ?

उत्तर–जिस कर्म के बदले में लौकिक पारलौकिक कोई लाभ न लिया जाय।

प्रश्न–ध्यान कैसे करना चाहिए ?

उत्तर–किसी विरहिणी प्रेमिका को देखो । ध्यान किया नहीं जाता, वह तो स्वतः ही होता है। कोई सच्चा प्रेमी ही ध्यानी होता है, यथार्थ ज्ञानी ही प्रेमी होता है, संयमी श्रद्धालु जिज्ञासु ही ज्ञानी होता है।

प्रश्न–भगवान के दर्शन किसे होते हैं ?

उत्तर–जो भगवान के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहता । उनके बिना, जो कहीं भी कुछ भी पाकर चैन नहीं लेता उसी को दर्शन होते हैं।

प्रश्न–जीव को शान्ति कैसे मिल सकती है ?

उत्तर–रागद्वेष तथा दोषों के त्याग से ।

(अहंकार, मनोकामना, भोगासक्ति, लोभ, मोह तथा अभिमान आदि विकार ही शान्ति की ओर जीवन को नहीं जाने देते।)

प्रश्न–जीव को बन्धन में किसने डाला है ?

उत्तर–सुख की इच्छा ने ।

(सत्य परिपूर्ण परमात्मा से विमुख होने पर इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छा ही वह डोरी है, जो सांसारिक वस्तुओं, व्यक्तियों से लिपटकर जीव को बन्धन में डाल देती है। इच्छा के त्याग बिना मुक्ति नहीं मिलती।)

प्रश्न–कोई गृहस्थ त्यागी कैसे हो सकता है ?

उत्तर–आवश्यकता की प्रबलता ही त्यागी बनाती है।

(मनुष्य उसी का त्याग नहीं कर पाता जिससे प्रेम है और जिससे पूर्ण प्रेम है उसके लिए सब कुछ त्याग कर देना अति सुगम होता है।)

प्रश्न–अभिमान निवृत्ति का क्या उपाय है ?

उत्तर–किसी भी वस्तु या व्यक्ति के संग से अपने को जो कुछ बना लिया है उससे स्वयं को अलग समझने से अभिमान की निवृत्ति होती है। सारी शक्ति सर्वशक्तिमान परमेश्वर का अनुभव करने से अभिमान नहीं रहता है।

प्रश्न–लोभ की निवृत्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर–धन की असारता अनुभव करने से, तृष्णा के त्याग से तथा सन्तोष धारण करने से ।

प्रश्न–मोह कैसे दूर हो सकता है ?

उत्तर–किसी को अपना न मानना तथा सबको परमात्मा की जीवात्मा जानना–यही मोह–निवृत्ति का उपाय है। सद्विवेक से मोह दूर होता है।

प्रश्न–क्रोध कैसे निवृत्त होता है ?

उत्तर–अभिमान तथा लोभ छोड़ने पर क्रोध न आयेगा ।

(क्रोध तभी आता है जब कोई अपनी बात नहीं मानता अथवा आपका अनादर करता है। जितना ही अधिक अभिमान होता है उतना ही अधिक क्रोध मान में धक्का लगने से आता है। जितना ही अधिक लोभ प्रबल होता है उतना ही अधिक क्रोध हानि पहुंचाने वाले के प्रति आता है।)

प्रश्न–शिक्षित विद्वानों में भी काम क्रोधादि विकार क्यों प्रबल होते हैं ?

उत्तर–मनुष्य में पशु प्रकृति और आसुरी प्रकृति जब तक प्रबल रहती है। तब तक विकार प्रबल रहते हैं ।

(किसी मनुष्य में जब दैवी अंश अर्थात् दैवी सम्पत्ति जाग्रत एवं क्रियाशील न होगी तब तक पशु प्रकृति का, आसुरी प्रकृति का दमन नहीं हो सकता। त्याग, दान, दया, न्याय, प्रेम, तप ये सब दैवी अंश को प्रिय लगते हैं, आसुरी अंश को नहीं।)

प्रश्न–जीव को शान्ति कैसे मिल सकती है ?

उत्तर–जिससे अशान्ति होती है उसका त्याग करने से ।

(काम, क्रोध, मोह, लोभादि विकारों की वृद्धि में ही अशान्ति होती है, अतः इन्हीं सब दोषों विकारों का त्याग करना चाहिए।)

प्रश्न–क्या ईश्वर के स्मरण से ही शान्ति तथा शक्ति नहीं मिल सकती ?

उत्तर–उसी प्रकार के स्मरण से शान्ति या शक्ति मिल सकती है जिसमें सब कुछ की विस्मृति हो जाये ।

प्रश्न–ईश्वर का ऐसा प्रगाढ़–स्मरण कैसे होगा ?

उत्तर–जब ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी की आवश्यकता न रह जाएगी ।

प्रश्न–एकमात्र परमेश्वर की आवश्यकता कैसे प्रबल होगी ?

उत्तर–अपनी प्राप्त शक्ति और संसार से निराश होने पर ही ईश्वर की आवश्यकता प्रबल हो सकती है।

प्रश्न–कम–से–कम कितना जप स्मरण करना चाहिए ?

उत्तर–कम से कम प्रपंच–कथन स्मरण करके, अधिक से अधिक परमात्मा का नाम, जप तथा स्मरण चिन्तन करना चाहिए ।

प्रश्न–अधिक–से–अधिक भजन की पहिचान क्या है ?

उत्तर–जब प्रपंच की बातें नितान्त छूट जायें। तभी अधिक भजन समझना चाहिए।

प्रश्न–भजन किसे कहते हैं ?

उत्तर–प्रेमास्पद की सेवा उनका भजन है। सेवा तभी होता है जब प्रीति प्रबल होती है, प्रीति तभी प्रबल होती है जब अपनत्व का भाव प्रबल होता है, अपनत्व भाव की प्रबलता तभी समझी जाती है जब अपने सुख की चिन्ता ही नहीं रहती है केवल प्रेमास्पद की सेवा का ही ध्यान रहता है, यही सच्चा भजन है।

प्रश्न–निष्काम सेवा कैसे पूरी होगी ?

उत्तर–सेवा के बदले में किसी से कुछ न चाहने से ।

(जो मनुष्य सेवा के बदले में धन लेता है, जो सेवा के बदले में सेवा ले लेता है इसके भी आगे जो बदला नहीं चाहता परन्तु मान बड़ाई यश चाहता है, या फिर सेवा के बदले में स्वर्ग चाहता है उसकी सेवा सकाम कही जाती है। किन्तु लोक परलोक में कुछ भी नहीं चाहता भगवान से भी कुछ नहीं चाहता वही सेवा–निष्काम सिद्ध होती है।)

प्रश्न–संसार से सम्बन्ध कैसे टूट सकता है ?

उत्तर–संसार से जो कुछ भी नहीं चाहता, उसी का सम्बन्ध टूटता है। अर्थात पूर्ण विरक्त ही संसार से सम्बन्ध तोड़ पाता है।

प्रश्न–घर में परिवार में रहकर भगवान का भजन क्या हो सकता है ?

उत्तर–घर में, परिवार में रहकर भगवद्–भजन हो सकता है किन्तु मन में घर को परिवार को रखते हुए भजन–ध्यान नहीं हो सकता है।

(मनुष्य घर में रहे पर मन से घर के प्रति ममता न रखे, परिवार में रहे पर मन से उन्हे अपना मानकर अभिमानी न बने, इसी प्रकार मन में धन–वैभव, अधिकार का अभिमान न होने दे, तब ईश्वर चिन्तन भजन कहीं भी रहते हुए पूर्ण हो सकता है।)

प्रश्न–भगवान में ही मन कैसे लगता है ?

उत्तर–भगवान से ही पूर्ण प्रेम होने पर उनमें मन लग जाता है।

प्रश्न–भगवान से प्रेम कैसे होता है ?

उत्तर–उनके सत्य, सुन्दर, शिव स्वरूप का ज्ञान होने पर ही उनसे प्रेम होता है ।

प्रश्न–भगवान का ज्ञान कैसे होता है ?

उत्तर–भगवद्–भक्तों तथा ज्ञानियों का श्रद्धापूर्वक संग करते रहने से ज्ञान होता है ।

प्रश्न–श्रद्धा कैसे प्रबल होती है ?

उत्तर–जानने की इच्छा प्रबल होने पर, ज्ञानी के ज्ञान की थाह न पाकर, बुद्धि के मौन होने पर ।

प्रश्न–जानने की रुचि कैसे प्रबल होती है?

उत्तर–वर्तमान परिस्थिति से दुःखी होने पर दुःख के कारण जानने की इच्छा प्रबल होती है, तभी ज्ञानी पुरुष की शरण दुःखी मानव लेता है ओर सत्य का ज्ञान प्राप्त करता है।

प्रश्न–कभी कभी कोई वस्तु प्रयत्न करने पर भी क्यों नहीं मिलती ?

उत्तर–पुण्य की कमी के कारण अभिलषित वस्तु नहीं मिलती ।

प्रश्न–किसी–किसी को बिना प्रयत्न के ही बहुत कुछ मिलता है, सो क्यों ?

उत्तर–इसीलिए मिलता कि वह उसके हिस्से का है और पूर्व के संचित पुण्य से मिलता है।

प्रश्न–जिस वस्तु की चाह है वह कैसे प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर–जिसकी चाह है उसके बिना किसी अन्य वस्तु में चैन न लेने से उसी एक का चिन्तन, उसी के लिए निरन्तर प्रयत्न करने से मनचाही वस्तु मिल जाती है ।

प्रश्न–सेवक का कर्त्तव्य क्या है ?

उत्तर–स्वामी की रुचि पूर्ति करते हुए अपने लिए कुछ न चाहे ।

प्रश्न–स्वामी किसे समझना चाहिए?

उत्तर–जो किसी वस्तु तथा व्यक्ति के अधीन न हो ।

प्रश्न–वस्तु तथा व्यक्ति के अधीन क्यों होना पड़ता है?

उत्तर–सुखेच्छा को तृप्त करने के लिए ।

प्रश्न–पराधीनता कैसे मिटेगी ?

उत्तर–इच्छाओं का त्याग करने पर ।

प्रश्न–इच्छाओं का त्याग कैसे हो सकता है ?

उत्तर–जब सुखों के अन्त में निश्चित रहने वाले दुःखों का अनुभव होता है तभी कोई शान्ति चाहने वाला इच्छाओं का त्याग कर सकता है।

(इच्छा की पूर्ति में सुख मिलता है, पूर्ति में बाधा पड़ने से दुःख मिलता है। इच्छाओं के कारण ही मनुष्य को रागी, द्वेषी, क्रोधी, लोभी, मोही होना पड़ता है। इसलिए जब तक सुख की इच्छा का त्याग न हो तब तक सहस्त्रों वर्ष तक इच्छा पूर्ति से शांति नहीं मिलती सुख भले ही मिल सकता है, जिस सुख का अन्त दुःख में ही होता है।)

प्रश्न–सबसे अच्छा व्यक्ति कौन समझा जाता है ?

उत्तर–जो बुरे व्यक्ति में भी अच्छाई को ही खोजता है ।

प्रश्न–सबसे बुरा व्यक्ति कौन माना जाता है ?

उत्तर–जो अच्छे व्यक्ति में बुराई निकालता है।

प्रश्न–संसार में सुन्दर मनुष्य कौन है ?

उत्तर–जो अनन्त सौन्दर्यनिधि भगवान का चिन्तन करता है।

प्रश्न–निर्दोष कौन है ?

उत्तर–जिसे अपने को ढकने की जरूरत नहीं पड़ती जो नग्न रह सकता है।

(नग्न का अर्थ शरीर को वस्त्रहीन दशा में रखना नहीं है बल्कि जिसका जीवन छल, कपट, अभिमान, माया के आवरण से रहित है वही नग्न है । दोष को ढकने के लिए ही पर्दा चाहिए। निर्दोष को आवरण पहनने की आवश्यकता नहीं होती)

प्रश्न–निर्मल कौन है ?

उत्तर–जो अपनी जाति से भिन्न पदार्थ अपने ऊपर नहीं रहने देता वही निर्मल है।

(अर्थात् जीवात्मा चैतन्य जाति का और शरीर इन्द्रियां अन्तःकरण की जाति जड़ है। जो देहादि संघात के अभिमान से रहित है वही निर्मल है।)

(जो अपने अविनाशी चेतनस्वरूप के ऊपर जड़त्व, विनाशत्व को नहीं चढ़ने देता है वही निर्मल है।)

प्रश्न–इस स्वार्थी दुनिया में बुराई से कौन बच सकता है ?

उत्तर–भलाई करने का व्रत लेकर कोई परमार्थी ही बुराई से बच सकता है।

प्रश्न–परमार्थी किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिस लाभ में कभी हानि नहीं होती उस लाभ के चाहने वाले को परमार्थी कहते हैं, अर्थात् संसार से विरक्त और परमात्मा की भक्ति चाहने वाले को परमार्थी कहते हैं।

प्रश्न–दूसरों की भलाई कैसे की जा सकती है?

उत्तर–स्वयं भला होकर ही कोई दूसरों की भलाई कर सकता है। उसी प्रकार जैसे कि किसी की बुराई करने के पहले वह स्वयं को बुरा बना लेता है।

प्रश्न–स्वयं भला होने का क्या उपाय है ?

उत्तर–बुराई का उत्तर बुराई से न देकर ही कोई भला हो सकता है।

प्रश्न–अपराधी के प्रति सज्जन पुरुष का क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर–जिससे अपराधी का हित हो, अपराध करना छोड़ दे, वही कर्त्तव्य है।

प्रश्न–**कर्त्तव्य कर्म, अवसर पर भूल जाता हो तो क्या करे ?**

उत्तर–जिसके संग से कर्त्तव्य का स्मरण रहता हो उसी का संग करे।

प्रश्न–**जीव का पतन क्या है ?**

उत्तर–सत्य परमेश्वर से विमुखता ।

प्रश्न–**जीव का उत्थान क्या है?**

उत्तर–परमेश्वर के सम्मुख होकर प्रत्येक कर्म करना ।

प्रश्न–**परमेश्वर से विमुख व्यक्ति कौन है ?**

उत्तर–जो देहाभिमानी, लोभी, मोही है ।

प्रश्न–**यह जीव माया में क्यों बद्ध हो गया है ?**

उत्तर–मायापति को भूल कर जो माया का स्वामी बनने चलता है उसी को माया बांधती है और संसार में नचाती है। यही माया जिस जीव को अपने स्वामी परमेश्वर का भक्त देखती है उसको अलौकिक प्यार करती है, स्वतन्त्र कर देती है।

प्रश्न–**स्वर्ग क्या है ?**

उत्तर–भयरहित, निष्कण्टक भोग का स्थान ही स्वर्ग है ।

प्रश्न–**नरक क्या है ?**

उत्तर–भय सहित सर्वांगों द्वारा दुःख भोग का स्थान ही नरक है ।

प्रश्न–**जीव को नरक में कौन ले जाता है ?**

उत्तर–भोगासक्त मन ।

प्रश्न–**स्वर्ग में कौन ले जाता है ?**

उत्तर–भोगों से विरक्त, शुभ कर्म में अनुरक्त मन ।

प्रश्न–**संसार में सबसे श्रेष्ठ पुरुष कौन है ?**

उत्तर–जिसे संसार से कुछ न चाहिए ।

प्रश्न–**सबसे अधिक दरिद्र कौन है ?**

उत्तर–जिसके मन में भोग सुखों की तृष्णा प्रबल है।

प्रश्न–**जीव जानते हुए क्यों गिरता है?**

उत्तर–ज्ञान का अनादर करने के कारण।

प्रश्न–**जीव अपने दु:खद स्थल को देखता क्यों नहीं ?**

उत्तर–काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारों से अंधा, उन्मत्त होने के कारण।

प्रश्न–**संसार में सत्यदर्शी यथार्थ दृष्टि वाला कौन है ?**

उत्तर–जो कामी, क्रोधी, लोभी, मोही और अभिमानी नहीं है।

प्रश्न–**संसार में सबसे बड़ा विजयी वीर पुरुष कौन हुआ है?**

उत्तर–जिसने अपनी इन्द्रियों को, मन को जीत लिया है।

प्रश्न–**सबसे अधिक पराधीन व्यक्ति कौन है ?**

उत्तर–जो स्वात्मा को न जानकर शरीर, इन्द्रिय, मन के वशीभूत होकर रहता है।

प्रश्न–**संग किसका कल्याणकारी है?**

उत्तर–जो सर्वसंगाभिमान से मुक्त है उसी का संग सर्वोत्तम है।

प्रश्न–**संगाभिमान से मुक्त किसे समझना चाहिए?**

उत्तर–जो संगजनित सुख भोग से विरक्त है ।

प्रश्न–**किसके संग से बचना चाहिए ?**

उत्तर–जो अज्ञानी है, भोगासक्त है ।

प्रश्न–**अधम दुष्ट कौन है ?**

उत्तर–जो हिंसा करता है, दुष्कर्मों की पूर्ति में सुख मानता है ।

प्रश्न–**अध:पतन से मानव कैसे बच सकता है ?**

उत्तर–नीचे रहने वाली वस्तु, व्यक्ति से मिलने वाले लाभ का त्याग करने पर ।

प्रश्न–**उन्नति चाहने वालों का कर्त्तव्य क्या है ?**

उत्तर–सदा सर्वोच्च सत्य लक्ष्य पर दृष्टि रखना, नीचे की ओर न झांकना।

प्रश्न–**सर्वोत्तम पद की प्राप्ति कैसे होती है ?**

उत्तर–समस्त कामनाओं का त्याग करने से सर्वोत्तम पद प्राप्त होता है।

प्रश्न–**मानव–जीवन की सफलता क्या है ?**

उत्तर–फिर जन्म लेने की आवश्यकता न रहे तभी जीवन की सफलता है।

प्रश्न–**जन्म क्यों लेना पड़ता है ?**

उत्तर–सांसारिक सुख भोग की वासना रहने के कारण ।

प्रश्न–**सबसे उत्तम मृत्यु किसकी मानी जाती है?**

उत्तर–जिसे फिर जन्म न लेना पड़े ।

प्रश्न–**सदा स्मरणीय क्या है ?**

उत्तर–सत्य परमात्मा और जगत् का मिथ्यात्व अथवा मृत्यु ।

प्रश्न–**विस्मरण के योग्य क्या है ?**

उत्तर–जो अपना नहीं है ।

प्रश्न–**क्या–क्या अपना नहीं है ?**

उत्तर–अपने आपके अतिरिक्त अथवा परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी अपना नहीं है ।

प्रश्न–**विरक्त ज्ञानी गुरु कब और कैसे मिलते हैं** ?

उत्तर–जब आवश्यकता होती है तब मिलते हैं और भगवान की कृपा से मिलते हैं ।

प्रश्न–**भगवत्–कृपा कब होती है ?**

उत्तर–जब जीव भगवान को चाहता है तभी कृपा की प्रतीति होती है।

प्रश्न–**जीव का शत्रु कौन है ?**

उत्तर–जो परमात्मा से विमुख बनाता है ।

प्रश्न–**जीव का मित्र कौन है ?**

उत्तर–जो परमात्मा के सम्मुख करता है ।

प्रश्न–**शिष्य क्यों बनना चाहिए ?**

उत्तर–गुरु होने के लिए शिष्य होना आवश्यक है ।

प्रश्न–**गुरु किसे बनाना चाहिए ?**

उत्तर–जो सत्य–तत्व ज्ञानी हो, असत् से विरक्त हो, नित्य शान्त हो, जो शिष्य को गुरु बनाने में समर्थ हो उसे ही गुरु समझना चाहिए ।

प्रश्न–**सच्चे शिष्य के क्या लक्षण हैं?**

उत्तर–पूर्ण प्रगाढ़ सतोगुणी श्रद्धा जिसमें हो, जो सत्य ज्ञान का ही भूखा हो, आज्ञाकारी, दानी, कष्ट सहिष्णु, तपस्वी, विरागी हो और भगवान को ही पाने का प्रेमी हो ।

प्रश्न–दीक्षा का अर्थ क्या है ?

उत्तर–शिक्षा के सदुपयोग की सुविधि को दीक्षा कहते हैं । ज्ञान–रूपी दृष्टि खोलने को दीक्षा कहते हैं ।

प्रश्न–गुरुदेव के संग का, उपदेश का प्रभाव किसी–किसी पर क्यों नहीं पड़ता है?

उत्तर–जो शिष्य नहीं है उसी पर प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् श्रद्धाहीन पर प्रभाव नहीं पड़ता ।

(गुरुदेव के उपदेश का अधिकारी या तो कोई भोगसुखों से विरक्त व्यक्ति है या फिर कोई पूर्ण दुःखी व्यक्ति है या सब प्रकार से सुखी व्यक्ति है। तीनों प्रकार के व्यक्तियों में प्रगाढ़ श्रद्धा, प्रबल जिज्ञासा तथा इन्द्रियसंयम का होना अत्यावश्यक है।)

प्रश्न–भगवान से अनुराग किस प्रकार प्रबल होगा ?

उत्तर–सांसारिक भोगसुखों से प्रबल विराग होने पर अनुराग प्रबल होगा।

प्रश्न–भोगसुखों से विराग कैसे होगा ?

उत्तर–अधिक–से–अधिक दुःखानुभव होने से या गुरु के सुसंग द्वारा यथार्थ विचार करते रहने से वैराग्य होगा ।

प्रश्न–विविध विषय–सुखों में चंचल हुए मन को कैसे वश में किया जाय?

उत्तर–जहाँ मन नहीं लगता है वहीं पर गुण–दर्शन करते हुए बार–बार उसे लगाते रहने से, जहाँ मन बार–बार जाता है वहाँ दोष दर्शन करते हुए बार–बार हटाते रहने से मन स्वच्छ हो जाता है ।

प्रश्न–मन की विषयासक्ति, सुखासक्ति कैसे मिटेगी ?

उत्तर–या तो दूसरों की सेवा में निरन्तर संलग्न रहने से या विविध व्रत और क्रमशः कठिन तप करने से ।

(श्रम की कमी, भरपूर भोजन, विषयी जनों का संग, विषय–सुख का मनन चिंतन, यह सब बातें जब तक चलेंगी तब तक विरक्ति पूर्ण हो ही नहीं सकती)।

प्रश्न–ऊंच–नीच की भेद दृष्टि कैसे मिटती है ?

उत्तर–अनन्त नामरूपों का प्रकाशक एक ही आत्मा परमात्मा है–यह ज्ञान होने पर ही भेद–दृष्टि मिटती है।

प्रश्न–दुःख भोगते हुए भी दोषों का त्याग क्यों नहीं होता ?

उत्तर–सुखों के प्रति आसक्ति प्रबल है इसलिए त्याग नहीं होता ।

प्रश्न–पूर्ण त्यागी होने के लिए दुःखी का क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर–परमात्मा से अनुराग बढ़ाये या फिर और अधिक दुःख की बाट देखे ।

प्रश्न–साधक को किन बातों से सावधान रहना चाहिए?

उत्तर–आलस्य से, प्रमाद से, मन की इच्छाओं से, प्रलोभनों से, निराशा से, मान प्रतिष्ठा सुखोपभोग से, प्राप्त शक्ति द्वारा चमत्कार प्रदर्शन से, समय और शक्ति के अपव्यय से सावधान रहना चाहिए।

प्रश्न–साधक का सर्वोपरि लाभ क्या है ?

उत्तर–अपना सब कुछ देकर भगवान को पा लेना और फिर किसी के बदले में भगवान को न देना, अर्थात् न भूलना यही साधक के लिए परम लाभ है ।

प्रश्न–प्रभु की अनन्त कृपा का अनुभव कैसे होता है ?

उत्तर–अपने दुःख–सुख की चिन्ता छोड़कर परम प्रभु का चिंतन करते रहने से उनकी कृपा का निरन्तर अनुभव होता है ।

प्रश्न–साधक को सदा क्या स्मरण रखना चाहिए ?

उत्तर–जहाँ जाना है जिसे पाना है उसे ही स्मरण रखना चाहिए।

प्रश्न–विस्मरणीय क्या है ?

उत्तर–जो पीछे छूट चुका है और जो आगे छूट जायेगा वह सब विस्मरणीय है।

प्रश्न–साधक भजन में उन्नति के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर–जब बीती हुई बातों का स्मरण नहीं आता, आगे की कुछ चिन्ता नहीं रहती, भगवान–स्मरण के साथ मिलने की व्याकुलता बढ़ती जाती है, मन की वृत्तियाँ बहिर्मुखी नहीं रहती, यही साधक–भजन में उन्नति के लक्षण है।

प्रश्न–**साधक अपने को विघ्न–बाधाओं से कैसे बचा सकता है?**

उत्तर–भगवत् शरण को सदा स्मरण रखने से ।

प्रश्न–**भगवत् शरण को भूलने के क्या लक्षण हैं ?**

उत्तर–जब साधक अपने साधक–भजन को दूसरों से प्रकट करने लगे, मान–प्रतिष्ठा में मन रस लेने लगे तब समझना चाहिए कि शरण की विस्मृति हो गई ।

प्रश्न–**साधक अपने लिए कौन वस्तु चाहे, जिससे कि संसार में पतन न हो?**

उत्तर–अपने लिए केवल शान्ति चाहे और जो शक्ति मिले उससे जीवों की सेवा सहायता करे, तभी पतन न होगा ।

प्रश्न–**परमात्मा के स्मरण में मन चंचल हो तो क्या करना चाहिए ?**

उत्तर–जो कुछ स्थिर नहीं है उन वस्तुओं से ही विचार–पूर्वक विरागी बने और जो सदा एकरस अविनाशी तत्व है, उस आत्मा में ही बार–बार मन को लगाता रहे ।

प्रश्न–**क्या–क्या स्थिर नहीं है ?**

उत्तर–शरीर, अवस्था, सुन्दर रूप, बल, भोग सुख, सम्बन्धी, सम्बन्ध तथा इसके अतिरिक्त जो कुछ भी दृश्यमान है वह कुछ भी स्थिर नहीं है। इसमें मन को न लगाना चाहिए ।

प्रश्न–**साधक की सहायक वस्तुयें क्या हैं ?**

उत्तर–परमार्थ सिद्धि के लिए समय, व्रत, तप का दृढ़ संकल्प, निरन्तर उत्साह, निष्काम सेवा, साहस, धैर्य, सतत् प्रयत्न और सद्गुरू–शरण ।

प्रश्न–**सुयोग साधक किसे कहना चाहिए ?**

उत्तर–जिसमें नम्रता हो, सरलता हो, कष्ट सहने का बल हो, जो सदा प्रसन्न रहता हो, जिसकी इन्द्रियाँ स्ववश हों, जो आज्ञापालन में सदा वीर हो।

प्रश्न–**साधक का पतन क्या है ?**

उत्तर–प्राप्त शक्ति का इच्छा–पूर्ति के लिए उपभोग करना पतन है।

प्रश्न–साधक की सिद्धि क्या है ?

उत्तर–अपने प्रेमास्पद का नित्य योगी होना ।

प्रश्न–साधक की उन्नति कैसे होती है ?

उत्तर–संसार का जो कुछ स्वीकार किया है, उसे अस्वीकार करते जाने से उन्नति होती है ।

प्रश्न–साधक की रुकावट क्या है ?

उत्तर–संसार की वस्तुओं में रागी होना यही रुकावट है। अशुभ अनावश्यक तुच्छ का त्याग न करना रुकावट है ।

प्रश्न–साधक कौन है ?

उत्तर–जो भगवान से कुछ चाहता है वही साधक है ।

प्रश्न–सिद्ध कौन है ?

उत्तर–जिसकी सब चाहें मिट जाती हैं वही सिद्ध है। जो देखकर, सुनकर भी कुछ नहीं चाहता वही सिद्ध है।

प्रश्न–साधन क्या है ?

उत्तर–अन्तःकरण ही साधन है। जिसके द्वारा अपूर्णता पूर्णता में विलीन हो जाती है वही साधन है ।

प्रश्न–शरीर में मन क्या है ?

उत्तर–जो सुन करके मानता है उसी का मनन करता रहता है वही मन है।

प्रश्न–चित्त का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–माने हुए दुःखद–सुखद पदार्थ का चिंतन करना ही चित्त का रूप है।

प्रश्न–बुद्धि का कार्य क्या है ?

उत्तर–माने हुए, अपने पराये का निर्णय करना, जानना, बुद्धि का कार्य है।

प्रश्न–अहं का कार्य क्या है ?

उत्तर–ज्ञान के अनुसार अपने से अभिन्न होकर रहना यही अहं का कार्य है ।

प्रश्न–त्यागी किसे समझा जाय?

उत्तर–जो अपने अतिरिक्त अन्य कुछ भी अपना नहीं मानता वही त्यागी है ।

प्रश्न–ज्ञानी किसे समझना चाहिए ?

उत्तर–जो सब कुछ को अपने द्वारा ही प्रकाशित और अपने को सबसे भिन्न देखता है वही ज्ञानी है । अर्थात् जो अपने ज्ञानस्वरूप को सबसे असंग अनुभव करते हुए निर्विकार, नित्य मुक्त रहता है वही ज्ञानी है।

प्रश्न–पूर्ण प्रेमी को कैसे पहचाने ?

उत्तर–जिसके अन्तःकरण में प्रेमास्पद के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए स्थान ही नहीं खाली रहता है एकमात्र उन्हीं का कथन, श्रवण, चिंतन, मनन, ध्यान रहता है उसी को सच्चा प्रेमी कहना चाहिए ।

प्रश्न–देवता किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो जीवों को सदा देता रहता है, वही देवता है। प्राणीमात्र को जीवन–रक्षा तथा पोषण के लिए कुछ मिला हुआ है वह सब देवताओं से ही मिला है। अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि सब देवता हैं। इन्हीं से सारे संसार का जीवन चल रहा है।

प्रश्न–भगवान की विशेष कृपा किस प्रकार पहचानी जाय?

उत्तर–जब मनुष्य को सन्त गुरुदेव का सुसंग सुलभ हो तभी भगवान की विशेष कृपा समझनी चाहिए । और जब बुद्धि शुद्ध हो, तब तो बहुत ही विशेष कृपा समझनी चाहिए । (जो कोई भगवान का होकर रहता है उसी को निरन्तर कृपा का अनुभव होता है।)

प्रश्न–सबसे बड़ा दैवी दण्ड क्या है ?

उत्तर–जिसकी बुद्धि विपरीत तथा मलिन हो जाय, यही सर्वोपरि दैवी दंड है ।

प्रश्न–मनुष्य को बन्धन में किसने डाला है ?

उत्तर–अज्ञान ने, वासना ने, सुखासक्ति ने, असत् संगाभिमान ने।

प्रश्न–मनुष्य बन्धन से कैसे मुक्त होगा?

उत्तर–ज्ञान होने पर त्याग करने एवं सत्यानुरागी होने से ही मुक्ति होगी।

प्रश्न–धर्म क्या है ?

उत्तर–जिसके द्वारा जिसका जीवन सद्गतिशील होता है वही उसका धर्म है, जो कुछ जगत् के सब कुछ को धारण कर रहा है वही धर्म है (संसार में जितनी वस्तुओं के नाम सुने जाते हैं प्रत्येक नाम वाले पदार्थ का धर्म है। धर्म का ह्रास ही पदार्थ के विनाश की सूचना है, धर्म का प्रकाश ही पदार्थ के विकास का परिचय है।)

प्रश्न–सनातन धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–सृष्टि में सदा से चले आने वाले विश्व व्याप्त नियम को जो सृजन से संहार तक, एक बीज से वृक्ष होकर पुनः अगणित बीज तक जो प्रगति दिखाई देती है वही सनातन धर्म है। प्रत्येक तत्व, खनिज, वनस्पति, पशु, मानव तथा देव और ईश्वर तक का जो विकास नियम दिखाई देता है वही सनातन धर्म है। मनुष्य में जिससे अधिक–से–अधिक सद्गुणों का विकास होता है वही आर्य धर्म है। जिससे पशु–प्रकृति का दमन होकर उस शक्ति का सद्गुण विकास में सदुपयोग होता है वही मानव धर्म है। जो मानव को ईश्वर का योगी बना देता है वही दैवी धर्म है।

प्रश्न–निश्चिन्त रहने का क्या साधन है ?

उत्तर–कर्त्तव्य कर्मों को पूर्ण करते रहने से, किसी के ऋणी न रहने से, निरर्थक का मनन छोड़ने से चिन्ता मिट जाती है।

प्रश्न–स्वाधीनता कैसे प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर–संसार में किसी से कुछ न चाहने से, इन्द्रिय और मन को वश में रखने से स्वाधीनता प्राप्त होती है।

प्रश्न–भगवान को कैसे भक्त प्रिय हैं ?

उत्तर–जो संसार से और भगवान से कुछ भी नहीं चाहता वही भक्त सर्वोपरि प्रिय है ।

प्रश्न–भक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर–अपने को निरन्तर भगवान में ही अनुभव करते रहना, अपने को उनसे कभी दूर न मानना भक्ति है ।

प्रश्न–योग किसे कहते हैं ?

उत्तर–परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने को योग कहते हैं । जिससे संयोग वियोग समाप्त हो जाते हैं उसे ही योग कहते हैं । (सांसारिक वस्तुओं से संयोग–वियोग होता है और परमात्मा से योगानुभव होता है।)

प्रश्न–मुक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर–परमात्मा में अन्तःकरण की लीनता ही मुक्ति है–जहाँ सुख–दुःख के बंधन मिट जाते हैं वही मुक्ति है ।

प्रश्न–माया किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसके मोह में पड़े रहने से परमेश्वर का अनुभव नहीं होता उसी को माया कहते हैं ।

प्रश्न–माया से कौन छूटता है ?

उत्तर–जो माया को अपनी नहीं मानता और जो अपने लिए माया से कुछ नहीं चाहता वही माया से मुक्त है।

प्रश्न–सबसे उत्तम तीर्थ कौन है ?

उत्तर–जिसके सेवन से जीवात्मा दुखों से तर जाय वही उत्तम तीर्थ है।

तत्त्वज्ञानी, भगवद्–प्रेमी, दोषों के त्यागी, भोगों से विरक्त महापुरुष उत्तम तीर्थ हैं। सन्तोष, सरलता, विनम्रता, कष्ट–सहिष्णुता, धैर्य तथा उदारता, इन्द्रिय–दमन और मनोनिरोध यह सब पावन करने वाले उत्तम तीर्थ हैं, ममतारहित, निरभिमानी, द्वन्द्वातीत, संग्रहरहित, उदासीन, संन्यासी उत्तम तीर्थ हैं। सन्त–महात्माओं के निवासस्थान, तपस्वियों के तपस्थल, ज्ञानियों, भक्तों, प्रेमियों के समागम–स्थल भी तीर्थ हैं। इनके सेवन से, संग से, मनुष्य, पाप–ताप–दीनता–दुःखों से छूटता है।

प्रश्न–साधु किसे कहते हैं ?

उत्तर–परमात्मा के योगानुभव के लिए जो मन, इन्द्रिय और शरीर को वश में रखते हैं वही साधु हैं ।

प्रश्न–संन्यासी किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो संसार में ग्रहण किये गये का त्याग कर देता है, आसक्ति कामना से रहित हो जाता है, वही संन्यासी है।

जो गृहस्थ न होकर ब्रह्मचर्य आश्रम से ही समस्त भोग सुखों से मन को हटा लेता है वही उदासीन है।

जो कोई सांसारिक पदार्थों अथवा सम्बन्धियों के प्रति मोह राग नहीं रहने देता, वही विरागी है।

जो कोई निरन्तर सत्य, परमतत्व परमात्मा का ही सर्वत्र मनन करता रहता है, वही मुनि है।

जो कोई इस विश्व में ओतप्रोत (व्यापक) विश्वनाथ परमात्मा को जान लेता है, वही हंस है।

जो कोई प्रकृति के प्रकाशक परमात्मा में ही निरन्तर अपने को देखता रहता है, वही परमहंस है।

जो कोई चिंता, भय तथा बन्धन, दुःख से रहित है वही मुक्त है।

जो कोई चिंतित, भयातुर, दुःखी रहा करता है, वही बद्ध है।

जो कोई अपने को सुखी करते हुए दूसरों को दुःख देता है, वही असुर है।

जो कोई दूसरों को दुःखी न करके सुखभोग पसन्द करता है, वही मनुष्य है।

जो सदा दूसरों के ही काम आता रहता है वही देवता है।

जिसका आश्रय लेकर जीव को परमशान्ति मिलती है, जो नित्य एकरस अविनाशी परमानन्द है, वही परमेश्वर है।

प्रश्न–भगवान किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिस रूप में समग्र ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, श्री, ज्ञान और वैराग्य प्रकाशित दिखते हैं, उन्हीं को भगवान कहते हैं। जिसमें अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त सौन्दर्य एवं असीम माधुर्य का दर्शन मिलता है उसी को भगवान कहते हैं।

प्रश्न–भक्त किसे कहते है ?

उत्तर–जो भगवान के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहता उसी को भक्त कहते हैं।

प्रश्न–शरण किसकी लेनी चाहिए?

उत्तर–उस परमात्मा की शरण लेना चाहिए जो कभी किसी का त्याग नहीं करता, जो परिपूर्ण, परमानन्द, अविनाशी है।

प्रश्न–परमात्मा को जानने का क्या उपाय है ?

उत्तर–अपने स्वरूप को जानकर परमात्मा का अनुभव हो जाता है। जो कुछ भी सीमित है उसका निवास असीम में ही है। चैतन्य रूप जीव यदि

अपने सीमित रूप को जान लेता है तो चैतन्य रूप परमात्मा की असीमता स्वतः ही निश्चित हो जाती है। अपने आप में अर्थात् अहंता में परमात्मा की ही सत्ता को देखना और उसी में अहं का स्फुरण अनुभव करना यह असीम परमानन्द को जानते रहने का एक उपाय है।

प्रश्न–क्या यह सत्य है कि सब कुछ ईश्वर की इच्छा से ही होता है ?

उत्तर–जो कुछ ईश्वर के अधिकार में है वहाँ ईश्वर की इच्छा प्रधान रह सकती है किन्तु जो कुछ जीव के अधिकार में है वहाँ जीव की इच्छानुसार होता है। जीव की इच्छा ईश्वर इच्छानुसार तब तक नहीं होती जब तक जीव भक्त न बन जाय, अपने आपको ईश्वर के समर्पित न कर दे।

प्रश्न–ईश्वर की इच्छा बिना पत्ता नहीं हिल सकता – ऐसा लोग क्यों कहते हैं ?

उत्तर–वास्तव में ऐसा कहना चाहिए कि ईश्वर की सत्ता के बिना पत्ता नहीं हिलता । ईश्वर की सत्ता उसे कहते हैं जो स्वतः कुछ नहीं करती और उसके बिना कुछ हो ही नहीं सकता, जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश स्वयं किसी से पाप–पुण्य नहीं कराता, किंतु सभी प्राणी प्रकाश में ही सब कर्म करते हैं।

प्रश्न–अपने को परमेश्वर के अर्पण कैसे करें ?

उत्तर–अर्पण करने के लिए किसी के पास है ही क्या? अतः अनुभव करना चाहिए कि सदा से हम समर्पित ही हैं।

प्रश्न–मनुष्य जो कुछ नहीं चाहता वही बार–बार क्यों करता है ?

उत्तर–सुखासक्ति वश करने की आदत पड़ गई है, इसीलिए करता है।

प्रश्न–जो कुछ प्रत्यक्ष दिखता है उसे ज्ञानी पुरुष मिथ्या क्यों मानते हैं?

उत्तर–इन्द्रियों की दृष्टि से जो प्रत्यक्ष सत्य सा दीखता है, बुद्धि दृष्टि से वही क्षण–क्षण बदलने वाला दिखता है, इसी से ज्ञानीजन जगत्–दृश्य को तथा सुख को मिथ्या कहते हैं।

प्रश्न–मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है ?

उत्तर–जिससे उसका हित हो और जो कुछ कर सकता हो वही करना, अशुभ अनावश्यक न करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

प्रश्न–साधक जो कुछ चाहता है उसकी पूर्ति कैसे होती है ?

उत्तर–साधक जो कुछ चाहता है उसकी अप्राप्ति का दुःख और जो कुछ नहीं चाहता है उसके संयोग का दुःख जब प्रबल होता है तभी चाह की पूर्ति होती है ।

प्रश्न–अनेकों जप, तप, व्रत, प्रार्थना करने वालों को भगवद्–साक्षात्कार क्यों नहीं होता ?

उत्तर–भगवान का ज्ञान तथा प्रेम की कमी के कारण भगवद्–दर्शन नहीं होते।

(जप, तप, प्रार्थना, तीर्थयात्रा इत्यादि शुभ कर्म हैं। इनसे अशुभ कर्मों की निवृत्ति होती है, अन्तःकरण पवित्र होता है, तभी सद्ज्ञान और प्रेम प्रकाशित होता है, तभी दर्शन की अभिलाषा पूर्ण होती है।)

प्रश्न–सभी प्राणियों में एक आत्मा का अनुभव कैसे होगा ?

उत्तर–दूरदर्शी बुद्धि द्वारा नामरूप की अनेकता को पार करने पर जब मन निर्विषय होकर अचंचल होगा तभी सर्व प्रकाशक चैतन्य रूप आत्मा का अनुभव होगा ।

प्रश्न–किसी के दोष दिखाई देने पर क्या–क्या करना चाहिए?

उत्तर–दोषी के हित के लिए उसके सामने ही दोष को कह देना चाहिए, यदि वह विरोध करे तो मौन रहना चाहिए, अपने को निर्दोष समझकर अभिमान न करना चाहिए ।

प्रश्न–अपने को निर्दोष बनाने का क्या उपाय है ?

उत्तर–अपने दोषों से अत्यधिक दुःखी होकर उनका त्याग करना और पराये दोषों को देखने की चेष्टा न करना, यही निर्दोष होने का उपाय है ।

प्रश्न–दोष दर्शन की आदत कैसे मिटेगी ?

उत्तर–आत्म–ज्ञान होने पर, सभी प्राणियों के प्रति प्रेम विस्तृत होने पर, दोष–दर्शन की आदत छूट जाती है।

प्रश्न–अपनी भूलों का मनुष्य को ज्ञान क्यों नहीं होता ?

उत्तर–दुःख की तथा जिज्ञासा की कमी के कारण ज्ञान नहीं होता।

(श्रद्धा तथा ज्ञानी पुरुषों के सत्संग की कमी के कारण ज्ञान नहीं होता।)

प्रश्न–दु:ख–सुख में समबुद्धि किस प्रकार प्राप्त होती है ?

उत्तर–सुख–दु:ख के परे परमशान्त परमानन्द को जो पुरुष प्राप्त करना चाहते हैं वही दु:खों–सुखों में सम रहने लगते हैं।

प्रश्न–सुख और शान्ति में क्या भेद है ?

उत्तर–सुख सांसारिक वस्तुओं तथा व्यक्तियों से मिलता है किंतु शान्ति का अनुभव, स्वरूप के भीतर सत्य में होता है। सुख, संयोग से मिलता है। शान्ति, त्याग द्वारा योग से सुलभ होती है।

(संयोग, भिन्न वस्तु से होता है और योगानुभव सत्य से होता है)

प्रश्न–मनुष्य अपने सत्‌स्वरूप को क्यों भूला हुआ है ?

उत्तर–सुने हुए और देखे हुए पर विचार न करके असत् नामरूप से मिलकर मोहासक्ति–वश जीव स्वरूप को भूल गया है।

प्रश्न–मनुष्य सदा सुखी किस प्रकार रह सकता है?

उत्तर–विनाशी वस्तु में सुख निर्भर करने से ही दु:ख होता है, तब अविनाशी वस्तु में जो कोई सुख निर्भर करेगा वही सदा सुखी रहेगा ।

प्रश्न–बुद्धि में समता कैसे दृढ़ होगी ?

उत्तर–विषमता का त्याग करने पर ही समता आयेगी ।

(भिन्न–भिन्न चाह के अनुसार विषमता रहती है। अतः चाहों को छोड़ने से बुद्धि समस्थित होती है। अनेकता को प्रकाशित करने वाले एक परम तत्व की व्यापकता का बोध होने पर समता आ जाती है।)

प्रश्न–मृत्यु का भय कैसे छूटेगा ?

उत्तर–अनित्य जीवन से मोह न रहने से और नित्य जीवन का बोध होने से मृत्यु का भय नहीं रहता है। (भोग सुखों की तृष्णावश ही अनित्य जीवन से मोह रहता है। इसीलिए मृत्यु से भय लगता है। जिसे भौतिक सुखों की चाह नहीं रहती और उसे ही मृत्यु का डर नहीं लगता)

प्रश्न–चित्त की शुद्धि का क्या उपाय है ?

उत्तर–जो कुछ अशुद्ध है उसका चिंतन न करना और शुद्ध सत्य का ही चिंतन करना ।

प्रश्न–मन कैसे स्ववश होता है ?

उत्तर–मन से काम लेना छोड़ देने से मन स्ववश हो जाता है।

प्रश्न–संसार का सुख झूठा है तो सच्चा सुख कहाँ है?

उत्तर–जो सत्य है, अविनाशी है, उसी में सच्चा सुख है ।

प्रश्न–संसार प्रपंच से छुटकारा कैसे होता है ?

उत्तर–सांसारिक सुखों से विरक्त होने पर प्रपंच से छुटकारा होता है।

प्रश्न–स्वाध्याय का अर्थ क्या है ?

उत्तर–किसी भी ग्रन्थाध्ययन के द्वारा अपने जीवन में दोषों एवं गुणों का निरीक्षण करना ही स्वाध्याय है। अपने प्रत्येक कर्म के पीछे भाव को तथा भावों के पीछे ज्ञान को एवं ज्ञान के पीछे लक्ष्य को देखना स्वाध्याय है।

प्रश्न–मानव जीवन का क्या लक्ष्य होना चाहिए ?

उत्तर–लक्ष्य बनाने या चुनने की आवश्यकता नहीं वरन् जो कुछ सत्य लक्ष्य है उसी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । जिसमें परम शान्ति है, परमानन्द है, मुक्ति है, वही एक सत्य लक्ष्य है।

प्रश्न–संत किसे कहते हैं?

उत्तर–जो संघर्ष की सीमा में बद्ध नहीं है उस मुक्तात्मा को सन्त कहते हैं। जो सुख–दुःख के बन्धन से रहित निरन्तर शान्त समस्थित है वही सन्त है।

प्रश्न–संत की सेवा का महान फल क्यों बताया है ?

उत्तर–सन्त की कल्याणकारी आज्ञा का पालन ही सन्त–सेवा है। इस प्रकार की सेवा से सत्य परमात्मा का योगानुभव होता है। यही सेवा का महान फल है।

(सन्त की सेवा का ज्ञान, सन्त के स्वरूप का ज्ञान सन्त की ही कृपा से होता है। सन्त के समीप अपनी रुचि की पूर्ति करने वाले अनेकों श्रद्धालु दिखते हैं किन्तु सच्चे सेवक बिरले ही होते हैं।)

प्रश्न–संसार में अपना क्या है ?

उत्तर–जो अपना कभी त्याग न करे, अपने से कभी छीना न जा सके वही अपना है ?

प्रश्न–मनुष्य का उद्देश्य क्या होना चाहिए ?

उत्तर–समस्त दुःखद बन्धनों से मुक्त होना, आत्मिक गुणों का एवं शक्ति का विकास करना, परम ज्ञानी तथा पवित्र प्रेमी होना, शक्ति का दूसरों के हित में सदुपयोग करना और परम शान्ति प्राप्त करना जीवन का उद्देश्य होना चाहिए ।

प्रश्न–परिस्थितियों के प्रतिकूल प्रभाव से कैसे बचा जा सकता है ?

उत्तर–मिथ्या दृष्टि, असत् में सत् भावना का त्याग करके बुद्धि में यथार्थ विवेक प्राप्त कर लेने से किसी भी प्रभाव से बचा जा सकता है।

(किसी से कुछ चाहना ही उसके शासन प्रभाव से बद्ध होना है, जिसमें त्याग का बल है वह सब प्रभावों से मुक्त रह सकता है।)

प्रश्न–जो प्रत्यक्ष सुखद है, उसका त्याग कैसे करें और जो दिखाई नहीं देता उससे प्रेम कैसे करें ?

उत्तर–जो कुछ इन्द्रियों से दिखाई देता है, वह तुमसे दूर है एवं मिथ्या है। सदा साथ रहने वाला नहीं है इसीलिए उसके प्रति होने वाले राग का त्याग करना चाहिए और जो इन्द्रियों से दिखाई नहीं देता फिर भी निकट से भी निकट है, जिसमें जीवात्मा नित्य रहता है उसी से प्रेम करना चाहिए।

प्रश्न–प्रेमी को क्या–क्या त्याग करना चाहिए?

उत्तर–प्रेमास्पद के अतिरिक्त जो कुछ भी अन्य अपने साथ प्रतीत होता हो उसी का त्याग करना चाहिए, क्योंकि दूसरे के होते हुए प्रेमास्पद का योगानुभव नहीं होता ।

प्रश्न–संसार में सुखी किसे समझें ?

उत्तर–जो दुखियों के अथवा दूसरों के काम आता हो ।

प्रश्न–दुःखी कौन है ?

उत्तर–जिसे अन्य की आवश्यकता होती है, वही दुःखी है। कामनायुक्त, वासनाबद्ध, प्राणी दुःखी है। जिसमें शक्ति कम है, इच्छायें अधिक है, वही दुःखी है।

प्रश्न–हमें रागी, द्वेषी किसने बनाया है ?

उत्तर–सुख ने ही रागी बनाया है और दुःख ने ही द्वेषी बनाया है।

प्रश्न–राग–द्वेष से मुक्ति का क्या उपाय है ?

उत्तर–सुख को निस्सार, विनाशी समझकर, दुख को माना हुआ देखकर, सुख दूसरों को देते रहो, दुःख को तप के भाव से स्वीकार करो, इसी से राग द्वेष मिट जायगा । क्योंकि सुख के भोग से ही प्राणी रागी बना है, दुःख को न भोगने की चेष्टा से द्वेषी बना है।

प्रश्न–संसार में सर्वत्र इतने कष्ट दुःख क्यों हैं?

उत्तर–समस्त कष्ट एवं दुःख नियम धर्म का उल्लंघन करने के कारण हैं। ये दुःख ही मनुष्य को सत्य की खोज के लिए तथा नियम सद्धर्म का आश्रय लेने के लिए विवश करते हैं।

प्रश्न–शत्रु पर विजय प्राप्त करने का अहिंसात्मक उपाय क्या है ?

उत्तर–शत्रु को नहीं बल्कि शत्रुता को मिटाना यही अहिंसात्मक उपाय है, किन्तु सच्चा आस्तिक ही इस उपाय का प्रयोग कर पाता है, लोभी, मोही, अभिमानी, कामी नहीं ।

प्रश्न–धन द्वारा किसकी सहायता करनी चाहिए ?

उत्तर–जो धन नहीं कमा सकते उस बालक की, विद्यार्थी की, रोगी की, वृद्ध की, विरक्त की आवश्यक सहायता करनी चाहिए ।

प्रश्न–उदार के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर–जो अपने सुख को बांटता रहता है, जो संग्रह नहीं करता वह दयालु दानी, क्षमाशील ही उदार हैं ।

प्रश्न–निर्लोभी किसे समझे ?

उत्तर–जो सम्पत्ति–जनित सुख से निराश हो गया है, जो गई वस्तु का स्मरण नहीं करता, प्राप्त वस्तु की हानि का भय और संचय की चिंता नहीं करता वही निर्लोभी है।

प्रश्न–निर्मोही कौन है ?

उत्तर–जो सम्बन्धियों से तथा अपने शरीर से निराश हो गया है, जो कुछ भी अपना नहीं मानता और किसी वस्तु तथा व्यक्ति से सम्बन्ध विच्छेद होने पर जो व्यथित नहीं होता वही मोह रहित है।

प्रश्न–सहायता का पात्र कौन है ?

उत्तर–हमारे पास जो कुछ भी शुभ, सुन्दर है वह दूसरे को दिया जा सकता है और उसका वही अधिकारी है, जिसके पास वह शुभ सुन्दर वस्तु नहीं है अथवा जो दीन है अकिंचन है वही सहायता का पात्र है।

प्रश्न–सत्संग प्रेमी किसे समझा जाय?

उत्तर–जो गुरू की समीपता में अपने दोषों को जानता है और उन्हें मिटाता है अथवा जो असत् से विमुख होकर सत्य के ही सम्मुख रहता है वही सत्संग प्रेमी है ।

प्रश्न–भगवान ने किसी–किसी को इतना अधिक पतित तथा पापी बनाकर क्यों भेजा है जो सभी को दुःख ही देता है?

उत्तर–किसी के पतित तथा पापी होने का कारण किसी दूसरे को ठहराना मूर्खता है। पापी स्वयं ज्ञान की कमी के कारण कामी होकर पतित होता है, पापी बनता है और दुःख भोगता है, साथ ही अपने संगियों को भी दुःख देता रहता है।

प्रश्न–हमारे ह्रदय में भगवान कैसे प्रकाशित हो सकते है ?

उत्तर–मन के महा मौन होने पर शान्ति एवं निश्चल नीरवता के भीतर परमानन्दमय प्रभु अपना प्रकाश करते है।

प्रश्न–परमार्थी पुरूष में क्या विशेषता होती है ?

उत्तर–गम्भीर बुद्धि, विनयी स्वभाव, अहमन्यता का सर्वथा अभाव, आत्म निरीक्षण में सदा सावधानी, अपने कर्मों को इस प्रकार जांचना जैसे वे किसी दूसरें के हों, अटूट धैर्य, सर्वांग पवित्रता, प्रशान्त चित्त, प्राणिमात्र के प्रति दया एवं स्वार्थ रहित प्रेम और सर्वत्र सर्वदा सत्य चिंतन, परमार्थी की विशेषताएं हैं।

प्रश्न–पहुंचे हुए पुरूष के क्या लक्षण हैं?

उत्तर–जो पुरूष परमेश्वर को पा लेता है वही पहुंचा हुआ कहा जाता है। वह महापुरूष ईश्वरी दिव्यता के भीतर अपने आपको सुरक्षित कर लेता है, उसके ह्रदय में ईश्वरीय दिव्यता उतरती है। उसी के द्वारा सर्वत्र शक्ति और शान्ति का प्रसार होता है।

प्रश्न–परमेश्वर का मुख्य निवास स्थल कौन है ?

उत्तर–मनुष्य का ह्रदय स्थल ही परमेश्वर का विशेष स्थान है।

प्रश्न–आसन दृढ़ होने से क्या लाभ है?

उत्तर–शरीर को स्थिर करके हिलने ढुलने न देना शरीर का दृढ़ आसन है। इन्द्रियों को विषय सुखों की ओर से मोड़ लेना इन्द्रियों का स्थिरासन है। मन में किसी से भी कोई आशा न रखना यही मन का सिद्ध आसन है। बुद्धि को दृश्य से मोड़कर आत्म–विवेचन में तल्लीन रखना यह बुद्धि का स्वस्तिक आसन है। अहं को, जो सबसे परे तत्त्व है, उस परमाधार सत्य से अखण्ड सचेतन रखना ही अहं के लिए मुक्तासन है। संसार से निराश होकर सत्यानुभव के लिए सत्योन्मुख होकर अपने को स्थिर करना ही आसन है। स्थिरासन से योग की सिद्धि होती है।

प्रश्न–अपने कल्याण की साधना में सफलता क्यों नहीं मिलती ?

उत्तर–भोगों में अर्थात सुखों में आसक्ति होने के कारण साधन सफल नहीं होता ।

प्रश्न–मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी ?

उत्तर–आत्मा के ज्ञान से, मन के नाश तथा वासना के त्याग से मोक्ष मिलता है। (आत्म–ज्ञान से वासना नाश और वासना नाश से मनोनाश होता है।)

प्रश्न–संसार में इतनी अधिक दुष्टता नीचता का व्यवहार लोग क्यों कर रहे हैं?

उत्तर–अविवेक के कारण, स्वतंत्र इच्छा के दुरूपयोग से प्राणियों में दुष्टता नीचता परिवर्धित हो रही है ।

प्रश्न–दान किसे न देना चाहिए ?

उत्तर–भांड को, नाचने गाने वाले को, उन्मत्त को , चोर को, निंदक को, गूंगे को, तेजहीन को, अंगहीन को, बौने को, दुष्ट को, कुलहीन को, संस्कार शून्य को दान न देना चाहिए । पर शरीर निर्वाह के लिए यदि कोई भिक्षा मांगता हो तो अवश्य कुछ न कुछ दे देना चाहिए ।

प्रश्न–महान पुरूष किसे समझें ?

उत्तर–जिसका मन सत्य से विमुख होकर संसार में चंचल नहीं होता वही महापुरूष है।

प्रश्न–पवित्र प्रेमी किसे समझें ?

उत्तर–जो लोभी, मोही, अभिमानी, कामी नहीं है , जो किसी को अपनी ओर आकर्षित नहीं करता वही सत्य का पवित्र प्रेमी है। (जहाँ काम का अत्यन्त अभाव है वही शुद्ध प्रेमी हो सकता है।)

प्रश्न–मनुष्यों के भिन्न–भिन्न स्वभाव किसने बनाए हैं ?

उत्तर–मनुष्य जैसा भी दीखता है वह अपने विचारों से ही वैसा बना है। सुखदायी विचारों में रहने वाला सुखी और दुःखदायी विचारों में रहने वाला दुखी रहता है।

प्रश्न–उत्तम कोटि के मालिक कौन हैं ?

उत्तर–वह दैवी गुणों से सुसज्जित व्यक्ति जो अपना सुख भूलकर अपने अधिकाराधीन सेवकों का ध्यान रखता है ।

प्रश्न–उत्तम कोटि के धर्मात्मा सेवक कौन हैं ?

उत्तर–जो व्यक्ति अपने सुख–दुख की चिंता न करके मालिक की सिद्धि में आलस्य त्यागकर तत्पर रहते हैं और अपनी श्रमपूर्ण सेवाओं का जो अभिमान न करके केवल स्व–कर्त्तव्य समझते हैं ।

प्रश्न–स्वयं ही अपना शत्रु और अपना मित्र कौन कहा जाता है?

उत्तर–जो केवल अपने ही सुख का ध्यान रखता है वही स्वयं अपना शत्रु है और अनेकों शत्रुओं से घिरा रहता है। जो अपने सुख स्वार्थ का त्याग दूसरों के लिए करता रहता है वह स्वयं ही अपना मित्र है, वह अनेकों रक्षक मित्रों से घिरा रहता है।

प्रश्न–विश्वास किस पर करना चाहिए ?

उत्तर–ईश्वर पर, सब पर शासन करने वाले नियम पर, कार्य पूर्ण करने वाली शक्ति पर, अपने कर्त्तव्य पर, विरक्त ज्ञानी सन्त के हितकारी वाक्यों पर।

प्रश्न–विश्वास किस पर न करना चाहिए ?

उत्तर–अपने या सम्बन्धियों के किसी समय भी मृत्यु से ग्रस्त हो जाने वाले शरीर अथवा सांसारिक सम्पत्ति पर, स्वार्थी की सेवा पर, शत्रु के सम्मान पर, नारी के आँसुओं पर, असंयमी मन के संकल्पों पर और अदूरदर्शी के निर्णीत लक्ष्य पर ।

प्रश्न–सच्चे भक्त या ज्ञानी पुरुष संसार प्रपंच में कैसे रहते हैं?

उत्तर–जो सब कुछ के ऊपर अपने को रखता है पर अपने ऊपर कुछ भी नहीं रखता उसी को (जो परमात्मा अपने ऊपर नित्य विराजमान है) उस सत्य का अनुभव होता है। वही भक्त है, वही ज्ञानी है। वह संसार में उसी प्रकार रहता है जिस प्रकार जल में नाव रहती है।

प्रश्न–जीवन में सबसे श्रेष्ठ बल कौन–सा है ?

उत्तर–परमात्मा की शरण में प्राप्त होने वाली निश्चिन्तता, निर्भयता, निर्भरता ही श्रेष्ठ बल है।

प्रश्न–नाम, जप तथा कीर्तन पाठ आदि साधन करते हुए भी मन शुद्ध क्यों नहीं होता ?

उत्तर–साधन में विश्वास तथा श्रद्धा और प्रीति की कमी एवं मान माया तथा भोग सुखों में आसक्ति प्रबल होने के कारण मन शुद्ध नहीं होता। यूं समझो की वाणी से नाम जपादि साधन करते हुए मन को साधन से अलग रखने के कारण मन शुद्ध नहीं होता ।

प्रश्न–परमार्थी का कर्त्तव्य क्या है ?

उत्तर–परमार्थ सिद्धि में जो कुछ भी बाधक है उससे असंग होना, अपने आप आये हुए सुख को बांटते रहना और दुःख आने पर सुख की चाह का त्याग करना, केवल परमात्मा से ही अनुराग करना–यही कर्त्तव्य है।

प्रश्न–यदि हमारे श्रद्धेय गुरु लोभी, अभिमानी, क्रोधी हों तो उनके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर–वास्तव में गुरू तत्व में लोभ, क्रोध अभिमान आदि विकार नहीं होते, विकार तो मन आदि प्रकृति साधन में हो सकते हैं ऐसी दशा में तुम अपने कामी, क्रोधी, लोभी मोही, मन के साथ जो कुछ करते हो, वही उस गुरु के प्रति भी करो जिसे विकारी देखते हो ।

प्रश्न–मनुष्यता का अर्थ क्या है ?

उत्तर–अपने मन को स्ववश रखना ही मनुष्यत्व है । हृदय में दया कर्त्तव्यपालन में तत्परता, सेवा में सतत् उत्साह, संयम, आत्म–निर्भरता, शील, सावधानी–यह मनुष्य में ही पाये जाते हैं।

प्रश्न– ईश्वर दयालु है तो उसके विधान में निर्दयता की क्रिया क्यों है ?

उत्तर–ईश्वरीय विधान में निर्दयता भी दया का ही कार्य है। उस दया के द्वारा संरक्षण भी होता है, संहार भी होता है और वह प्रेम, अनुकम्पा के द्वारा ही होता है ।

प्रश्न–जिसकी बुद्धि पवित्र एवं स्थिर है उसकी क्या पहिचान है ?

उत्तर–वह अचल, अक्षुब्ध, प्रशान्त रहता है, वह आशा, भय, तृष्णा, क्रोध, मोह, शोकादि दुखद वृत्तियों से मुक्त रहता है।

प्रश्न–संसार में सर्वोपरि सुन्दर जीवन किसका है ?

उत्तर–जिसे संसार चाहता हो और स्वयं जो संसार से कुछ न चाहता हो।

प्रश्न–संसार में सर्वोपरि सुन्दर कौन है?

उत्तर–जिसे भगवान चाहते हों, जो भगवान से कुछ न चाहता हो ।

प्रश्न–जगद्गुरु कौन होता है ?

उत्तर–जो जगत् से निराश होकर, जगदाधार से सम्बन्धित रहकर निर्भय निश्चिन्त रहता है वही जगद्गुरु है।

ॐ श्री 108 श्री स्वामी पथिक जी महाराज से प्राप्त उपदेश

परमात्मा की इन आज्ञाओं पर जो चलेगा उसकी मुक्ति अवश्य होगी। ये उपदेश वेद तथा गीतानुसार है।

पहला–संसार में अपना कुछ नहीं है।

दूसरा–सब कुछ परमात्मा का है।

तीसरा–संसार से माना हुआ सम्बन्ध है।

चौथा–सदा प्रसन्न रहने का स्वभाव बनाओ।

पाँचवां–परमात्मा का स्मरण करो, जितना बन सके।

छठवाँ–दुःख का कारण कोई दूसरा नहीं है, अपना ही दोष है।

सातवाँ–असंग होकर रहो, किसी से ममता न करो।

आठवाँ–सबकी सेवा करो, पर अभिमान मत करो।

नवाँ–दुःख में त्यागी एवं सुख में उदार बनो।

दसवाँ–सभी से प्रेम करो, किसी से रागद्वेष मत करो।

ग्यारहवाँ–अपने समय शक्ति को व्यर्थ नष्ट न करो।

परमात्मा की याद करते रहो।

संत पथिक वचनामृत

- मैं देह हूँ, देह मेरी है, ऐसे देहाभिमानी की शुद्धि के लिये शास्त्र में कोई उपाय नहीं है।
- जो निरन्तर है ही, उसे पाने का कोई मार्ग नहीं। परमात्मा अभी है, यही है हम परमात्मा में ही है।
- परमात्मा को पाना है तो ठहरो, संसार में कुछ की पाना चाहते हो तो दौड़ते रहो।
- आत्मा ही परमतीर्थ है। शान्त मौन होकर चेतना में मन और बुद्धि को स्थिर करना ही तीर्थ सेवन है।
- जब तक तुम अशान्त, भयातुर, चिन्तित एवं दुःखी हो तब तक असतसंगी हो, निन्दक, दोषदर्शक से घृणा न करो, दया करो।
- सदैव प्रेम और नम्रता से भरे रहो, पर दोष देखने में समय शक्ति व्यर्थ नष्ट न करो।
- संसार में अपना कुछ न मानने से मुक्ति, आत्मा को परमात्मा से अभिन्न जानने पर भक्ति और चाह रहित होने पर शान्ति सुलभ रहती है।
- जिन शरीरों को अपना सम्बन्धी मानते हो, उन विनाशी शरीरों में अविनाशी आत्मा को देखो।
- जीवन में किसी को सुखदाता या दुःख दाता मानना अज्ञान है।
- ममता में महान दुःख है और ममता के त्याग में परम शान्ति।
- सुख–दुःख माना हुआ है, संसार के सम्बन्ध माने हुये हैं और परमात्मा से दूरी मानी हुई है।
- किसी भी प्राणी को तन से दुःख न देना और मन से किसी का बुरा न चाहते हुए सभी का हित चाहना सर्वोपरि धर्म है।

पथिक प्रश्नोत्तरी
भाग -2

प्रश्न–मेरे कुछ प्रश्न हैं क्या आप उत्तर देंगे ?

उत्तर–एक बालक जो कुछ भी देखता है उसी के विषय में प्रश्न करता है। कोई भी लोभी अपने लाभ के लिए प्रश्न करता है। एक इन्सपेक्टर (थानेदार) भी चोर से प्रश्न करता है। एक जज न्याय देने के लिए प्रश्न करता है। एक शिक्षक विद्यार्थी की जानकारी के लिए प्रश्न करता है। एक विद्वान अपनी योग्यता प्रदर्शन के लिए प्रश्न करता है। एक जिज्ञासु अपनी जानकारी बढ़ाने के लिए प्रश्न करता है। एक शिष्य अपने अज्ञान की निवृत्ति के लिए प्रश्न करता है।

आप प्रश्न करने के साथ ही निर्णय कर लो कि क्या बन कर किससे प्रश्न कर रहे हो? यदि प्रश्न करने के पूर्व ही आपने जान लिया है कि उत्तर दाता विद्वान होने के साथ ही अनुभवी है, अर्थात् शास्त्रवेत्ता तो है ही आत्मवेत्ता भी है। तब तो आपके हृदय में पूर्ण श्रद्धा के साथ प्रश्न होंगे और श्रद्धावान ही यथार्थ ज्ञान का अधिकारी होता है।

आप प्रश्न करने के प्रथम ही निर्णय कर लो कि कुछ पढ़ कर प्रश्न उठ रहे हैं, या इधर उधर की सुनकर उठ रहे हैं, या कुछ देख कर उठ रहे हैं। जो भी प्रश्न हैं उनका सम्बन्ध जीवन से है या साधना से है, परमार्थ से है या देहादिक वस्तुओं से है, आप अज्ञान से दुखी होकर प्रश्न कर रहे हैं या पाण्डित्य के अभिमान में प्रश्न कर रहे हैं। श्रद्धा पूर्वक प्रश्न उठ रहे हैं या अश्रद्धा एवं कुतर्क से प्रेरित होकर प्रश्न बन रहे हैं । वास्तव में सात्विक सुदृढ़ श्रद्धा द्वारा प्रश्नों से सम्यक् ज्ञान में यथार्थ दर्शन होता है। श्रद्धा रहित व्यक्ति में तत्परता नहीं होती, इन्द्रियों में संयम नहीं होता, अहंकार में अभिमान की प्रबलता रहा करती है ।

प्रश्न–विश्वास, श्रद्धा, विवेक में क्या अन्तर है?

उत्तर–बिना जाने मान लेना अन्ध विश्वास है। जान करके उसे मानना विद्वान का विश्वास है। जान करके श्रेय के प्रति प्रीति और पूज्य भाव ही श्रद्धा है, बिना जाने अस्वीकार करना अश्रद्धा है। देह में आत्मा को और चेतन आत्मा में जड़ देह को देखना विवेक है। मन से अनेक विश्वास होते हैं। बुद्धि में एक सत्य का विवेक होता है। विश्वासी अनेकता के मध्य में रहता है। विवेकी एक सत्य में होता है।

प्रश्न–हमें परमात्मा की प्राप्ति कैसे होगी ?

उत्तर–प्राप्त करने की चाह छोड़ कर जो अभी है, यहीं है, जो तुमसे भिन्न नहीं है, जो नित्य जीवन है, जो केवल ज्ञान है, जो केवल प्रेम है, जो हृदय है उसके लिए तुम केवल उपस्थित रहो तभी प्राप्ति का प्रश्न हल हो जायेगा ।

जहाँ दृश्य का अन्त होता है, जहाँ जगत् का अन्त होना है, जहाँ यात्रा का अन्त होता है, यहीं परमात्मा के अनुभव का आरम्भ होता है।

प्रश्न–अज्ञान की निवृत्ति कैसे होगी ?

उत्तर–जब जगत् के नाम रूप तथा दृश्य की स्मृति नहीं रहेगी, कोई संकल्प एवं विचार नहीं उठेगा तब स्वयं का बोध होगा। स्वयं के बोध से जब सनातन सत्य अनुभव होता है तभी अज्ञान नहीं रहता ।

प्रश्न–दीक्षा के बिना मनुष्य शुद्ध नहीं होता सो क्यों ?

उत्तर–जिससे दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है, पापों का नाश होता है, पुण्यों का संचय होता है, संसार की वासना क्षय होने पर परमात्मा की उपासना सुलभ होती है, उसे ही दीक्षा कहते हैं।

अज्ञान में ही सब प्रकार की अशुद्धि है और ज्ञान में ही शुद्धि होती है। वह ज्ञान दीक्षित साधक को प्राप्त होता है इसीलिए दीक्षा के बिना सारी शिक्षा व्यर्थ अनर्थ की वृद्धि करती है। दीक्षा से परमार्थ की सिद्धि होती है।

प्रश्न–श्रद्धा न होने से क्या हानि है ?

उत्तर–श्रद्धा न होने से उतनी हानि नहीं होती है जितनी अश्रद्धा से होती है। अश्रद्धा से अनेकों पाप बनते हैं और श्रद्धा से अनेकों पापों का मोचन हो जाता है। श्रद्धालु व्यक्ति में नम्रता, उदारता, सहिष्णुता तथा श्रम पूर्वक सेवा करने की भावना बढ़ती है। श्रद्धा की जागृति में ही गुरुजनों के प्रति पूज्य भाव दृढ़ होता है। अहंकार का झुकना, श्रद्धा द्वारा ही सम्भव है। श्रद्धा न होने से अहंकार सदा मान की तृष्णा से व्यस्त त्रस्त रहता है, अज्ञान की निवृत्ति नहीं होती। श्रद्धालु में ही दिव्यता का अवतरण होता है। अश्रद्धालु की ज्ञान दृष्टि नहीं खुल पाती । श्रद्धावान साधक ही ज्ञान में सत्य का दर्शन करता है।

प्रश्न–क्लेश और कष्ट में क्या अन्तर है ?

उत्तर–सर्दी गर्मी भूख प्यास रोग आदि से शरीर को कष्ट होता है और अज्ञान से अहंकार से आसक्ति से द्वेष से मृत्यु की आशंका से क्लेश होता

है। समस्त क्लेश मन के द्वारा होता है और समस्त कष्ट देह द्वारा होते हैं।

प्रश्न–कष्ट की निवृत्ति कैसे होती है ?

उत्तर–शरीर की प्रतिकूल वेदना में जब अनुकूल वेदना मिलती है, तब कष्ट दूर होता है। शीत की वेदना में गर्मी मिल जाये, जाड़े लगने पर गर्म वस्त्र मिल जाये, गर्मी लगने पर ठण्ड हवा मिल जाये इत्यादि अनुकूलता से कष्ट दूर होता है परन्तु दुख दूर नहीं होता । भौतिक विज्ञान कष्ट की निवृत्ति में सहायक है किन्तु अशान्ति एवं दुख की निवृत्ति के लिए आध्यात्मिक विज्ञान का ही आश्रय लेना होता है।

प्रश्न–क्लेश की निवृत्ति कैसे होती है ?

उत्तर–सन्त मत से तो भगवद्भजन बिना जीवन के क्लेश नहीं मिटते । किन्तु लाखों हिन्दू भगवद्भजन जाने बिना ही केवल नाम जप को ही भगवद्भजन मान लेते हैं और प्रातः सायं कुछ देर जप करके सन्तुष्ट हो जाते हैं। वास्तव में अज्ञान तथा अहंकार राग द्वेष एवं मृत्यु का भय अर्थात् आसक्ति समाप्त होने पर क्लेशों का अन्त होता है।

प्रतिकूलताओं को धैर्यपूर्वक सहन करने रूपी तप से, स्वाध्याय से अर्थात् अपने आपके अध्ययन से और ईश्वर स्मरण से पंचक्लेशों की निवृत्ति होती है। वियोग से, हानि से, अपमान से, अभाव से, मृत्यु से मानसिक क्लेश होते हैं, सभी क्लेशों का अन्त आत्मज्ञान से अथवा परमात्मा में पूर्ण प्रेम एकत्रित हो जाने से होता है।

प्रश्न–संसार को दुःखालय क्यों कहा है ?

उत्तर–ज्ञान में, सुखों का अन्त देखने पर, विवेकपूर्वक सुखद वस्तु एवं व्यक्तियों को देखने पर सब कुछ दुख से घिरा दीखता है, तभी संसार को दुःखालय कहा है। अविवेकी जनों को जहाँ सुख प्रतीत होता है विवेकी को वहीं दुख दीखता है और प्रेम से पूर्ण प्रभु के भक्त को सर्वत्र आनन्द ही आनन्द का अनुभव होता है।

प्रश्न–स्वाध्याय के अर्थ क्या हैं?

उत्तर–अधिकतर पुस्तकों के अध्ययन को ही कुछ लोग स्वाध्याय मानते हैं। अध्ययन के साथ स्वयं के विषय में विचार करना, आत्म–निरीक्षण करना स्वाध्याय है।

स्वाध्याय से ही ध्यान से देखने की योग्यता आती है, स्वाध्याय के समाप्त होते ही ध्यान से देखना आरम्भ होता है ।

प्रश्न–ज्ञानी गुरु में श्रद्धा होने पर भी हमें पूर्ण ज्ञान क्यों नहीं होता ?

उत्तर–ज्ञानी गुरु में श्रद्धा होने से तो आप उस गुरु के मोही बनेंगे, ज्ञानी होने का अहंकार ही बढ़ेगा जो कि हजारों श्रद्धालु शिष्यों में दिखाई देता है।

ज्ञानी गुरू में श्रद्धा प्रीति करने वाले लाखों शिष्य मिलेंगे पर ज्ञान में श्रद्धा रखने वाले कोई बिरले ही ज्ञानी होंगे।

लाखों शिष्यों को यह पता नहीं है कि अपने श्रद्धास्पद से वह मुक्ति देने वाला ज्ञान चाहते हैं या बन्धन में डालने वाला ज्ञान चाहते हैं।

प्रश्न–ज्ञान से भी क्या बन्धन बढ़ते हैं ?

उत्तर–सावधान होकर देखो ! शरीर से जन्म लेने के पश्चात् देखे हुए के विषय में जितना ज्ञान बढ़ता गया उतना ही मोह लोभ अभिमान अहंकार के रूप में बन्धन बढ़ते आ रहे हैं। एक बालक जब तक यह नहीं जानता कि मेरे माता पिता बहिन भाई कौन हैं ? जब तक वह नहीं जानता कि मेरा भवन मेरी भूमि मेरी सम्पत्ति मेरी जाति मेरा ग्राम देश आदि कहाँ है तब तक वह बन्धन में नहीं होता ! किसी भी बालक को जैसे जैसे अपने सम्बन्धियों का ज्ञान होता जाता है वैसे–वैसे मोह का बन्धन बढ़ता जाता है। जैसे–जैसे अपनी भूमि तथा सम्पत्ति का ज्ञान होता जाता है वैसे–वैसे लोभ का बन्धन बढ़ता जाता है। जैसे–जैसे अपने ऊँचे कुल का, पद का तथा विद्या द्वारा विविध विषयों का, शास्त्रों का, वेदों का एवं भाषाओं का, देश–विदेश का, लोक लोकान्तरों का ज्ञान बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे अहंकार में अभिमान का बन्धन बढ़ता जाता है।

परस्पर पिता पुत्र के ज्ञान से, पति–पत्नी के ज्ञान से, निर्धनता या सम्पन्नता के ज्ञान से, इसी प्रकार मैं हिन्दू हूँ , या जैन हूँ , या बौद्ध हूँ, आर्य हूँ, ईसाई हूँ, या मुसलमान हूँ, इस विविध ज्ञान से अनेकों प्रकार के जटिल बन्धनों की वृद्धि ही होती गई है, बन्धन से मुक्त मानव तो कोई ज्ञानी मिलता ही नहीं। इतना ही नहीं–सुना था पढ़ा था कि त्यागी होने

से शान्ति मिलती है, तपस्वी होने से शक्ति सुलभ होती है, संन्यासी होने से मुक्ति प्राप्त होती है, लेकिन प्रयत्न करने वालों को जब यह ज्ञान हुआ कि मैं त्यागी हूँ, तपस्वी हूँ, संन्यासी हूँ, गुरु हूँ, जगद्गुरु हूँ, तब इस प्रकार, ज्ञान ने भी बन्धनों को बढ़ा दिया ।

प्रश्न–यदि यह ज्ञान बन्धनों हेतु है तो अज्ञान से क्या होता है?

उत्तर–संग सम्बन्ध होते हुए भी अपना होने का जब तक ज्ञान नहीं है तब तक उसके प्रति आसक्ति रूपी बन्धन नहीं होता। किसी व्यक्ति के साथ अथवा वस्तु के साथ तथा सम्पत्ति अधिकार के मध्य में रहते हुए अथवा किसी भी भवन में, भूमि में, अवस्था में, आश्रम में, रहते हुए यह ज्ञान न हो कि 'यह मेरी है, या मेरा है' तब तक आसक्ति रूपी संगदोष का बन्धन नहीं होता । जब से अपना या अपनी होने का ज्ञान होता है तभी से बन्धन आरम्भ हो जाता है ।

प्रश्न–यदि ज्ञान ही बन्धन है तो क्या अज्ञान में मुक्ति है ?

उत्तर–अज्ञान में मुक्ति कदापि नहीं है प्रत्युतः अज्ञान के ज्ञान से जो मुक्त है उसका बोध होता है।

एक पिता अपने पुत्र को जानता है, पुत्र अपने पिता को पहिचानता है, कोई पति अपनी पत्नी को या पत्नी अपने पति को पहिचानते हुए सन्तुष्ट रहता है परन्तु हर एक व्यक्ति अपने इस ज्ञान के कारण ही बन्धनों से कसा है–यह ज्ञात नहीं हो पाता। हम लोग जिस–जिसके विषय में जानकारी रखते हैं उसी से बंधे हैं क्योंकि जितना भी ज्ञान है, वह अपने से भिन्न का है और जो कुछ अपने से भिन्न है वह सत्य नहीं है अखण्ड अनन्त नहीं है, जो कुछ अपने से भिन्न है वह विनाशी वस्तु है। हम जो जानते हैं वह सब प्रकृति की ही सीमा के भीतर जानते हैं, वैसे तो आत्मा परमात्मा की परिभाषा, व्याख्या पढ़ कर ज्ञानी बन जाते हैं फिर भी बन्धनों का अन्त नहीं होता। अहंकार अनेकों ज्ञान से भरा है परन्तु अखण्ड ज्ञान में खण्डित अहंकार का बोध नहीं होता।

अनित्य वस्तुओं के ज्ञान से भरे हुए अहंकार का ज्ञान होना ही वह ज्ञान है जिसमें बन्धनों से मुक्ति का द्वार मिल जाता है।

प्रश्न–गायत्री मन्त्र का भावार्थ क्या है ?

उत्तर–हम ज्योतिर्मय सविता के उस अनश्वर प्रकाश का ध्यान करें जो पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्ष को आलोकित करता है, वह हमारी बुद्धि में भी प्रकाश भरें अथवा ॐ प्रभु ही हमको जीवन प्रदान करते हैं। वही हमारी रक्षा करते हैं और वे ही हमें सुखसम्पत्ति का दान करते हैं। उन सर्वसमर्थ ईश्वर के कल्याणकारी तेज का हम ध्यान करते हैं। वे प्रभु हमारी बुद्धि को सत्य धर्म के लिए प्रेरित करें ।

भूः = जीवन दाता । भुवः = रक्षा करने वाला । स्वः = सम्पत्ति ऐश्वर्य देने वाला। तत् = उस । सवितुर्वरेण्यम = वन्दनीय परमात्मा। भर्गोदेवस्य धीमहि = के तेज का ध्यान करते हैं। धियो यो प्रचोदयात = हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें ।

प्रश्न–प्रत्येक मन्त्र की सर्वोपरि महिमा वर्णित है तब हम अपने लिए कौन मन्त्र स्वीकार करें ?

उत्तर–मन्त्र के ज्ञाता आचार्य से निर्णय करो अथवा जिस मन्त्र में तुम्हारी अटूट श्रद्धा हो विश्वास हो उसे ही जपते रहो। अटूट श्रद्धा, निष्ठा एवं प्रेम के योग से ही मन्त्र की सिद्धि हो पाती है। श्रद्धा एवं धैर्य की कमी सिद्धि में बाधक है।

प्रश्न–ध्यान में क्या दीखता है ?

उत्तर–ध्यान में किसी को अपनी कल्पना का आधार दिखता है, किसी को भावाकार दीखता है, किसी को जो कुछ भीतर हो रहा है वही दिखता है और अन्त में जो निरन्तर है, नित्य है जैसा है वही अनुभव होता है। कोई मानकर ध्यान करते हैं कोई जानकर ध्यान से देखते हैं।

ध्यान के लिए प्रथम मोह से जाग्रत होना आवश्यक है फिर देखने के लिए सजग रहना और भीतर जो कुछ हो रहा है उसके प्रति साक्षी रहना आवश्यक है। जो निकट अति निकट चेतना है उसी में स्थिर होना ध्यान है। निद्रा में भी चेतना का बोध रहना ध्यान है। ध्यान के सिद्ध होने पर साधक सोते हुए चेतना में जागते हैं और जागते हुए चेतना में सोये से रहते हैं। ध्यान में जो अनुभव होता है वह न साकार है न निराकार है वह तो आकार में निराकार है निराकार में ही आकार है।

ध्यान में मन नहीं रहता क्योंकि कुछ मनन के लिए नहीं रहता, केवल विचार रहित चेतना ही शेष रहती है।

जहाँ तक सोचना अधिकाधिक सोचना है वहाँ मन है। जहाँ मन तक की क्रिया है वहाँ तक ध्यान के लिए जागरण नहीं है । मन ही संसार का द्वार है और ध्यान ही संसार से मुक्ति का द्वार है।

प्रश्न—हमें अपने कल्याण के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर—जो कुछ तुम्हें करना चाहिए वह कुछ पढ़ करके या उपदेशकों से सुन करके जानते ही होगे अब यह जान लो कि तुम क्या कर सकते हो? क्या तुम निष्काम हो सकते हो? क्या तुम लोभ, मोह, अभिमान, काम, आदि विकारों का त्याग कर सकते हो ? क्या तुम मिले हुए बलों का दूसरों की सेवा में सदुपयोग कर सकते हो ? क्या तुम बीते हुए का स्मरण तथा भविष्य की चिंता छोड़ सकते हो ? क्या तुम सम्बन्धित जनों के प्रति कर्त्तव्य का पालन करते हुए अपने अधिकारों का त्याग कर सकते हो, क्या तुम कर्ता न बन कर जो कुछ तन में मन में बुद्धि में स्वतः हो रहा है उसके द्रष्टा हो सकते हो?

क्या तुम शान्त होकर मौन होकर इस देह से मन से बुद्धि से अहंकार से भिन्न होकर स्वयं को देख सकते हो ? तो और कुछ न करके यही पूरा होने दो। अपने कल्याण के लिए निष्काम सेवा को पूर्ण करो, दोषों के त्याग को पूर्ण करो और प्रेम को पूर्ण करो ।

प्रश्न—सम्पत्ति का लोभ कैसे छूटेगा ?

उत्तर—संसार की सम्पत्ति को अपनी न मानो क्योंकि उसे अपनी मानने से लोभ पुष्ट होता है। सांसारिक सम्पत्ति अन्त से विपत्ति मय हैं। स्वयं की सम्पत्ति नित्य सुलभ परम आत्मा है। समस्त सद्‌गुण दैवी सम्पत्ति है दैवी सम्पदा से धनी मानव जगत् की सम्पत्ति का लोभी नहीं रह जाता ।

सांसारिक सम्पत्ति से समृद्ध धनी ही अधिक दरिद्र है, जो अकिंचन है वही परम आत्मा के योग से धनी है।

सांसारिक सम्पत्ति का धनी यदि संग्रह करता जाता है तो उसे समाज का चोर माना गया है। जो धनी दान नहीं करता वह जनता का शत्रु कहा जाता है। आवश्यकता से अधिक संचय करने वाला लोभ की बेड़ी से बाँधा जाता है पर उसे लोभ पाश से कोई मुक्त नहीं कर पाता ।

उदार होकर दूसरे पात्रों को धन देते रहो तब प्रकृति तुम्हें स्वतः देती रहेगी और लोभपाश से मुक्त रहोगे । जो दानी हैं वही दैवी सम्पत्ति अर्थात् सद्‌गुणों के धनी होते हैं वे लोभी नहीं रहते । राक्षसी प्रकृति दान नहीं करने देती उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता ।

प्रश्न–मन को किस प्रकार स्थिर करें ?

उत्तर–मन को स्थिर न करके तुम स्वयं स्थिर हो जाओ और मन की चंचलता को देखते रहो । मन के जाने को देखो, पुनः आने को देखो, उसके रंग को, रूप को देखो, उसके उत्पत्ति के स्थान को देखो। देखते–देखते मन कहीं न दिखेगा और नहीं देखने से मन पीछे ही लगा रहेगा । संकल्पों का स्फुरण ही मन है, कामनाओं का समूह मन है। संकल्प न उठना, कामना जाग्रत न होना मन की स्थिरता है।

प्रश्न–गीता में मन को भगवान में लगाने की प्रेरणा क्यों दी गई है ?

उत्तर–मन एक ऐसा तत्त्व है जो किसी भी रूपमय हो जाता है, मन ही क्रोधमय, काममय, लोभमय, मोहमय, सुखमय, दुखमय हो जाता है। मन ही भोगमय बनता है वही भगवानमय होता है। मन जिससे मिलता है उसीमय बन जाता है। जब कोई संग नहीं मिलता तब मन के स्थान में केवल आत्मा ही शेष रहता है। ध्यान से देखते–देखते मन के स्थूल और सूक्ष्म रूप का ज्ञान होता है। योग द्वारा जागृति का मन सुलाया जाता है और सुषुप्ति का मन जगाया जाता है। सारी साधनायें मन को योगस्थ होने के लिए हैं।

प्रश्न–मन की दुर्बलता कैसे मिटेगी ?

उत्तर–भोगासक्ति के कारण ही मन में दुर्बलता है, आत्मा के योग से ही मन सशक्त हो सकता है। भोग से ही यह जड़मय है, आत्मोपासना से यह चिन्मय हो सकता है।

प्रश्न–घर परिवार में रहकर आत्मा का योग कैसे होगा ?

उत्तर–आत्मा से कभी वियोग ही नहीं होता इसलिए घर परिवार में रहना योग में बाधक नहीं है। प्रत्युत मन से घर परिवार को अपना मानकर आसक्त रहना, अर्थात् मन में घर परिवार को भरे रहना बाधक है। संयोग की विस्मृति में आत्मा का बोध होगा ।

प्रश्न–घर परिवार को अपना कैसे न मानें ?

उत्तर–मिले हुए घर परिवार को अथवा प्रत्येक वस्तु को यह जानकर अपना न मानो क्योंकि तुमने किसी वस्तु को अथवा व्यक्ति को उत्पन्न नहीं किया है इसीलिए जो कुछ तुम्हें अपना प्रतीत होता है उस पर स्वतन्त्र अधिकार नहीं है, किसी भी देहादिक वस्तुओं के साथ तुम सदा रह नहीं सकते और उन्हें सदा रख भी नहीं सकते । अतः किसी भी वस्तु व्यक्ति को अपनी न मानकर, उसे जानो जिसमें यह सब कुछ है, जो सब कुछ उत्पन्न होने के आदि में और सब कुछ न रहने पर भी जो नित्य रहता है, जिसकी उत्पत्ति नहीं होती और जिसका अभाव भी नहीं होता ।

प्रश्न–हम परतन्त्रता से कैसे छूट सकते हैं ?

उत्तर–स्वयं में ही सत्य की उपलब्धि होने पर परतन्त्रता का अन्त होता है। अनित्य वस्तुओं का संयोग तथा कामनायें, अन्ध विश्वास, रूढ़ियाँ, सुखासक्ति, मान्यतायें, परम्परायें, कल्पनायें मनुष्य को परतन्त्र बनाती हैं, अतः न किसी से बंधो न बांधो। अपने से जो कुछ भी भिन्न है वही 'पर' है, अन्य है। अपने से भिन्न वस्तुओं व्यक्तियों में प्रसन्नता एवं सुख निर्भर करना ही परतन्त्र पराधीन रहना है। निरपेक्ष निराश्रित होना ही स्वतंत्र होना है। स्वयं में शान्त होना ही स्वतंत्र होना है। जो परमात्मा से विमुख है वही परतन्त्र है। जो परतन्त्र है वही भय, चिन्ता, दुःख एवं मृत्यु का भोगी होता है। वासना कामना एवं तृष्णा परतन्त्र बनाती है।

प्रश्न–वासना कामना का त्याग क्यों नहीं हो पाता ?

उत्तर–सुख की आसक्ति रहने तक त्याग की शक्ति क्षीण होती है दुःख की कमी रहने तक सुखासक्ति प्रबल रहती है। वासना, कामना एवं तृष्णा की जड़ें अन्तर चित्त में हैं किन्तु त्याग की चेष्टा बाहर से होती है इसीलिए बाहर का त्याग अहंकार को पुष्ट करता है। सुखासक्ति वश त्याग नहीं हो पाता ।

प्रश्न–प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसमें कर्म होते हैं वही प्रकृति है। मनुष्य का शरीर, मनुष्य की प्रकृति है। ईश्वर की प्रकृति ही ईश्वर का शरीर है। पाँच तत्व मन बुद्धि अहंकार–यही अपरा प्रकृति है और जीवात्मा ही परा प्रकृति है–यही नौ प्रकार की प्रकृति परमात्मा की देह है।

प्रश्न–उन्नति कैसे हो सकती है ?

उत्तर–पैशाचिक प्रकृति की प्रधानता में भोग सामग्री की वृद्धि ही उन्नति दिखती है। राक्षसी प्रकृति वाले मनुष्य को धन की वृद्धि में उन्नति प्रतीत होती हैं। दानवी प्रकृति का मनुष्य पदाधिकार की प्राप्ति को उन्नति मानता है। दैवी प्रकृति की सम्पन्नता में दोषों के नाश में और सद्‌गुणों के विकास में अर्थात् धर्माचरण की पूर्णता में उन्नति सिद्ध होती है। परमार्थी साधक की उन्नति ज्ञान विज्ञान से युक्त होने पर पूर्ण होती है। ज्ञान विज्ञान द्वारा अशुभ की निवृत्ति और शुभ की प्राप्ति होती है। आत्मा का निरन्तर योगानुभव होना ज्ञान है। प्रकृति शक्ति का प्रयोग ही विज्ञान है। ज्ञान विज्ञान द्वारा, उन्नति सद्‌गति परमगति सुलभ होने पर साधक परम तृप्त होकर शान्त रहता है। जो कुछ तुम्हें मिला है उससे सन्तुष्ट रहो किन्तु जो कुछ तुम बने हुए हो, उससे कदापि सन्तोष न करो और परमात्मा के नित्य योग की अनुभूति के लिए व्याकुल रहो–यही उन्नति का उपाय है।

प्रश्न–हम नित्य रहने वाले सत्य को कैसे जानें ?

उत्तर–तुम उसे जान लो जो नित्य नहीं रहेगा तब अनित्य को जानने वाले तुम स्वयं ही अपनी आत्यन्तिक चेतन सत्ता के रूप में सत्य शेष रहोगे। तुम स्वयं सत्य–दर्शन के द्वार हो। अपने को न जानना ही द्वार से भटक जाना है। अनित्य वस्तु से असंग होकर नित्य सत्यमय हो सकते हो।

प्रश्न–हम स्वयं में शान्त कैसे हो सकते हैं?

उत्तर–देह इन्द्रियाँ तथा विषय एवं मन बुद्धि चित्त और अहंकार की परिधि (सीमा) में ही हलचल है अशान्ति है। इन सबसे असंग होने पर ही शान्त होना सुगम है। जो कुछ भीतर बाहर हो रहा है उसके द्रष्टा बनो और स्वयं के केन्द्र को देखो, केवल देखते रहो। सारी अशान्ति, तृष्णा, कामना, वासना की आपूर्ति से ही रहती है, अतः इनके त्याग में ही अशान्ति समाप्त होती है।

प्रश्न–त्याग क्यों नहीं होता ?

उत्तर–रागासक्ति ही त्याग में बाधक है।

प्रश्न–रागासक्ति कैसे छूटेगी ?

उत्तर–धर्म पूर्वक सेवा से तथा दान से एवं निष्काम प्रेम से आसक्ति हटती है।

प्रश्न–सुख और हित में क्या अन्तर है?

उत्तर–शब्द स्पर्श रूप रसादि विषय जब मन के द्वारा प्रिय लगते हैं–यही अनुकूलन वेदना सुख है और सुख के अन्त में होने वाली प्रतिकूल वेदना जनित दुःख से मुक्त करने की साधना में हित है।

स्वयं से संसार की ओर बढ़ने की अनुकूलता, सुख का पथ है, संसार से स्वयं की ओर लौटने की पद्धति हित का पथ है। सुख का भान मन के द्वारा होता है और हित का ज्ञान परिणाम को जानने वाली बुद्धि के द्वारा होता है। सुखासक्ति ही वस्तु एवं व्यक्ति को दासता में बाँधती है। हितैषी गुरूजनों के अनुशासन में रहने से दासता से मुक्ति मिलती है। सुख में पराधीनता है, हित में स्वाधीनता है। सुखासक्ति ही हित में बाधक है, सुख से विरक्ति हित में साधक है।

सुखासक्ति में विनाशी का संयोग होता है, उसी का वियोग होता है किन्तु हित का विवेक अविनाशी के योग की ओर लौटाता है। मोह में सुख का पक्ष होता है, प्रेम में हित का पक्ष लिया जाता है।

प्रश्न–जो सोता नहीं उसे जागृति की प्रेरणा क्यों ?

उत्तर–नित्य चेतन में सचेत रहना, विचारों के विकारों के वश न होना ही जाग्रत रहना है। साधक मोह निद्रा में नहीं रहे, इसीलिए जागृति प्रेरणा है। मोही मनुष्य नित्य सत के प्रति सो रहा है।

प्रश्न–आत्मा को विचार द्वारा कैसे जानें?

उत्तर–आत्मा का विचार न करो। विचारों के मूल श्रोत की खोज करो, जब विचार नहीं रहेंगे तब जो है, वही आत्मा है।

प्रश्न–दृश्याकार में आत्मा को कैसे जानें ?

उत्तर–जिस प्रकार विभिन्न स्वर्णाभूषणों के नाम रूप में स्वर्ण देखा जाता है उसी प्रकार भिन्न–भिन्न नाम रूपात्मक दृश्य में चेतन सत्ता को देखना ही आत्मज्ञान है।

प्रश्न–आत्मा और अहंकार में क्या अन्तर है ?

उत्तर–बुद्धि में 'अहं' अर्थात् सीमित मैं का ज्ञान ही संकल्पानुसार दृश्याकार हो जाता है–यही अहंकार है। अहंकार के पीछे चेतन सत्ता ही आत्मा है।

प्रश्न–हमें आत्मा का साक्षात्कार क्यों नहीं होता ?

उत्तर–साक्षात्कार की इच्छा अहंकार में है, ऐसी इच्छा ही आत्म साक्षात्कार में बाधक है। जहाँ संकल्प नहीं है विचार नहीं है कामना नहीं है वही केवल आत्मा है। अहंभाव को, वृत्तियों को, विचारों, संस्कारों को, आत्मा ही प्रकाशित करता है। जो निरन्तर है उसी को आत्मा परमात्मा कहते हैं जहाँ हमारे अतिरिक्त अन्य किसी का प्रवेश नहीं, जिसे मेरे अतिरिक्त कोई जड़ वस्तु नहीं जान सकती वही हमारी आत्मा है।

विचारों के शान्त होने पर, मन के न रहने पर उस स्थान पर जिस चेतन सत्ता का अनुभव होता है वही हमारी आत्मा है।

मन से आत्मा उसी भांति ढक जाता है जिस भाँति सूर्य से उत्पन्न बादलों से सूर्य ढका सा दिखता है। मन रूपी मेघ के हटने पर आत्मा ही पूर्ण आलोकित रहता है।

प्रयत्न समाप्त हों, शब्द शान्त हों, विचार तरंगें विलीन हों तब जो अनुभव मात्र है वही आत्मा है। आत्मा जब 'मैं' के रूप में प्रकाशित होता है तब उसे जीवात्मा कहते हैं। आत्मा के आगे जब 'मैं' नही रह जाता है तब उसे महात्मा कहते हैं। जहाँ केवल चैतन्य है, सत्तामात्र है, मैं का स्फुरण नहीं है वही परमात्मा है।

'मैं' के भीतर अहंकार के भीतर प्रभु को प्रतिष्ठित देखना ईश्वर साक्षात्कार है। अहंकार के भीतर कुछ न रह जाना आत्म साक्षात्कार है।

प्रश्न–समाधि किसे कहते हैं ?

उत्तर–निज स्वरूप में स्थिति समाधि है।

संकल्प शून्य होना, विचार रहित होना, नित्य चेतन में जाग्रत रहना समाधि है। परिपूर्ण चैतन्य का अनुभव समाधि है। जहाँ 'मैं' अथवा अहंकार का भान नहीं रहता वही समाधि है। अनन्त सत्ता के साथ एकता की अनुभूति समाधि है।

भाव समाधि में दिव्य रूप का दर्शन होता है। निर्विकल्प समाधि में चिदानन्द सत्य का अनुभव होता है। मन का लय होना तो जड़ समाधि है।

जहाँ केवल चैतन्य है, अखण्ड सत्ता है परन्तु 'मैं' नहीं है वहीं समाधि है, वहीं परमात्मानुभव है। जिस प्रकार शब्द से जगत् को जानते हैं उसी प्रकार शून्य होकर स्वयं को जानते ही समाधि सुलभ होती है।

मैं रूपी घट के बाहर सागर की अनुभूति में समाधि सधती है। राग द्वेष की विषमता न रहने पर समता दृढ़ होने पर समाधि सहज होती है।

प्रश्न—साधुजन वन में एकान्त सेवन क्यों करते हैं?

उत्तर—वासना कामना से घिरा व्यक्ति वन में रह कर भी एकान्त—सेवी नहीं होता, कुछ समय पश्चात् वहाँ भी संसार बना लेता हैं।

प्रश्न—सन्त महात्मा तो एकान्त में ही मिलते हैं ?

उत्तर—आत्मा के अतिरिक्त जो किसी अन्य से मिलता है वह एकान्त—सेवी महात्मा नहीं होता और जो अनेकता की सीमा को पार कर अन्तवान वस्तु से विमुख होकर आत्मा से मिलकर स्वयं महात्मा हो जाता है वह किसी अन्य से मिलने नहीं जाता ।

प्रश्न—एकान्त हुए बिना क्या सिद्धि मिल सकती है ?

उत्तर—आत्मा के अतिरिक्त जितनी भी सिद्धियां हैं वह मन से ही होती हैं जो कि सत्य नहीं होता जिससे शान्ति सुलभ हो, आनन्द सुलभ हो, समता एवं अगाध प्रेम सुलभ हो वही सत्य सिद्धि है।

प्रश्न—साधक की क्रमशः सिद्धि एवं मुक्ति का क्या अर्थ है?

उत्तर—अन्नमय कोषदेह का आवरण पार करने पर प्राणमय कोष की शक्तियां सुलभ होती हैं । प्राणमय कोष को पार करने पर मनोमय कोष की शक्तियों का चमत्कार दीखता है। मनोमय कोष के बिन्दु को भेदने पर विज्ञानमय कोष में 'मैं' का व्यक्तित्व का बोध होता है। विज्ञानमय कोष के शून्य में प्रवेश होने पर आनन्दमय कोष में आत्मा का आलोक अखण्ड होता है। यही साधक की मुक्ति है एवं उत्थान है।

प्रश्न—निरन्तर शान्त रहना क्या सम्भव है ?

उत्तर—निरन्तर अशान्त रहना सम्भव नहीं है लेकिन शान्त रहना सम्भव है क्योंकि कामना वासना तृष्णा की अपूर्ति ही अशान्ति बनाती है

और आत्म–अज्ञान में ही पूर्ति के सुख की चाह रहती है। चाहों की अर्थात् कामनाओं की, तृष्णा की पूर्ति करते–करते यह अहंकार थक जाता है परन्तु चाहों का अन्त नहीं होता। आत्मा के ज्ञान में अभावों का अभाव हो जाता है तब कामना नहीं रहती तभी निरन्तर शान्त रहना सम्भव हो जाता है।

प्रश्न–हम केवल भगवान के दर्शन के लिए अशान्त हैं तो क्या प्रभु के दर्शन भी न चाहें ?

उत्तर–तुमने भगवान के विषय में कुछ पढ़ा या सुना है इसीलिए दर्शन की चाह होती है–यह भी एक लालच है इस प्रकार के दर्शन की चाह के पीछे अनेकों चाहें छिपी हैं। अभी दर्शन चाहते हो फिर दर्शन होने पर प्रभु से चाहने लगोगे ।

प्रश्न–भक्त भगवान के दर्शन क्या नहीं चाहते ?

उत्तर–भक्त वही होते हैं जिन्हें भगवान निरन्तर प्राप्त दिखता है। भगवान से भिन्नता न रह जाना ही भक्ति है इसलिये पूर्ण भक्त भगवान के दर्शन नहीं चाहता प्रत्युत भगवान की पूर्णता को देखता रहता है।

प्रश्न–भगवान क्या चाहते हैं ?

उत्तर–भगवान यही चाहते हैं कि मेरा भक्त मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहे। ममता अहंता वासना कामना आसक्ति रहित होकर केवल परम प्रेम में ही तृप्त सन्तुष्ट रहे।

प्रश्न–अनेकों भक्तों ने भगवान के दर्शन क्यों चाहे?

उत्तर–जब तक भक्त नहीं थे तभी तक चाहते रहे जब चाहों का अन्त हो गया तब भक्त हुए और भक्त होने पर दर्शन के आनन्द से तृप्त हो गये। जो भक्त प्रभु के दर्शन चाहते रहे वह तुम्हारे बनाये हुए भक्त हैं प्रभु की दृष्टि में भक्त नहीं हैं विभक्त ही हैं। भक्त वही हैं जिन्हें भगवान कभी कहीं भिन्न नहीं दीखते । भगवान से दूरी मिट जाना ही भक्ति की पूर्णता है।

प्रश्न–मनुष्य का पतन क्यों होता है ?

उत्तर–पतन उसी का होता है जो उन्नति सद्गति के लिए दृढ़ संकल्प नहीं करता और पतन के स्थल पर सावधान नहीं रहता, जिसमें लोभ रहता है।

प्रश्न–मनुष्य को किससे सावधान रहना चाहिए ?

उत्तर–बाल्यावस्था से ही दुष्टों, मूर्खों के संगति से, आरम्भ में थोड़े–से दुर्व्यसन से, थोड़ी सी चोरी से, आरम्भ में थोड़े आलसी स्वभाव से, थोड़े–से ज्ञान के अभिमान से, अर्थात् प्रमाद से, थोड़ी सी कुटेव (बुरी लत) से, प्रातःकालीन उठते समय थोड़ी सी नींद के सुख से, थोड़े से चिडचिड़े मन से, थोड़े से कटु वचन से, थोड़े से क्रोध से, थोड़े लालच से, इसी प्रकार किंचित विषय स्पर्श से प्रतीत होने वाले क्षणिक सुख से, थोड़े पैसों द्वारा जुआ खेलने से, थोड़े से व्यंग्य वचन से, किसी भी थोड़े दुर्विकार से, थोड़े दुर्व्यवहार से, कोई छोटा सा वाक्य बार बार दुहराने से सावधान रहना चाहिए। कोई भी दोष एवं विकार आरम्भ में थोड़े से आरम्भ होता है और असावधानी के कारण वही बहुत अधिक हो जाता है।

प्रश्न–दोषों का त्याग क्यों नहीं हो पाता ?

उत्तर–दानवी राक्षसी आसुरी शक्तियों का जब तक अधिकार रहता है तब तक त्याग, प्रेम अथवा दान की पूर्णता नहीं होती ।

परमात्मा विष्णु की उपासना में प्रमादी बनकर जब देवता भोगी बन जाते हैं तब आसुरी राक्षसी दानवी शक्तियाँ सबल होकर देवताओं को पराजित करके शक्ति सम्पत्ति ऐश्वर्य पर अधिकार कर लेती हैं तभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि के रूप में दानव राक्षस असुर ही त्याग तप दान संयम पूर्ण नहीं होने देते। जब देवतागण शक्ति भगवती की शरण लेते हैं तब वही आसुरी दानवी राक्षसी सेना का नाश करती हैं तथा साधक को साधन–समर में दैवी सिद्धि सुलभ होता है।

सहस्त्रों साधकों को आसुरी दानवी राक्षसी माया के मोहक प्रभाव का पता भी नहीं चलता है और साधक के भीतर अहंकार मोह मद आदि के रूप में दानवों दैत्यों का आधिपत्य बना रहता है।

प्रश्न–ईश्वर की सृष्टि में दुख क्यों है?

उत्तर–जितना भी दुःख है वह अहंकार की सृष्टि में है। ईश्वरीय विधान से दुःख मनुष्य की उन्नति के लिए है, इसीलिए दुःख उतना ही आता है जो उन्नति में अत्यावश्यक है। अज्ञान में सुखासक्त प्राणी दुःख का भोगी बना रहता है और ज्ञान में सावधान मानव दुःख की सीमा का द्रष्टा बनता है। जो दरिद्र है वही दुखी है। सन्तोषी सदा सन्तुष्ट है।

प्रश्न–संसार सागर से पार होने का सरल साधन क्या है ?

उत्तर–संसार में डूबो या तैरो, बस भगवद् प्रेम की डोरी पकड़े रहो। परिवार के जनों में रहो पर भीतर से अपना मानकर मोही न बनो, भगवान के जीव जानकर केवल सेवा करो। सम्बन्ध जोड़कर मोह से अभिमान से बच नहीं सकते। अतः असंग होना ही संसार से पार होने का उपाय है। संसार से कुछ न चाहना और संसार की देहादिक वस्तुओं को संसार की सेवा में लगा देना, संसार से पार होने का सरल साधन है। जो संसार को अपने भीतर भर लेता है वही डूबता है जो संसार से अपने को खाली कर लेता है वही पार हो जाता है।

प्रश्न–धर्म युद्ध किसे माना जाता है ?

उत्तर–धर्म प्रेमी, परहित साधने वाले सज्जनों की रक्षा तथा दुष्ट जनों की दुष्टता का विरोध एवं मानवीय व्यवहार की सुव्यवस्था के लिए शक्ति सम्पत्ति योग्यता का उपयोग जब युद्ध में होता है उसे ही धर्मयुद्ध कहते हैं।

प्रश्न–आज का सत्ताधिकारी धर्म निरपेक्ष नीति का पक्ष क्यों लेता है ?

उत्तर–जो सत्ताधिकारी धर्म की उपेक्षा करते हैं वह वास्तविक धर्म को जानते नहीं हैं, वे प्रचलित धर्मों के विषय में ही कुछ मानते हैं। जो धर्म को जानते हैं वह धर्म की उपेक्षा नहीं करते बल्कि धर्म के नाम पर प्रसारित आतंकों, अन्धविश्वासों की उपेक्षा करते हैं। वे धर्म की उपेक्षा नहीं करते प्रत्युत धर्म की ओट में चलने वाले शोषण की, एवं पाखंड की, अथवा बौद्धिक जड़ता की, मूढ़ता की उपेक्षा करते हैं। धर्म तत्व के ज्ञाता धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक वैमनस्य, विरोधी भावनाओं की पारस्परिक मतभेद सम्बन्धी घृणा और हिंसात्मक कृत्यों की उपेक्षा करते हैं। विवेकी विद्वान् धर्मनिरपेक्ष राज्य की व्यवस्था नहीं चाहते वह तो वास्तविक धर्म पूर्ण व्यवस्था चाहते हैं जिसमें समता शान्ति प्रेम की पूर्णता सुलभ होती है।

प्रश्न–तपस्वी जन क्रोधी क्यों होते हैं?

उत्तर–जिन्हें यथार्थ तप का ज्ञान नहीं है वही तप के अभिमानी, प्रतिकूलता आने पर सहन नहीं कर पाते, क्रोध उभड़ जाता है। जहाँ तक स्वार्थ है, अभिमान द्वेष कपट है, निन्दा का भय है वहाँ तक कठोर तप के द्वारा भी शान्ति मुक्ति नहीं मिलती । अशान्ति में ही क्रोध उभरता है।

प्रश्न–साधना में दृढ़ता कैसे हो ?

उत्तर–हृदय से आस्था, श्रद्धा, विश्वास और प्रभु के प्रति पूर्ण आत्मीयता के द्वारा ही साधना में दृढ़ता होती है। अशान्त चित्त, बुद्धि में संशय, दोष दर्शन, अनेक का सम्बन्ध, विषयासक्ति आदि साधना की दृढ़ता में बाधक है। अशान्त होने पर असफल होने पर अपना निरीक्षण करो, किसी अन्य को दोषी न मानो। क्योंकि अपनी इच्छाओं के कारण ही तुम अशान्त एवं दुखी होते रहते हो। इन्द्रियाँ मन बुद्धि साधन हैं इन्हें साधे रहना, स्ववश रखना, साधना की दृढ़ता है। दो अतियों और गतियों के मध्य में रहने से संयम सिद्ध होता है। संयम से शक्ति और शक्ति से साधना में दृढ़ता आती है।

प्रश्न–साधु ब्राह्मणों को सन्ध्या से क्या लाभ होता है ?

उत्तर–सन्ध्या की नित्य क्रिया दुहराना साधुता या ब्राह्मणत्व की पूर्णता नहीं है। दो को जोड़ने वाली सन्धि के मध्य से अखण्ड सत्य को प्रतिष्ठित देखना वास्तविक सन्ध्योपासना है। सत्य से नित्य से जीव को युक्त देखना और दया करुणा सेवा दान एवं सद्व्यवहार में कहीं असावधान न होना साधुता है। निन्दा, घृणा, कलह, क्रोध से सदा बचते रहना साधु स्वभाव की दृढ़ता है। आत्मा में ही प्रीति की दृढ़ता, कर्त्तव्य परायणता, निष्कामता और तत्व का बोध साधु की सिद्धि है। सन्धि के मध्य में सत्य की अनुभूति–सन्ध्योपासना है।

प्रश्न–जीवन में संघर्ष कैसे समाप्त होते हैं ?

उत्तर–ममता आसक्ति कामना लोभ के रहते भेद रहेगा ही भेद के रहते कलह, क्रोध एवं संघर्ष चलेगा ही ।

प्रश्न–गृह त्यागी साधु को स्वामी क्यों कहते हैं ?

उत्तर–प्रायः बिना विचारे ही दूसरों से सुनकर लोग स्वामी कहते हैं। यथार्थ दर्शी उसे स्वामी जानते हैं–जो सदा न रहने वाली वस्तुओं व्यक्तियों की ममता दासता से मुक्त है और जो इन्द्रियों को बस में रखता है। केवल बाह्य वेष बना लेने मात्र से कोई स्वामी नहीं होता! स्वामी होने और बनने में अन्तर है।

प्रश्न–नित्य प्राप्त सत्य दीखता क्यों नहीं ?

उत्तर–दर्पण में मुख है पर दिखता इसलिए नहीं कि दर्पण में मैल जमा है अथवा हिल रहा या फिर अपनी आँख ही नहीं खुली है।

हृदय सरोवर में स्वरूप का अर्थात् सत्य दर्शन अभी सम्भव है परन्तु काम रूपी लालिमा छाई है या फिर क्रोध की वाष्प निकल रही है, मोह लोभ वश तृष्णा से अशान्ति का कुहरा छाया है इसीलिए नित्य प्राप्त सत्य का साक्षात नहीं होता। सत्य के दर्शन के लिए शान्ति एवं पूर्ण मौन की अपेक्षा है विचार और विकार रहित होना आवश्यक है।

प्रश्न–जीवन में मुक्ति लाभ का क्या उपाय है ?

उत्तर–जो साधक मुर्दे की भाँति जीने की कला जानता है, जो साधक मान अपमान वियोगादि द्वन्द्वों में मृत की भाँति अचंचल रहता है वही जीवन में मुक्त होता है। ज्ञान में ही मुक्त स्वरूप का बोध होता है।

जो साधक सबके प्रति मर जाता है वही प्रभु में निरन्तर जीते हुए बन्धन से मुक्ति पा जाता है। भोगी मृत्यु का भोगी बनता है योगी देह की मृत्यु को देखते हुए मुक्ति का आनन्दानुभव करता है। मिट्टी की देह को जानकर चिन्मय देह को ध्यान से देखना जीवन में मुक्ति प्राप्त करना है, संसार से कुछ न चाहना मुक्ति का सरल उपाय है।

प्रश्न–पुण्य से पाप कैसे नष्ट होते हैं ?

उत्तर–कदाचित तुम अधिक भोजन के पाप से अपच का कष्ट भोगना नहीं चाहते हो तो आज भोजन छोड़ कर उपवास करो और आज का भोजन किसी भूखे को दे दो तो पुण्य से पाप नष्ट हो जायगा । यदि तुमने अज्ञान में प्रमाद में आज अहंकार वश किसी का अपमान कर दिया है तो अब विनम्र होकर क्षमा याचना रूपी पुण्य से पाप कट जायेगा, उसे मान देने से पाप कट जायगा ।

किसी का धन अपहरण किया है तो अब कुछ और धन मिलाकर उसे लौटा दो तो चोरी का पाप कट जायेगा। किसी प्रकार का असंयम रूपी पाप संयम रूपी पुण्य से कट जाता है।

वस्तुओं तथा व्यक्तियों में लगाई हुई प्रीति आत्मा एवं भगवान के प्रति मोड़ने से पाप कट जाता है। आत्मा के ज्ञान में शान्त स्वस्थ होने से समस्त पाप छूट जाते हैं। पापों का स्मरण चिन्तन न करने से पुण्य कर्म बढ़ाते जाने से पाप प्रवृत्ति छूट जाती है।

जब तुम्हारी कोई निन्दा करे, तुम्हे धिक्कारे तब शान्त रह कर सहन करो प्रतिक्रिया न होने दो तो सहज ही तुम्हारे पाप नष्ट होंगे और निन्दक के पुण्य तुम्हारे हिस्से में आ जायेंगे परन्तु बहुत साहस की त्याग की आवश्यकता है।

प्रश्न–ज्ञानचक्षु खुलने से क्या दीखता है ?

उत्तर–सर्वत्र नाम रूपों का प्रकाशक आत्मा का बोध रहता है। समस्त विश्व परमात्मा का विराट रूप दीखता है।

समस्त प्रकृति, ईश्वर की देह दिखती है।

विषम परिस्थिति में भी सम दृष्टि दृढ़ रहती है।

आत्मा अकर्ता और प्रकृति कर्ता है–यह स्पष्ट बोध होता है। सर्व में ईश्वर तत्व के दर्शन होते हैं। क्षण–क्षण के पीछे शाश्वत् के दर्शन होते हैं। अणु–अणु में विराट छिपा दिखता है क्षुद्र के पीछे महान विद्यमान दिखता है। प्रत्येक अन्त के पीछे अनन्त का बोध होता है। मृत्यु के पीछे नित्य मुक्ति दिखती है।

विन्दु ही सिन्धु दर्शन का द्वार बन जाता है

विनाशी में अविनाशी का दर्शन होता है।

स्वयं में ही सत्य परमात्मा प्रतिष्ठित मिलता है।

प्रश्न–साधना में शून्य होने का क्या अर्थ है ?

उत्तर–शून्य का अर्थ कुछ न चाहना, कुछ न रहना । स्वयं का मिटना प्रेम का पूर्ण होना है। प्रेम की पूर्णता में इच्छाओं की शून्यता है। चित्त में बाहर का प्रभाव अर्थात् दृश्य का प्रभाव न पड़ना ही शून्य होना है। शून्य से ही अक्षरों की अभिव्यक्ति होती है और अभिव्यक्ति का अन्तर शून्य में ही होता है। कागज में पेन रखते ही शून्य और लिखने के अन्त में भी शून्य ही रहेगा । आरम्भ में शून्य और अन्त में शून्य ही पूर्ण है।

प्रश्न–तीसरा नेत्र खोलने की साधना क्या है ?

उत्तर–दोनों भौं, त्रिकुटी के भीतर वृत्ति को स्थिर करने से साथ ही जीभ को लौटाकर तालू में लगाने से कुछ दिन के अभ्यास से तीसरा नेत्र खुलता है इसी को सुरत योग कहते हैं।

प्रश्न–गुरु तीसरा नेत्र खोल सकता है या नहीं ?

उत्तर–कोई कोई गुरु शिष्य की आखों को अंगुली से दबाते हैं उससे सुनहला प्रकाश कुछ देर दिखता है, उसे ही तीसरा नेत्र खुलने के भ्रभ में शिष्य को मोहित करते हैं।

सिद्ध सन्त शक्तिपात द्वारा मार्ग रोधक मल को हटा देते हैं— इसके अधिकारी कोई विरले ही साधक होते हैं। धन मान भोग चाहने वाले, सिद्ध नहीं होते । अवश्य ही तान्त्रिक साधना द्वारा किसी–किसी साधक में कुछ चमत्कार दिखाने की आंशिक शक्ति होती है जो कि लोभी मोही जनों को सम्मोहित कर लेती है विद्वान साधकों को सावधान रहना चाहिये। आत्मा का पूर्ण योगी ही वास्तविक सिद्ध है मन जब सिद्ध गुरु का शिष्य होता है तब तीसरा नेत्र खुल जाता है।

प्रश्न–आत्मा का देह में स्थान कहाँ है ?

उत्तर–आत्मा का मुख्य केन्द्र हृदय है, आत्मा ही हृदय है। इसका अनुभव मस्तिष्क से होता है ।

प्रश्न–आत्मा का ध्यान कैसे किया जाता है ?

उत्तर–चेतन में निमग्न हो जाना, चेतन की गहराई में डूबते जाना, चेतना के योग से आनन्दित होना ही आत्मानुभव की सुगम साधना है। जब संकल्प नहीं, तभी ध्यान है।

प्रश्न–निर्दोष अन्तःकरण में दोष कैसे आ गए? दोषों का अन्त कैसे हो ?

उत्तर–संग से दोष आते हैं। आसक्ति ही संग जनित दोष है। शान्त हो जाओ और निश्चय जान लो कि केवल आत्मा ही सत्य है अपने से भिन्न जो कुछ है वही जड़ है अनात्मा है जो कुछ भी भासता है आत्मा की सत्ता में ही भासता है, पर वह आत्मा नहीं है। नित्य जीवन ही आत्मा है विनाशी देहादिक वस्तु अनात्मा है। अनात्मा ही अनात्मा का परिचय दे रहा है। अनात्मा से अनासक्त होने से दोषों का अन्त हो जाता है।

प्रश्न–ज्ञान अज्ञान के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर–केवल सत्य चेतन ज्ञान स्वरूप है। जो एक है असीम है शाश्वत् है पूर्ण है वही ज्ञान है। निज स्वरूप के शुद्ध अस्तित्व की विस्मृति ही अज्ञान है। स्वयं को न जानना वस्तु से मिलकर अपने को कुछ मानना अज्ञान है, जिसके द्वारा वस्तु के स्वरूप को जाना जाय उसे ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न–जगत् प्रपंच से मुक्ति कैसे मिलती है ?

उत्तर–जगत् का उदय और अस्त मन में होता है। मन के श्रोत को खोजो, मन के मूल में आत्मा ही मिलता है, ध्यान योग से मन आत्मामय हो जाता है। जगत् तो आत्मा का विराट रूप है इसीलिए आत्मा से भिन्न जगत् की सत्ता नहीं है। आत्मा का बोध होने पर जगत् बाधक नहीं रहता प्रत्युत सेवा का सुपात्र हो जाता है।

प्रश्न–जो सत्य एक है, आत्मा है, उसके क्या गुण हैं ?

उत्तर–सत्य न एक है न दो है वह तो यथावत् ज्यों का त्यों है। आत्मा में न सद्गुण हैं न दुर्गुण हैं, गुण दुर्गुण प्रकृति में हैं, मन की उपाधि हैं। ध्यान में आत्मिक शान्ति की गहराइयों से लौटने पर अनेकों प्रकार के वर्णन मिलते हैं आत्मा यदि सीमित है तो अहंकार है, जहाँ असीम है वहीं अनन्त है सनातन सत्य है।

प्रश्न–देहाध्यास मिटाने की विधि क्या है ?

उत्तर–देह को ध्यान से देखो और बार–बार मनन करो कि सदैव आत्मा ही है। आत्मा अहंकार के बिना रहती है पर अहंकार, बिना आत्मा के नहीं होता। जब तुम जड़ देह को चेतन ज्ञान में देखते हो तब जड़ के प्रकाशक तुम स्वयं आत्मा हो।

प्रश्न–वैराग्य कैसे पूर्ण होगा ?

उत्तर–अहंकार न रहने पर राग का अन्त होता है। चित्ताकाश में ही समस्त चित्र भरे हैं चित्र ही रागी द्वेषी बनाते हैं। मन को खोजने पर संकल्पों का समूह दीखता है, संकल्प पूर्ति का सुख ही रागी बनाता है। गुरू कृपा से भी वैराग्य होता है।

प्रश्न–गुरु कृपा कैसे होती है ?

उत्तर–गुरु कृपा तो है ही किन्तु उसका अनुभव अहंकार के समर्पण करने पर होता है। जो कुछ अपने आप आये उसमें प्रसन्न रहो, निर्भय रहो और जो करो उसके लिए उन्हीं की दया अनुकम्पा पर निर्भर रहो ।

प्रश्न–ध्यान में दिव्य दर्शन की साधना क्या है ?

उत्तर–वृत्तियों को, संकल्पों को, विचारों को साधे रहना शान्त रहना ही दिव्य दर्शन को साधना है किन्तु दर्शन की आशा एवं प्राप्ति की इच्छा, अहंकार की ही माँग है।

प्रश्न–हम कौन–सी साधना प्रणाली अपनायें ?

उत्तर–जिससे मन चित्त बुद्धि आदि साधन शुद्ध हो वही साधना श्रेयस्कर है। जिस साधना से अहंकार की तृप्ति एवं सिद्धि मिलती है वह उत्तम नहीं है। जिस साधना से अहंकार विसर्जित होता है वही उत्तम है।

प्रश्न–किसी को अपने वश में करने का क्या उपाय है ?

उत्तर–जिसे तुम प्रेम पूर्वक चाहोगे वही तुम्हारे वश में होगा घृणा द्वेष तो प्रेम के विरोधी हैं प्रेम को देने से प्रेम विकसित होता है अतः प्रेम पाने की चाह छोड़ कर प्रेम देते रहो। ज्ञानाभिमानी पण्डित किसी के हृदय को नहीं जीत पाता निरभिमानी, प्रेम का दानी हृदय को जीत लेता है। किसी को स्ववश करने की इच्छा भी अहंकार में ही होती है।

प्रश्न–जब बड़े–बड़े त्यागी अशान्त देखे जाते हैं तब गृहस्थ को शान्ति कैसे मिल सकती है ?

उत्तर–वासना अहंता ममता तृष्णा से भरा चित्त बाह्य त्याग से शान्ति नहीं पा सकता ।

चित्त का त्याग ही वास्तविक त्याग है जहाँ कोई भी चाह है वहीं चित्त है। त्याग की चाह भी भोगी चित्त में ही होती है जिस प्रकार भोग में शान्ति नहीं है उसी प्रकार त्याग में भी शान्ति नहीं है। जब चित्त, चाह चिन्तन से शून्य है तभी शांति है। चित्त को साक्षी होकर देखते रहना–चित्त के विलीन होने की साधना है। चित्त रहित चेतना में पूर्ण शान्ति है।

प्रश्न–साधारण गृहस्थ के लिए भक्ति की क्या साधना है ?

उत्तर–जो सद्‌गृहस्थ अपने से बड़ों की सेवा करते हुए सहनशील होता है, छोटों के प्रति दया करता है, अपने बराबर वाले के प्रति मित्रता रखता है, और समस्त प्राणियों के प्रति दया भाव से समान बर्ताव करता है वह परमप्रभु की प्रसन्नता रूपी प्रसाद को पाता है। जो सद्‌गृहस्थ मिली हुई देह, मन, बुद्धि आदि सभी वस्तुओं को परमेश्वर की जानता है जो अपने में और सभी प्राणियों में परमात्मा की ही सत्ता से सचेतन देखते हुए सभी की सेवा करना परमेश्वर की पूजा समझता है वह भक्ति की साधना को घर में रहते हुए पूर्ण कर लेता है।

परमात्मा को नित्य निरन्तर सर्वत्र उपस्थित जाने बिना भक्ति की साधना पूर्ण नहीं हो पाती। आस्था, श्रद्धा, विश्वास और आत्मीयता की पूर्णता में ही भक्ति–साधना पूर्ण होती है। भगवान से भिन्नता भेद न रहना ही भक्ति है। अपने साथ जो कुछ भी मन,चित्त, बुद्धि आदि वस्तु है वह सब भगवान की ही है और अपने आप में जो चेतना है, जो ज्ञान है अथवा प्रेम है वह भगवान ही हैं– ऐसा निरन्तर चिन्तन मनन भी भक्ति की साधना है।

प्रश्न–परस्पर कलह कैसे समाप्त हो सकता है ?

उत्तर–पाप का दण्ड भुगताने के लिए ही कलह प्रबल होता है। कर्कष वाणी से कलह की उत्पत्ति होती है इसलिये पुण्यवान प्राणी को किसी के प्रति कर्कष वाक्य नहीं कहना चाहिए। यदि तुम इतना ही निश्चय कर लो कि किसी को अभिमान वश, लोभ वश, कर्कष वाक्य न कहोगे तो बहुत बड़ा पाप छोड़ दिया। सभी के प्रति निष्काम प्रेम हृदय में भरा रहे तभी कर्कषता का अन्त सम्भव है। अधर्म को असत् संग से ही प्रीति होती है असत् संग से दम्भ उत्पन्न होता है, दम्भ से लोभ तथा लोभ लाभ की प्रतिकूलता में क्रोध की उत्पत्ति एवं क्रोध से ही कर्कष वाक्यों का प्रयोग और कर्कष वाणी से कलह ही विनाश में ले जाता है। पैर फिसलने की चोट कुछ दिनों में ठीक हो जाती है परन्तु वाणी फिसलने से जो चोट लगती है वह कई वर्षों तक ही नहीं कई पीढ़ियों तक पीछा नहीं छोड़ती है। सीताजी ने लक्ष्मण जी को कर्कष वाक्य ही कहे थे, द्रोपदी तथा भीम ने दुर्योधन के प्रति कर्कष वाणी का ही प्रयोग किया था, उसी का कितना दुखद परिणाम देखना पड़ा। वाणी को स्ववश रखना दैवी कृपा है।

प्रश्न–दुःख नहीं चाहते, फिर भी क्यों आ जाता है सुख चाहते हुए भी क्यों चला जाता है ?

उत्तर–चले जाने वाले क्षणस्थायी सुख को बार–बार चाहते हैं इसीलिए बार–बार दुख आता ही रहता है। सुख को सदा न रहने वाली देहादिक वस्तुओं एवं व्यक्तियों में निर्भर कर देते हैं इसीलिए वस्तुओं, व्यक्तियों के परिवर्तन से सुख जाता हुआ प्रतीत होता है । दुःख का आना और सुख का चला जाना अज्ञान के कारण ही प्रतीत होता है। जो न आता है न जाता है उस नित्य निरन्तर सत्य आत्मा के प्रति प्रेम पूर्ण होने पर सुख का लालच और दुख का भय मिट जाता है।

प्रश्न–सत् आत्मा के प्रति प्रेम कैसे पूर्ण होगा ?

उत्तर–जो असत् है सदा रहने वाला नहीं है जो प्रतीत होता है किन्तु प्राप्त नहीं होता है उससे ममता प्रीति हटा लेने पर अनासक्त होने पर सत् का बोध होता है।

प्रश्न–जिसे सत् का बोध होता है वह सत् है या असत् है ?

उत्तर–जिसे अबोध होता है उसी को बोध होता है और वह तुम्हीं हो अतः तुम अपने को अपने ही द्वारा जानो कि सत् हो या असत् हो ।

प्रश्न–अपने द्वारा हम अपने को कैसे जानें ?

उत्तर–अपने आपको अकेला होने दो अन्य कुछ भी जब नहीं दिखेगा तभी अपने को जानना सम्भव होगा ।

प्रश्न–शास्त्रवित् विद्वानों में काम, क्रोध लोभादि विकार क्यों रहते हैं ?

उत्तर–जो नित्य विद्यमान परमात्मा का प्रेमी नहीं होता वही अनित्य सुख का कामी तथा अनित्य वस्तुओं का लोभी एवं क्रोधादि विकारों से ग्रसित होता है आत्म अज्ञान में ही समस्त विकार हैं, आत्मज्ञान से ही सारे विकारों का अन्त होता है शास्त्रवित् अहंकारी होता है आत्मा वित् अहंकार रहित होता है।

प्रश्न–हम सदा सुखी कैसे रह सकते हैं ?

उत्तर–जो सदा रहने वाला अविनाशी आत्मा है उसी में प्रेम होने पर शाश्वत् सुख उपलब्ध रहता है ।

प्रश्न–भय की निवृत्ति कैसे सम्भव है?

उत्तर–अज्ञान में विनाशी के संग से ही भय है। ज्ञान में अविनाशी तत्व की अनुभूति में भय का अन्त है। जहाँ तक लोभ है वहीं तक छिन जाने का, छूट जाने का भय है, जहाँ लोभ नहीं है वहाँ भय का अन्त है। जहाँ भेदभाव है वहीं भय है, जहाँ प्रेम है वहीं अभय पद की प्राप्ति है। सुखोपभोग का लोभी, संयोग का लोभी, धन भूमि भवन का लोभी, मान का, नाम का लोभी भय से मुक्त नहीं हो सकता, चाहे कितना ही पण्डित, विद्वान ही क्यों न हो ।

प्रश्न–मृत्यु का भय कैसे छूटे ?

उत्तर–जीवन को जान लेने पर जाग्रत रहते भय नहीं रहता है। विरागी जागता है, रागी सोता है। मोह निद्रा में सोया मनुष्य भय से

मुक्त नहीं होता जो जाग जाता है वही अमृतत्व को पाकर अभय होता है। जन्म से ही दौड़ना आरम्भ होता है उस दौड़ का अन्त मृत्यु में होता है जो सत आत्मा में ठहर जाता है वही अभय होता है। असत अनित्य के संग में ही सब प्रकार के भय हैं, असत संगी जीव जिससे बचने के लिए भागता है, वह उसी ओर जाता है जहाँ मृत्यु है, वियोग है, सम्बन्ध विच्छेद है। उसका प्रत्येक पग उसी ओर लिए जा रहा है जहाँ भय की सीमा है, मृत्यु से वहीं तक भय लगता है जब तक अविनाशी जीवन का ज्ञान नहीं होता । अथवा मृत्यु के विषय में यथार्थ जानकारी नहीं होती। मनुष्य प्रायः जन्म का स्मरण करता है मृत्यु को भूलता रहता है जब कि जन्म से ही मृत्यु प्रारम्भ हो जाती है। जो मृत्यु से भाग कर जहाँ कहीं जाना चाहता है और जाता है वह वहीं पर पहुँच जाता है जहाँ मृत्यु निश्चित होती है। वास्तव में प्राणी मृत्यु से नहीं डरता मृत्यु में कुछ छूटने से डरता है।

समस्त भय आत्म अज्ञान के कारण हैं। जो हम नहीं हैं उस पर के साथ तद्रूप होकर अपने को मानते हैं इसीलिए भय से घिरे हैं, जो कुछ पर है अपना नहीं है, उससे अपने को पृथक् देखना ही भय से मुक्त होना है। विनाशी से सम्बन्धित होने के कारण प्रत्येक कर्म में, भाव में, विचार में, स्नेह में, घृणा में, ग्रहण में, त्याग में, अथवा प्रत्येक व्यवहार में, सोते, जागते, उठते, बैठते, भय साथ ही रहता है। भय वश ही धर्म की, ईश्वर की, गुरु की, प्रत्येक वस्तु की, या व्यक्ति की शरण लेनी होती है। ज्ञान में जागते ही स्व और पर पृथक् दिखता है तभी भय समाप्त होता है। जहाँ तक छूटने का तथा खोने का भय है, किसी के आने का या किसी के चले जाने का भय है वहाँ तक अज्ञान है और विनाशी से सम्बन्ध है, यही नास्तिकता है। नास्तिक को भय लगता है आस्तिक अभय होता है। जो धर्म में प्रेम में, दृढ़ स्थित है वही अभय है।

प्रश्न–यह अज्ञान रूपी अन्धकार कैसे मिटेगा ?

उत्तर–अन्धकार बाहर है आलोक भीतर है। इन्द्रिय दृष्टि से देखने पर सर्वत्र बाहर अज्ञान अन्धकार है। प्रज्ञा दृष्टि खुलने पर भीतर दिव्य आलोक है। विवेक ही सत्य तक ले जाता है।

अज्ञान में प्रमादी रहकर यह जीवात्मा अर्थात् अहंकार स्वयं आत्मा को भूल कर जड़ देहादिक वस्तुओं का संगी बन रहा है। अतः विनाशी से असंग होने पर ही भय का अन्त हो सकता है। झूठे अहंकार में सत्य आत्मा को प्रतिष्ठित देखने से मूढ़ता की निवृत्ति होती है।

प्रश्न—अहंकार भी क्या झूठा सच्चा होता है ?

उत्तर—विनाशी देह से मिलकर 'मैं' भाव झूठ अहंकार है अविनाशी आत्मा से तन्मय होने पर 'मैं' भाव, सच्चिदानन्दमय हो जाता है। सच्चिदानन्द से विमुख रहने तक ही समस्त क्लेशों का भोग चलता है।

प्रश्न—ब्रह्म और आत्मा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—ब्रह्म और आत्मा में कोई भिन्नता नहीं है, जिस प्रकार प्रकाश और किरण में भिन्नता नहीं है।

प्रश्न—हमें साधना के लिए एकान्त कहाँ मिलेगा ?

उत्तर—जहाँ अनेकता भाव नहीं रहता वहीं एकान्त है। मनुष्य का मन ही एकान्त है मन का सम्बन्ध अनेक से न रहकर एक से हो तब एकान्त ही है, हृदय रूपी गुहा से बढ़कर कहीं एकान्त नहीं है। केवल प्रेमी ही एकान्त हो पाता है। प्रेमी वही है जहाँ केवल प्रेम ही प्रेम हो, कोई कामना न हो ।

प्रश्न—हम रोगों से कैसे बच सकते हैं ?

उत्तर—अहिंसाव्रत में दृढ़ रहने से, मन को इन्द्रियों को संयम में रखकर सेवा में श्रमी बने रहने से, भोजन में क्या लेना चाहिए, कब लेना चाहिए, कितना लेना चाहिए, और किस विधि से लेना चाहिए यह समझ कर नियम पालन से शरीर मन रोग रहित हो सकता है ।

प्रश्न—अहिंसाव्रत और रोगों से क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर—हिंसक मानव का मन काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष मद मत्सर आदि अनेकों रोगों से ग्रसित रहता है। जिसका मन रोगी होता है उसकी बुद्धि गम्भीर सत्यदर्शी परिणामदर्शी स्थिर नहीं होती, उसकी देह की सारी गतियाँ विपरीत रहती हैं इसीलिये शरीर भी रोगों से घिरा रहता है। इसके विपरीत अहिंसाव्रत को वही पूर्ण कर पाता है जो इच्छाओं, कामनाओं, वासनाओं की पूर्ति का पक्ष न लेकर दूसरों की हितकारी सेवा

में तत्पर रहकर लोभ मोह क्रोधादि विकारों से रहित होकर प्रेम से भरा हो। भरपूर प्रेम में ही हिंसा का त्याग सम्भव होता है। प्रेम से भरपूर वही हो सकता है जिसकी प्रीति किसी वस्तु में या व्यक्ति में, किसी संयोग में, भोग में, अधिकार या किसी के प्यार में न बिखरी हो और ऐसी स्थिति उसी की होती है जो किसी को अपना न मान कर सब कुछ को परमेश्वर का ही जानता है। जो पूर्ण अकिंचन होता है।

प्रश्न—**मानसिक आरोग्यता के लिए अहिंसाव्रत कैसे साधें ?**

उत्तर—जो स्व में स्थित स्वस्थ सन्त है, उनकी संगति करो। सुखासक्ति को विरक्ति में बदलने के लिए निष्काम सेवा धर्म का पालन करो। ज्ञान स्वरूप गुरू से पूर्ण श्रद्धा स्थिर करो। परमात्मा को दूर न मान कर सर्व में परमात्मा की सत्ता को, परमात्मा के चेतनतत्व को देखो और सबके प्रति प्रेम से भरे रहो।

जो मिले हुए तन, धन, बल, बुद्धि मन आदि को अपना न मान कर, अपने लिए न मान कर दूसरों की प्रेमपूर्वक सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझता है वही सेवाव्रती मानसिक रोगों से मुक्त होता है।

प्रश्न—**शरीर के रोगों की निवृत्ति के लिए अब क्या करें ?**

उत्तर—यदि बुद्धि में घोर जड़ता, मूर्खता न हो तो रोग का उपचार करने के प्रथम रोग का मूल कारण जान लो। खोज करने पर विषयों में आसक्त मन की अशान्ति और अनुपयुक्त अविधि पूर्वक भोजन ही रोग का कारण, सिद्ध होगा, इसीलिये भोजन में सुधार कर लो। यह जान लो कि क्या—क्या खाना है, कब खाना है, कितनी मात्रा में, किस प्रकार खाना है। और शान्त प्रसन्न रहो।

प्रश्न—**भोजन सम्बन्धी सभी प्रश्नों का उत्तर दे दीजिये।**

उत्तर—आहार नित्य का एक यज्ञ है परन्तु यज्ञ भाव से आहार करने वाले कोई बिरले ही धर्मात्मा हैं। अज्ञानपूर्वक भोजन करने वाला अधासुर बन जाता है और ज्ञान पूर्वक यज्ञ भाव से भोजन करने वाला अमृत भोजी देवता हो जाता है।

देह को रोग रहित रखने के लिए भोजन के नियम—

(1) प्रातः जल सेवन करो (2) अधिक क्षुधा लगती हो तो धन की कमी न होने पर रात की भिगोई हुई किसमिस मुनक्का ले सकते हो (3) घी

तेल के बने पदार्थ कदापि न लो। (4) प्रातः का दुग्ध पान आगे चलकर शरीर को विकार ग्रस्त बना देता है। प्रातः दूध न लो । (5) कड़ी भूख लगने पर दिन को दोपहर बारह बजे के पश्चात् भोजन लो। (6) अधिक भूख लगे बिना कदापि न खाओ। परन्तु खाने की आदत पर अधिकार प्राप्त करना सबके वश की बात नहीं है। (7) भोजन जितना करते हो उसका चौथाई भाग निकाल कर कौवा, कुत्ता आदि के लिए देखकर बाहर रख दो। (8) तीन भाग अन्नजल से क्षुधा को शान्त करो। एक भाग भूखे रहो। (9) भोजन के पश्चात् विश्राम आवश्यक है। यदि दिन में कार्य व्यस्त रहना पड़ता हो तो दोपहर में फल खा लो शाम को अन्न दूध लेकर विश्राम करो। (10) एकादशी अमावस्या, पूर्णिमा को फलाहार ही करो (11) यदि शरीर विकारी हो, स्थूल हो तो एकादशी के दिन केवल जल पीकर रहो, आहार न लो। (12) जिस दिन व्रत उपवास करो उस दिन का बचा हुआ अन्न किसी भूखे सुपात्र को अथवा ब्राह्मण को दे दो। एक शास्त्रीजी के भयानक अति कष्टदायी इकजिमा था, इलाज में बहुत धन खर्च किया अन्त में भोजन एक समय को छोड़कर नित्य चतुर्थ भाग निकालने लगे दूध का नाश्ता छोड़ दिया। कुछ समय बीतने पर इकजिमा का निशान भी नहीं रह गया। ऐसे संयमी प्रत्यक्ष हैं जिन्हें पचास वर्ष से कोई रोग हुआ ही नहीं। अपने भोजन से चौथाई भाग किसी प्राणी को खिला देने से यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है ।

प्रश्न—नहीं चाहते हुए हम बन्धन में क्यों बांधे जाते हैं ?

उत्तर—कुछ न कुछ अवश्य ही चाहते हो। समस्त बन्धन चाहने के कारण हैं। जो कुछ नहीं चाहता उसे कोई बन्धन नहीं । जो कुछ नहीं चाहता उसे सभी चाहते हैं। जिसे सभी चाहते हैं उसकी आवश्यकता स्वतः पूरी होती रहती है। जो कुछ नहीं चाहता वही पूर्ण तृप्त होता है। जो पूर्ण प्रेम में होता है वही अपूर्ण से कुछ नहीं चाहता, क्योंकि पूर्ण तृप्त होता है। परम गुरू भगवान का निर्णय है कि जो आत्मा में ही प्रीतिवाला है, आत्मा में ही तृप्त है, आत्मा में ही सन्तुष्ट है उसे कुछ करना शेष नहीं रहता वही बन्धन से मुक्त रहता है।

प्रश्न–पूर्ण विवेक कैसे होता है ?

उत्तर–सत्संग से विवेक होता है। जो नित्य निरन्तर अभी है, यहीं है, उसी में शान्त मौन होना ही सत्संग है। विचार जब मौन होते हैं तब सत् आत्मा के योग से विवेक पूर्ण होता है, इसीलिये पूर्ण समाधान बुद्धि से नहीं, शान्त आत्मा से आता है। उसे ही देखना है जो निरन्तर देखता है, वही विवेक है ।

प्रश्न–हम प्रभु को कैसे पुकारें ?

उत्तर–जो दूर होता है उसे पुकारा जाता है। वास्तव में प्रभु से दूरी है ही नहीं, अज्ञान वश दूर मान लिया है। मानी हुई दूरी, जानते ही समाप्त हो जाती है। प्रभु को नहीं पुकारो प्रत्युत शान्त मौन होकर प्रभु की सुनो।

प्रश्न–प्रभु दूर नहीं हैं तो भक्त प्रार्थना क्यों करते हैं ?

उत्तर–जो दूर मानते हैं वही मान्यतानुसार भाव से प्रार्थना करते हैं, वास्तव में की गई प्रार्थना का प्रायः उत्तर नहीं मिलता क्योंकि प्रार्थना दुखी हृदय की प्यास है। मनुष्य जिसके लिए अत्यन्त दुखी होता है उसी की पूर्ति देखता है। मनुष्य को अनायास जो सुखद वस्तु, व्यक्ति, अधिकार, संयोग–भोग के रूप में सुलभ होता है, उसी के लिए वह कभी अति दुखी होता रहा है। कभी–कभी ऊपर से बने हुए साधु संन्यासी भी भीतर वासना वश किसी संयोग के लिए अथवा सुखोपभोग के लिए व्यथित होते रहते हैं। इसीलिये कभी न कभी उसी के भोगी बनते हैं।

कुछ पाने की गहरी प्यास ही प्रार्थना है जो कि मौन प्रतीक्षा रूप में चलती रहती है।

शान्त भाव से चैतन्य में जाग्रत रहने से ही प्रार्थना पूरी हो जाती है।

प्रश्न–दुःख को भूलने का क्या उपाय है ?

उत्तर–दुःख को भूलने के लिए ही मनोरंजन के साधन, सिनेमा आदि प्रचलित हैं। वास्तव में अहंकार को भूल कर ही दुःख भुलाया जा सकता है और स्वयं को जान कर दुःख मिटाया जा सकता है। स्वयं के बोध से अहंकार मिटता है। अहंकार विसर्जित होने पर दुःख मिट जाता है। अहंकार न रहने पर जो शेष रहता है वही शेषशायी परमात्मा विष्णु है। परमात्मा विष्णु की शरण में ही दुख मिटते हैं। इसी को दुःखहारी प्रभु कहते हैं ।

प्रश्न–परमात्मा के प्रति प्रीति मोड़ने के लिए क्या करें ?

उत्तर–इस देह को बाहर भीतर जैसी है, उसे ध्यान से देखो। सभी प्रकार की सुखद दुखद वेदना को ध्यान से देखो । .... चित्त के निष्काम सकाम रूप को देखते रहो। ....मन में उठने वाली काम, क्रोध, द्वेष, आलस्य, प्रमाद संशय आदि वृत्तियों को देखते रहो। केवल देखते ही रहो। द्रष्टा होने से अनित्य के प्रभाव की मोह निद्रा टूटती है।

प्रश्न–हम एक दुख से नहीं अनेकों दुःखों से पीड़ित हैं, इनका कैसे अन्त होगा ?

उत्तर–ज्ञान से देखने पर अनेक दुःख नहीं हैं – एक ही दुःख है और वह है आत्मा के अज्ञान का दुःख। दुःख एक ही है कष्ट अनेक हैं कष्टों की भीड़ में आत्म अज्ञान के दुख का पता नहीं चलता। सुविधाओं से कष्ट तो मिटते रहते हैं परन्तु दुःख बना ही रहता है।

कष्ट के अभाव में सुख की प्रतीति होती है। सुख की प्रतीति क्षण–क्षण बदलती रहती है मनुष्य सुखाभास में उलझा रहता है। दुःख के मूल कारण आत्म अज्ञान को ही नहीं जान पाता । प्रज्ञान से प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम में ही अज्ञान का अन्त होता है, अज्ञान मिटने पर दुःख मिटता है। स्वयं के द्वारा स्वयं को जानना प्रज्ञान है। यह गुरु आदेश है कि स्वयं ही जलो और प्रकाश बनो। तुम वही हो जिसका चिन्तन करते हो। किसी अन्य का सहारा न लो। जो सत्य है, परमात्मा है, प्रेम है वह अभिन्न स्वरूप है।

अनादि अनन्त अमृत सत्य तत्व के बोध से ही साधक दुःख को मिटा पाता है और नित्य आनन्द में प्रतिष्ठित होता है।

जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर ।
जबते यह मन थिर भयो वस्तु ठौर की ठौर ।।

जो दूसरों को देखकर असन्तुष्ट होता है वही सुखी रहने के लिए सुविधाओं के लिए प्रयत्न करता है। जो स्वयं के अज्ञान बन्धन से असन्तुष्ट होता है वह सत्य स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करता है। दुख को मिटाने के लिए आत्म निरीक्षण करो। स्वयं के सत्य को जानो। अविच्छिन्न चेतन तत्व को ध्यान से देखो।

प्रश्न–सभी से प्रेम होने का क्या उपाय है ?

उत्तर–तुम स्वयं से ही प्रेम करो। जो स्वयं से प्रेम नहीं करता वह किसी से प्रेम नहीं कर सकता। जो स्वयं को प्रेम से भरे रहता है वही

सदाचारी होता है। सदाचारी सभी को प्रिय होता है। सारे पापों को न करना, पुण्यों को ही पूर्ण करना, सभी के प्रति दया, प्रेम भाव रखना, गुरू जनों की शिक्षा है। चाहे अभी से मानो, चाहे कभी के लिए टालते रहो।

प्रश्न–हम दूसरों को जो उपदेश देते हैं उसे क्यों नहीं मानते?

उत्तर–जहाँ सत्य ज्ञान प्रकाशित होता है वहीं परमात्मा है। उस सत्य ज्ञान को जो अभिव्यक्त करता है वही दिव्य वाणी युक्त मानवी प्रकृति है। और जो सत्योपदेश को मानने में बाधा डालता है वह दानवी प्रकृति है, वहीं मानव आकृति में छिपा हुआ दैत्य है, असुर है। अहंभाव और ममभाव दानवी रूप हैं। इसीलिए ममता अहंता के रहते ज्ञान आचरण में नहीं आ पाता, कथन तक ही रह जाता है। कथाओं में सुना जाता है कि हिरणाकश्यपु, रावण आदि बड़े विद्वान पण्डित थे पर ज्ञान के अनुसार आचरण न होने के कारण दानव राक्षस कहे गए हैं। मनुष्य के धर्माचरण में, पारमार्थिक साधना में बाधक, पशु प्रकृति तथा राक्षसी एवं दानवी प्रकृति है। प्रभु कृपा बल द्वारा, दानवी राक्षसी प्रकृति पर विजय प्राप्त होती है।

प्रश्न–परस्पर अनेकों लोग राम राम क्यों कहते हैं?

उत्तर–अच्छे साधक परस्पर मिलते ही नाम रूप के प्रकाशक राम का अनुभव करते हैं एक दूसरे में राम को देखते हैं। अज्ञानी जैसे करते देखते हैं, वैसा ही स्वयं करते हैं।

प्रश्न–समाज में इतना अधिक पाखण्ड क्यों चलता है ?

उत्तर–मनुष्य के मन में जब किसी अन्य जैसा बनने की रुग्ण वासना प्रबल होती है तभी वह दूसरों के समान अपने को सिद्ध करने के लिए पाखण्डी हो जाता है।

अनुकरण, आत्मघातक होता है। अनुकरण से (नकल से) अहंकार सन्तुष्ट होता है, और आत्म विकास कुण्ठित हो जाता है। अहंकार की मृत्यु में आत्मा का जीवन स्पष्ट होता है। अहंकार ही पाखण्डी, दम्भी, धूर्त, कपटी आदि अनेकों उपाधियों में होकर अज्ञान में यात्रा करता है।

प्रश्न–अहंकार का ज्ञान कैसे होता है ?

उत्तर–अहंकार का ज्ञान उतना ही कठिन है जितना ज्ञान का अहंकार सरल है। अहंकार, हृदय को अति कठोर बना देता है, बुद्धि की घोर जड़ता में यह विस्तृत होता है। अहंकार की बनावट में हिंसा है। अहंकार के भीतर

वस्तु व्यक्ति शक्ति सम्पत्ति, योग्यता अधिकार त्याग तप संन्यास वैराज्ञ ज्ञान प्रेम आदि जो कुछ भी आ जाता है उसका भोगी बन जाता है। भोगी बनकर स्वयं को नहीं देख पाता । ज्ञान में ही अहंकार का परिचय मिलता है।

प्रश्न–**हम सेवा करना चाहते हैं पर क्यों नहीं हो पाती ?**

उत्तर–सेवा वही कर सकता है जो स्वयं सम्राट है। साम्राज्य का भोगी अहंकार, सेवा नहीं कर सकता। अहंकार सदा का भिखारी है वह धन, मान, भोग का याचक है। अहंकारी व्यक्ति सदा दीन एवं दरिद्र ही बना रहता है । जहाँ अहंकार नहीं रहता वहीं प्रेम प्रगट होता है। प्रेम में ही सेवापूर्ण होती है। जो अहंकार से भरे हैं वही प्रेम से रिक्त हैं और वही धन के मान के एवं पराधीन भोग के भूखे बने रहते हैं। जिस सेवा के पीछे पुरस्कार की माँग है वह सेवा नहीं है, सौदा है।

प्रश्न–**हम जीवन के सत्य को कैसे जानें ?**

उत्तर–संयम, शक्ति, संकल्प, श्रम और साधना से जीवन का सत्य सुलभ हो जाता है।

जीवन वैसा ही बनता है जैसा हम उसे बनाते हैं। क्षुद्र को देखते हुए साधक क्षुद्र में अटक जाता है। विराट को देखते हुए विराट से भरपूर होता है। जो स्वयं के अतिरिक्त अन्य कुछ होने के प्रयत्नों को छोड़ देता है वह स्वयं में ही सत्य का अनुभव करता है। अभाव की वेदना से हीनता की भावना से श्रेष्ठ होने की महत्वकांक्षा प्रबल होती है, वही सत्य दर्शन में बाधक है, वही गहरी मादकता एवं आत्म विस्मृति लाती है। सब कुछ के त्याग से जीवन के सत्य को जाना जाता है।

प्रश्न–**अशान्ति में कहीं चले जाने की इच्छा को कैसे रोकें ?**

उत्तर–शान्ति, अथवा सत्य, अथवा आनन्द, परमात्मा स्वयं में ही है। वह कहीं जाने से भागने से खोजने से नहीं मिलेगा–इसीलिए भाग दौड़ व्यर्थ ही होती है। सत्य परमात्मा निकट से निकट स्वयं के चारों ओर ही विद्यमान है। जो अभी है, इसी क्षण के पीछे है, उसे भविष्य में पाने की कल्पना छोड़ दो, शान्त मौन होकर भीतर लौटो ठहरो, स्वयं में देखो। जब तक स्वयं में नहीं देख सको तब तक देखने वाले महात्मा की सुनो, समझो। अज्ञानी, मोही, लोभी के अनुगामी न बन कर गुरु ज्ञान के

अनुयायी हो जाओ। अप्रौढ़ बुद्धि अन्धी होती है। प्रज्ञावान की सुनो तद्नुसार आचरण करो।

तुम सत्य के लिए शान्ति के लिए अथवा परमात्मा के लिए, जहाँ हो अपने को एकाकी उपस्थित रखो, वहीं उसका अनुभव होगा। जिसके लिए कहीं जाना चाहते हो, वह तो वहीं मिलेगा जहाँ से उसकी खोज आरम्भ होती है।

प्रश्न–मन को विरागी कैसे बनायें ?

उत्तर–भोजन के स्वाद में, द्रव्य में, वस्त्रों में, घर में स्त्री के संयोग जनित सुख में मन नहीं फँसने दो तब वैराग्य हो सकेगा। विषयों के चिन्तन से राग बढ़ता है विषयों का चिन्तन वैराग्य में बाधक है।

प्रश्न–गृह प्रपंच के बीच में परमार्थ की सिद्धि कैसे होगी ?

उत्तर–शरीर से गृह परिवार में रहो पर मन से कुछ भी अपना न मान कर परमेश्वर का ही जान कर सेवा द्वारा प्राप्त का सदुपयोग करो तभी परमार्थ सिद्धि होगी । तन को घर में रहने दो मन में केवल भगवान का प्रेम बसा लो। निरन्तर प्रभु स्मरण का अभ्यास बढ़ाओ। जगत् से सम्बन्ध उतना तन से नहीं जितना मन से होता है। अपना मान लेना ही बन्धन है, अपना न मानना ही मुक्ति है। मन–ही–मन प्रभु का स्मरण करते रहो।

प्रश्न–किसी से सम्बन्ध न जुड़ने का क्या उपाय है ?

उत्तर–स्नेह से, द्वेष से, भय से और वासना से ही, वस्तु तथा व्यक्ति से सम्बन्ध जुड़ता है। अतः स्नेह द्वेषादि के त्याग से सम्बन्ध नहीं जुड़ता है। दृष्टि के चंचल होने से मन चंचल होता है किसी से वार्ता करने पर वासना, इच्छा जागती है अतः मन की चंचलता को वश में करो। विषयों में आसक्ति से ही सम्बन्ध होता है। विषयों से विरक्ति ही स्वतन्त्रता है।

प्रश्न–वर्तमान समय में रोगों की अधिकता क्यों हो रही है ?

उत्तर–भूतकाल की अपेक्षा वर्तमान पीढ़ी में आलस्य विलासिता असंयम दुर्व्यसन की अधिकता से रोगों की अधिकता है।

प्रश्न–धनाभाव में रोगी की चिकित्सा कैसे की जाये ?

उत्तर–चिकित्सा के लिए धन चाहिए किन्तु संयम के लिए धन की आवश्यकता नहीं है। धन नहीं है तब संयम के द्वारा शक्ति संचित करने से रोग की निवृत्ति हो जाती है। ऐलोपैथी इलाज के लिए अधिक धन

आवश्यक है। आयुर्वेदिक इलाज में कम धन खर्च होता है। होमियोपैथी में बहुत कम खर्च होता है। प्राकृतिक उपचार में जल मिट्टी वाष्प धूप के उपयोग की विधि जान लेने पर धन की अपेक्षा नहीं रहती। मनुष्य के किसी पाप कर्म से देह रोगी बनती है और दूसरे प्रकार के पापोदय से धन की हानि होती है, तीसरे प्रकार के पाप से धनाभाव का दुख होता है। अनेकों प्रकार के पापों में अज्ञान सर्वोपरि पाप है। इस अज्ञान रूपी पाप की ही लोभ, मोह, काम, क्रोधादि सन्तानें हैं जो जीवन को घेरे हुए हैं। अज्ञान रूपी मुख्य पाप का अन्त करने के लिए ज्ञान रूपी प्रकाश में अपनी अन्तर्दृष्टि खोलो और देखो कि रोग क्या है ? उसका आरम्भ और अन्त कैसे होता है ?

प्रश्न—भोजन शयन जागरण में क्या नियम आवश्यक नहीं हैं ?

उत्तर—ठीक समय पर भोजन न लेने का नियम सैकड़ों भोगियों को रोगी बना देता है, वास्तव में जब कड़ी भूख लगे तभी भोजन करना लाभप्रद है।

शयन में नियम का पक्ष लेने से और अलार्म लगाकर उठने के नियम से प्रायः करवटें बदलते रहना होता है और असंयम आलस्य में तन्द्रा में समय नष्ट होता है। जो बुद्धिमान नींद आने पर गहरी नींद में सोता है, वह नींद पूरी होने पर, ठीक समय पर उठ जाता है, उसे नियम व्रत नहीं लेना पड़ता। नियम की जड़ता एक पहरेदार को भी अभ्यासी बना देती है। परन्तु विद्वान साधक में भोजन शयन जागरण सब आवश्यकतानुसार चलता रहता है उसी से नियम की चिन्ता नहीं लादनी पड़ती। वह ठीक ढंग से विधिवत् भूख लगने पर भोजन करता है, स्वास्थ्य—प्रद, पाचक, सात्विक भोजन करता है, समय से सो जाता है, और ठीक समय पर स्वतः ही जाग जाता है।

प्रश्न—बुद्धि का विकास कैसे हो सकता है ?

उत्तर—बुद्धि—विकास के लिए प्रत्येक कर्म के परिणाम का अनुभव नित्य सहायक होता है। जो कुछ करो, उसे पहले समझो, फिर करो, सेवा सन्मान साधना पूजा भजन ध्यान, को प्रथम समझ लो, पुनः उसे पूर्ण करो और फिर उसे बुद्धियुक्त होकर देखो।

प्रश्न–ध्यान में बाधायें कैसे हटाई जा सकती हैं ?

उत्तर–ध्यान में केवल बार–बार दुहराया जाने वाला अभ्यास बाधक है। अभ्यास, अर्थात् आदतों के बदलने में समय लगता है। आदत के अनुसार निरन्तर कुछ न कुछ अनायास ही चलता रहता है, वही ध्यान में बाधक है। ध्यान में कुछ भी नहीं करना है, केवल जो कुछ सामने है, उसे ही, ध्यान से देखना है। ध्यान के द्वार से अन्तर यात्रा होती है। अनेकों द्वार ऐसे हैं जो बाहर ले जाते हैं, ध्यान के द्वारा भीतर लौटना होता है। कुछ करने की आदत बहिर्मुख बनाती है, कुछ न करके, ध्यान से देखने की तत्परता, अन्तर दर्शन का द्वार खोलती है। धन का ध्यान, तन का ध्यान, सुखोपभोग का ध्यान, मान का, अधिकार का ध्यान, दुख का ध्यान, जगत् से, विनाशी से सम्बन्धित होता है। जब हम ध्यान में कुछ नहीं करते, केवल उसे देखते मात्र हैं, जो कि शरीर में, हृदय में, प्राण में, मन में, बुद्धि में, स्वतः हो रहा है– इस प्रकार जिसे भी ध्यान से देखते हैं, उससे भिन्न हो जाते हैं। जो सत्य से परमतत्व से युक्त हैं वह देखते हैं कि प्रकृति में सब कुछ हो रहा है, वे अपने को कर्ता नहीं मानते भगवान का यही संकेत है – 'नैवकिन्चित करो मीति युक्तों मन्येत तत्ववित् । (गीता)

प्रश्न–सन्तों, सद्ग्रन्थों में वर्णित ध्यान की विधियों को आप क्या मानते हैं ?

उत्तर–जो कुछ ध्यान की विधियाँ पढ़ने–सुनने में आती हैं, यह अधिकतर अपनी–अपनी रुचि के अनुसार मान्यतायें हैं, कल्पनायें हैं, मन को किसी रूप से हटाकर किसी काल्पनिक रूप में लगाने की विधियां है। सारी विधियों में कुछ–न–कुछ करना होता है। ध्यान में क्रिया नहीं होती, दर्शन होता है। जहाँ कोई विधि नहीं है, केवल शान्ति है, मौन है, निश्चलता है, वहीं से ध्यान है। पकड़ने में करने में क्रिया है, विधि है। छोड़ने में, न करने में, विधि नहीं है क्रिया नहीं है।

प्रश्न–अनेकों भक्त भगवान के रूप का ध्यान करने वाले क्या ध्यानी नहीं हैं ?

उत्तर–भक्त भगवान के रूप का ध्यान नहीं करता बल्कि जो अभक्त है भावुक है, रूप के रसास्वाद का भोगी है, वह विनाशी रूपों से आसक्ति

हटाने के लिए अविनाशी भगवान के रूप की कल्पना करके बार–बार रूप का चिन्तन, मनन, विचार करता है। भक्त को रूप का ध्यान करना ही नहीं पड़ता वह तो प्रेम की मस्ती में सभी रूपों में अपने प्रभु को ध्यान से देखता है। भक्त में ध्यान की कोई विधि नहीं होती उसे ध्यान मुक्त होने पर सर्वत्र दर्शन होता है।

प्रश्न–बुद्धियोग द्वारा प्रज्ञा की जाग्रति की साधना क्या है ?

उत्तर–कामना को छोड़कर माया और मान को न चाहते हुए प्रीतिपूर्वक प्रभु के प्रेम में तल्लीन रहकर प्रभु के नाते सभी प्राणियों की यथा शक्ति सेवा करते हुए निष्काम रहना और जब कभी सेवा से अवकाश मिले तब शान्त होकर, मौन होकर कुछ न करते हुए, जो कुछ स्वतः हो रहा हो उसे तटस्थ रहकर देखना, अन्त में देखने वाले को देखने की प्रबल अभिलाषा ही प्रज्ञा जागृति की साधना है। जब समय व्यर्थ नष्ट नहीं होता, जब शक्ति तृष्णा की पूर्ति में अपव्यय नहीं होती । जब प्रीति किसी विनाशी देहादिक वस्तुओं से सम्बन्धित नहीं रहती तब बुद्धियोग एवं प्रज्ञा की पूर्णता सुलभ होती है। बुद्धियोगी जगत् की सीमा को एवं संग सम्बन्ध के परिणाम को देखता है और प्रज्ञावान ही आत्मवित होता है। प्रज्ञावान ही अन्तिम पुरुषार्थ सिद्ध कर लेता है। सतोगुण की प्रधानता में श्रद्धा सम्पन्न हृदय से गुरु अनुशासन में कुशल कर्मी, आत्मा का उपासक, प्रज्ञा प्राप्त करता है।

प्रश्न–जगत् में बुरा भला कर्म किसे समझें ?

उत्तर–जो स्वभाव के अनुकूल है वही भला है, जो स्वभाव के प्रतिकूल है वही बुरा है। जो कर्म करते हुए भीतर से अस्वीकार होता है, वही बुरा है। एक आदमी चोरी करता है तब भीतर से अवश्य ही यह ज्ञान रहता है, यह बुरा कार्य है, यही स्वभाव से प्रतिकूल कार्य हुआ, इसी को बुरा कहेंगे। जहाँ चिन्ता है, भय है घबराहट है, वही स्वभाव के प्रतिकूल है, चाहे मन्दिर बनाने का ही कर्म क्यों न हो, वही बुरा है। जिस कर्म में चिन्ता भय खेद पश्चात्ताप ग्लानि न हो वही भला कर्म है, पुण्य कर्म है। जिससे दूसरों का अहित है वही बुरा है और जिससे दूसरों का हित है, वही भला है।

प्रश्न–अपने अधिकार की वस्तु कोई छीन ले तब कैसे सन्तोष किया जाये ?

उत्तर–आप निर्णय कर लो कि जिस वस्तु पर या किसी व्यक्ति पर अपना अधिकार मानते हो, क्या उसे आपने ही बनाया है ? आप उसे सदा रख सकते हो ? उसके साथ सदा रह सकते हो? यदि नहीं, तब समझ लो कि आपके अधिकार की वह वस्तु नहीं है। जिसे आपने बनाया नहीं, जिसे सदा रख सकते नहीं, उसे अपनी वस्तु मानकर मोही लोभी अभिमानी बनना मूढ़ता है, बेईमानी है। किसी वस्तु के मालिक जब तुम नहीं रह सके तब उसे लेने वाला क्या सदा मालिक बना रहेगा ? कदापि नहीं, अतः मालिक बनना ही मूर्खता है।

प्रश्न–अपने हृदय में आत्मा परमात्मा को कैसे देखें ?

उत्तर–भीतर देखने के लिए बाहर देखना बन्द करो। भीतर देखोगे तो परमात्मा नहीं दिखेगा, मोह, लोभ, अभिमान, काम की सीमायें दिखेंगी। चित्ताकाश में अंकित अगणित चित्र दिखेंगे, यदि उन्हें देखकर घबरा कर बाहर लौट आते हो तो परमात्मा का अनुभव कभी नहीं होगा। भीतर, और भीतर हृदयों की परिधि पार करने या पूर्ण शान्त, नीरवता, निरीहता, निसंकल्पता की भूमिका में उसका बोध होगा जो सनातन सत्य है। केवल देखते रहने की साधना साध लो ।

परमात्मा के दर्शन के प्रथम अपना दर्शन करो। अपने देखने के लिए भीतर झांकते ही अपनी कुरूपता का दर्शन होगा। आत्म साक्षात्कार का अर्थ है कि जैसे लोभी, मोही ईर्ष्यालु, द्वेषी, दम्भी, पाखण्डी कामी अभिमानी भीतर हैं वैसे ही अपने को देखते रहें–इस प्रकार से केवल देखते रहने की साधना अपना साक्षात्कार है और अपने को देखने की विधि ही परमात्मा के दर्शन का द्वार तक ले जायेगी ।

प्रश्न–कभी–कभी क्रोध आये तो बचने का क्या उपाय है ?

उत्तर–कभी–कभी क्रोध इसीलिए आता है भीतर निरन्तर यह दरिद्र अहंकार, काम को लोभ को लिए हुए हैं। आप यह न मानिये कि काम, क्रोध, अभिमान, लोभ कभी–कभी आता है ऐसे भ्रम में न बने रहना। जो आपके भीतर काम, क्रोध, अभिमान, अहंकार भरा है वही संग से प्रगट हो जाता है, जिस प्रकार बल्ब तभी जलता है, पंखा तभी चलता है, जब

बिजली तार में दौड़ती रहती है, बटन दबाते ही बल्ब जलने लगता है, पंखा चलने लगता है उसी प्रकार काम, क्रोध भीतर है, अवसर पाते ही प्रगट हो जाता है। जो भीतर न होगा वह कभी प्रगट न होगा ।

प्रश्न–चिन्ता से मुक्ति कैसे मिल सकती है ?

उत्तर–जितना चिन्तायें हैं उनका सम्बन्ध भविष्य से है। जो कुछ तुम अभी आज नहीं कर सकते हो, जो अभी आज नहीं छोड़ सकते हो, जो अभी आज नहीं पा सकते हो, उसी की चिन्ता करते हो। वर्तमान तुम्हारे सामने है इस समय में ही करने में, पाने में, छोड़ने में स्वतन्त्रता है। जो वर्तमान में नहीं सावधान है, वही अन्धकार में कल्पना के चित्र गढ़कर चिन्ता करता है। मूर्ख मनुष्य बीते हुए भूतकाल की स्मृति का बोझ लेकर भविष्य की कल्पना में छलांग मारना चाहता है। तुम भविष्य पर अपना अधिकार न मानकर वर्तमान में आज, अभी जो कुछ है, उसे जानो, देखो और तद्नुसार जो करना चाहिए, उसे पूरा कर दो, तभी चिन्ता से मुक्ति मिलेगी। यदि तुम्हारे सामने सांप, शेर, चोर, डाकू, आ जाये तब कभी नहीं सोचोगे कि कल भागेंगे, कल प्रयत्न करेंगे, उसी समय आप छलांग मारोगे, भागोगे, लेकिन दुःख देने वाली चिन्ता का, ममता, आसक्ति, कामना, हिंसा, चोरी आदि विकारों का त्याग, अभी नहीं, कभी करोगे इसीलिये चिन्ता से मुक्ति नहीं मिलती । चिन्ता के स्थान वर्तमान कर्त्तव्य पूरा करने से और चिन्ता छोड़कर आत्मा परमात्मा का चिन्तन रहने से निश्चिन्तता आती है।

प्रश्न–हम दोषों से भरे मन में सद्गुण कैसे ला सकते हैं?

उत्तर–जिस प्रकार अशुद्ध मलिन दुर्गन्धित पात्र में पवित्र पकवान मिष्ठान नहीं डाला जाता, उसी प्रकार हिंसा घृणा, क्रोध लोभादि से दूषित अन्तःकरण में सद्गुणों का सौन्दर्य नहीं चमक सकता है। भीतर लोभ है, तो उदारता नहीं होगी, भीतर क्रोध है, तो क्षमा नहीं सधेगी। भीतर घृणा है द्वेष है तो प्रीति नहीं बढ़ेगी। वर्तमान में क्रोध चल रहा है, भविष्य में क्षमा की आशा की जा रही है। वर्तमान में हिंसा है, छल है, द्वेष है, पर भविष्य में अहिंसा के लिए, निष्कपट बर्ताव के लिए प्रार्थना की जा रही है। यदि तुम दोषों को धीरे–धीरे छोड़कर भविष्य में सद्गुणी होने की आशा कर रहे हो तो बहुत ही अंधेरे में हो, अतः इसी समय

घृणा, कलह, क्रोध, लोभ, अभिमान, काम, जो भी विकार दिख रहे हो उनसे उछल कर दूर हट जाओ, जैसे साँप को देखकर छलांग मारते हो, तब तो उसी क्षण तुम दोष से पार हो जाओगे। जितना अधिक लोभ मोह, सुखासक्ति आदि दोष प्रबल होते हैं उतना ही छलांग मारने का साहस कम होता है तभी धीरे–धीरे छोड़ने का संकल्प ही जड़ता का परिचय देता है। कैंसर का रोग शरीर को नष्ट करता है पर हिंसा, क्रोध, घृणा, द्वेष तो जीव को ही नष्ट कर रहा है।

प्रश्न–अधिकार का त्याग कैसे किया जाये?

उत्तर–जब निर्णय करके देखोगे तब पता चलेगा कि जिस पर तुम्हारा स्वतन्त्र आधिपत्य नहीं है, जो वस्तु तुम्हारी है ही नहीं, तुमने बनाई नहीं है, तुम्हें कुछ देर के लिए मिली है, जिसे तुम अपनी इच्छानुसार सदा एक ही रूप में रख नहीं सकते हो, जो परिवर्तनशील है, जिसकी उत्पत्ति होती है वृद्धि होती है, ह्रास और विनाश होता है, उस पर तुम्हारा अधिकार है ही नहीं तब अधिकार त्याग की चेष्टा ही व्यर्थ है। अपना अधिकार न होते हुए अधिकार मानना अहंकार की ही मूर्खता है। प्रथम अपना मानने का अभिमान होता है और फिर उसे त्यागने का अभिमान होता है, अहंकार ही राग और त्याग का भोगी बनता है, अतः विवेक द्वारा जान लो कि अपना कुछ है ही नहीं, तब त्याग और दान का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है इस दर्शन में ही शान्ति है।

प्रश्न–स्वाधिकार के अर्थ क्या हैं ?

उत्तर–स्वाधिकार के अर्थ–अपना अधिकार अपने में सुरक्षित हो, उसका सम्बन्ध अन्य से, पर से न हो। जो अपने से भिन्न है, वही पर है, अन्य है, उस पर अधिकार मानना पराधिकार है, वह चोरी है, बेईमानी है। अपने आप में ही रहना, अपने आप में किसी अन्य को न लेना और नहीं अन्य को देना ही स्वाधिकार को सुरक्षित रखना है।

प्रश्न–माता–पिता पत्नी पुत्रादि पर क्या अपना अधिकार नहीं है ?

उत्तर–जिन देहों को तुम माता–पिता पत्नी पुत्रादि भाव से अपना मानते हो उन देहों पर तुम्हारा अधिकार है ही नहीं क्योंकि देह तो जन्मती है, स्वतः बढ़ती है, पुनः फैलती हुई क्षीण होती है, नष्ट हो जाती है, तुम्हारा

किसी देह पर अधिकार नहीं है। जिस देह को तुम कभी 'मैं' कभी 'मेरी' कहते हो, उस पर भी तुम्हारा अधिकार नहीं है तब माने हुए सम्बन्धी जनों की देह पर अधिकार मानना महा मूढ़ता है। स्वयं में जो वस्तुओं का, व्यक्तियों का, सम्बन्ध मान लिया है, अर्थात् उन सबके प्रति मेरापने का भाव भर लिया है उस भाव को मिटा देने, या बनाये रहने का कुछ समय तक मोहवश अधिकार है। स्वतंत्र अधिकार किसी भी उत्पन्न होने वाली वस्तुओं व्यक्तियों पर नहीं है।

प्रश्न–जिन वस्तुओं का हम उपयोग करते हैं उन पर अपना अधिकार क्यों नहीं है ?

उत्तर–जिन वस्तुओं का उपयोग उपभोग सदुपयोग करते हो यह तो अनन्त के विधान में उसकी उदारता है किन्तु अपनी इच्छानुसार किसी को सदैव बनाये रहने का अधिकार नहीं है। आज जिन वस्तुओं का, तथा व्यक्तियों का एवं समय का, शक्ति का उपयोग, उपभोग, सदुपयोग कर रहे हो, उसका कल भी कर सकोगे–यह भी अधिकार नहीं है।

प्रश्न–स्वस्थ आत्मा और अस्वस्थ आत्मा के क्या लक्षण हैं?

उत्तर–जब **'मैं'** नहीं रहता है तभी स्वस्थ आत्मा है और जब 'मैं' कुछ बना हुआ है तभी अस्वस्थ आत्मा है। स्वस्थ आत्मा में केवल 'हूँ' का बोध रहता है 'मैं' नहीं रहता है। यह 'मैं' ही कर्ता भोक्ता बनता है। इस 'मैं' को जहाँ तक कुछ मेरा प्रतीत होता है, वहीं तक इसका विस्तार है। 'मैं' के सामने मेरा कहने का जब कुछ नहीं रहता, तभी यह अति निर्बल होकर शरण में गिर जाता है। 'मेरा' न रहना ही **'मैं'** का भाग छिन जाना है। मेरी वस्तु मेरा परिवार मेरा अधिकार, यही 'मैं' की दीर्घाकार देह हैं। मैं अपने मेरेपन की परिधि में इतना स्थूल काय (मोटा) हो जाता है कि सत्य के शिखर तक पहुँचने में एक–एक सीढ़ी चढ़ना कठिन है। जिस प्रकार शरीर का अंग टूटने से अति क्लेश होता है उसी प्रकार धन से, परिवार से, अधिकार से, अथवा मानी हुई किसी वस्तु व्यक्ति से, सम्बन्ध टूटने पर 'मैं' को कष्ट होता है। देह को खुराक न देने से टूट जाती है, उसी प्रकार 'मैं' को मेरेपने की खुराक न मिलने से 'मैं' टूट जाता है। 'मैं' के टूटने पर स्वस्थ आत्मा शेष रहती है।

प्रश्न–सत्य परमात्मा अभी यहीं निरन्तर है तो दीखता क्यों नहीं ?

उत्तर–जो परमात्मा को देखना चाहता है वही परमात्मा के दर्शन में दीवार बनकर बाधक हो रहा है। जब दर्शन करने वाला ही नहीं रहेगा तब केवल परमात्मा ही सर्वत्र सर्वमय नित्य निरन्तर शेष रह जाता है।

प्रश्न–दर्शन करने वाला तो 'मैं हूँ', जब मैं, न रहूँगा दर्शन का प्रश्न ही कौन उठायेगा ?

उत्तर–तुम दर्शक बनकर अपने को 'हम' कहते हो, 'मैं हूँ' कहते हो, तुम प्रथम अपना ही दर्शन करो, अपने को जानो और देखो कि तुम स्वयं कहाँ हो? क्या हो? क्या तुम देह हो ? जिसे भी तुम देख सकते हो वह तुम हो ही नहीं सकते। क्या तुम मन हो, बुद्धि हो ? क्या तुम सुखी हो दुखी हो? जब दुख–सुख नहीं रहता तब तुम क्या हो ? क्या तुम आत्मा हो परमात्मा हो? जो कुछ तुम्हारे सामने होगा, उसी से तुम भिन्न होते जाओगे । जब कुछ सामने पूछने को नहीं बचेगा तभी एक अनन्त अखण्ड सत्य परमात्मा ही होगा। यह अहंकार, मयकार की सीमा, 'मैं' और 'मेरा' की सीमा ही असीम से, अनन्त से, विलगता का बोध कराती है। 'मैं' और मेरा का संकुचित भाव असीम अनन्त में भँवर के समान प्रतीत होता है, यह भँवर उसी में उठता है, उसी में लीन होता है। 'मैं' की खोज करते हुए पूछते जाओ कि क्या मैं यही हूँ ? उत्तर मिलेगा–यह भी नहीं, यह भी नहीं। जिस प्रकार केले के पत्ते को अथवा प्याज के पर्त को छीलते जाओ तो छिलका हटाते हटाते अन्त में कुछ भी न बचेगा इसी प्रकार प्रश्न के उत्तर में यह भी नहीं, देखते–देखते अन्त में पता चलेगा प्रश्न करने का कुछ सामने रहा ही नहीं और उत्तर में कुछ मिला ही नहीं तब पूछने की वृत्ति निवृत्त हो जायेगी, तब यह 'मैं' भी खो जायेगा, अंत में अनन्त शान्ति ही शेष रहेगी । अनन्त मौन ही शेष रहेगा। अनन्त विस्तार ही शेष रहेगा। उसे ही अनन्त जीवन कहते हें, परमात्मा कहते हैं, उस जीवन का ही अणु–अणु में कण–कण में, सर्वत्र सब में स्पन्दन हो रहा है। एक वृक्ष को देखा, विशाल वृक्ष की पत्ती के अग्रभाग में जो रस है, जो हरियाली है उसी वृक्ष की ऊँचाई के अनुपात से पृथ्वी में जड़ों की गहराई में, जो अन्तिम जड़ की नस है, उसमें उसी का स्पन्दन है, क्षण–क्षण में मनुष्य की नाड़ी की

भाँति प्रत्येक वस्तु में, वृक्ष में, पशु में, प्रकाश में, अन्धकार में, जीवन में प्रवाहित हो रहा है। अनन्त रूपों में एक की ही चेतना है। उस एक का स्पन्दन है। इस प्रकार के बोध से प्रश्न समाप्त हो जाते हैं क्योंकि कोई अन्य नहीं रह जाता। अहंकार नहीं रह जाता, तब मुक्ति पाने का, शान्ति पाने का प्रश्न कौन उठायेगा ? 'मैं' ही बन्धन है, अहंकार ही बोझ है, यह 'मैं' अहंकार ही क्रोधी है, लोभी है, मोही है, यही अशान्त है, यह न रहेगा तो सब समाप्त हो जायेगा।

प्रश्न—जब समस्त विराट विश्व का जीवन एक है तब भेदभाव क्यों है ?

उत्तर—अहंकार के भीतर मेरा पन की सीमा है। जहाँ तक मेरा प्रतीत होता है, वहाँ भेद भाव घृणा द्वेष नहीं है। अहंकार जब मान लेता है यह शरीर मेरा है, तब हाथ, पैर, आँख, कान आदि प्रत्यंगों में भिन्नता होने पर भी सभी के प्रति अपनत्व का भाव है, किन्तु जहाँ प्रेमयुक्त आत्मीयता नहीं है, वहीं भेदभाव है, द्वेष है, घृणा है, संघर्ष है। अहंकार के भँवर ने भेद उत्पन्न कर लिया है।

प्रश्न—भेदभाव का, संघर्ष कलह का, अन्त कैसे हो सकता है ?

उत्तर—जब ज्ञान में अहंकार की सीमा का, असीम अनन्त जीवन से अभिन्नता का बोध होता है, जब समस्त विराट विश्व में एक ही जीवन धारा दिखने लगती है, जब भीतर बाहर एक ही तत्व दिखने लगता है, जब मिट्टी ही देह के रूप में और देह ही मिट्टी के रूप में, अथवा अन्न ही देह और देह ही बाहर मिट्टी बनकर वृक्ष की खाद के रूप दीखने लगती है तब भेद भाव का अन्त होता है। ज्ञान प्रकाश में जो बाहर दीखता है वही सब भीतर दीखता है। जो भीतर होता है वही बाहर होता है। जीवन तो एक अन्तहीन विस्तार है। जिसे तू के रूप में देखते हैं वहाँ भी मैं ही है और मैं के रूप में तू ही है, और तू के पीछे एक ही जीवन सत्ता है।

प्रश्न—इस 'मैं' को अहंकार को किसने बनाया है ?

उत्तर—अज्ञान में भेदभाव से 'मैं' उत्पन्न होता है और 'मेरा है' इस ज्ञान से अहंकार पुष्टित परिवर्धित होता है। यह मैं ही, भिन्न के सम्बन्ध से पुत्र—पुत्री, पति—पत्नी, पिता—माता, शत्रु—मित्र, पापी—पुण्यवान, भोगी—त्यागी,

विरागी–रागी, गृहस्थ–संन्यासी, ज्ञानी–अज्ञानी, शिष्य–गुरु आदि अनेकों रूप नाम स्वीकार कर लेता है। यह 'मैं' अर्थात् यह अहंकार अपनी बनावट के कारण मान्यताओं स्वीकृतियों के कारण ही अशान्त है। यह अहंकार निर्धन होकर अशान्त है, और धनवान होकर भी अशान्त है। यह भीड़ के मध्य में अशान्त है और अकेले बैठकर भी अशान्त है। यह भोग सामग्री की अधिकता से अशान्त है और सब कुछ छोड़कर त्यागी बनकर भी अशान्त है। यह शिष्य बनकर भी अशान्त है और गुरु बनकर भी अशान्त है। यह कोठी भवन बनाकर भी अशान्त है और आश्रम बनाकर भी अशान्त है यह भिखारी बनकर अशान्त है और दाता बनकर भी अशान्त है। गृहस्थ बनकर अशान्त है, संन्यासी बनकर भी अशान्त है। कभी प्रगट रूप में अशान्त है कहीं भीतर ही भीतर अप्रगट रूप से अशान्त है। कभी पुत्र परिवार के पीछे अशान्त है कभी शिष्य सम्प्रदाय को लेकर अशान्त है। जहाँ 'मैं' है अहंकार है, जहाँ मेरा कुछ भी बना है, वहाँ तक अशान्ति से छुटकारा नहीं होता ।

प्रश्न–अज्ञात काल से परिपुष्ट अहंकार मिटाने में कितना समय लगेगा ?

उत्तर–हजारों वर्षों के अन्धकार को हजारों प्रयत्नों से नहीं हटाया जा सकता किन्तु प्रकाश लेकर अभी अन्धकार को खोजने चलो तो जहाँ देखोगे वहीं से अंधकार लुप्त होता जायगा। प्रकाश में अन्धकार कहीं नहीं मिलेगा। उसी प्रकार अहंकार मिटाने के लिए जितने उपाय करोगे, वह सब उपायों के पीछे बना ही रहेगा, किन्तु ज्ञान में अहंकार को देखने लगोगे तब यह भागता ही जायेगा, कहीं मिलेगा ही नहीं। जब तक इस 'मैं' को, अहंकार को, देखा नहीं जाता तभी तक यह रहता है, देखना आरम्भ करते ही यह नहीं होगा ।

प्रश्न–मैं परमात्मा को कैसे पा सकता हूँ ?

उत्तर–मैं के रहते परमात्मा को नहीं पाया जाता 'मैं' के जाते ही परमात्मा वहीं पर उपस्थित मिलता है। कोई साधक साधना के बल पर भक्ति मुक्ति नहीं पा सकता किन्तु जब साधक मिट जाता है तब मुक्ति भक्ति स्वतः सुलभ हो जाती है। जब तक 'मैं' है अहंकार है तब तक

परमात्मा अथवा भक्ति मुक्ति के ऊपर यही आवरण बन रहा है। यह 'मैं' यह अहंकार ही जन्मता है मरता है यही दुख सुखमय होता है। 'मैं' के मिटते ही अनादि अनन्त जीवन है उसी को आत्मा परमात्मा कहते हैं ।

प्रश्न–दृढ़ संकल्पवान के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर–दृढ़ संकल्प उन्हीं का होता है जो विकल्प से रहित होते हैं। जो मनुष्य यह करूँ, या वह करूँ इधर चलूँ या उधर चलूँ जिनका निश्चय निर्णय पूर्ण शक्ति से एक नहीं होता वही विकल्प के कारण दृढ़ संकल्प युक्त नहीं हो पाते। विकल्प से संकल्प शक्ति क्षीण होती है। जब अनेक संकल्प विकल्प नहीं रह जाते उस शान्त चित्त में जो संकल्प रह जाता है वही दृढ़ होता है और वही अनायास पूर्ण होता है।

प्रश्न–नियम पालन से व्रत लेने से क्या संकल्प दृढ़ नहीं होता ?

उत्तर–यथार्थदर्शी विद्वान व्रत नहीं लेता नियम नहीं बाँधता उससे जो होना चाहिए वही होता है नियम पालन से आदत अभ्यास की दृढ़ता आती है। अविवेकी लोग ही नियम बनाते हैं, व्रत लेते हैं। जितनी अधिक बुद्धि में जड़ता होती है उतनी ही नियम निभाने का अभ्यास हो जाता है पर नासमझी नहीं दूर होती।

प्रश्न–नित्य नियम से पूजा पाठ मन्दिर दर्शन देव स्तुति से क्या ज्ञान ध्यान नहीं बढ़ता है ?

उत्तर–सैकड़ों नर नारी नियम से गंगा स्नान करते हुए एक डोलची में पूजा की सामग्री सजाकर नियम से जल फूल चढ़ाते हुए, नियम से मन्दिर में पूजा पाठ परिक्रमा करते हुए वर्षों बिता देते हैं, नियम से माला की संख्या पूरी हो जाती है। नियम से रामनाम की कापी लिखी जाती है। परन्तु ज्ञान ध्यान से वंचित ही बने रहते हैं बुद्धि की जड़ता दूर नहीं होती। नियम से कथा भी सुन ली जाती है, सत्संग भी नित्य नियम से एक घन्टा चलता रहता है परन्तु विवेक नहीं जाग पाता। अधिकतर जड़ बुद्धि वाले ही इस प्रकार के नियम निभाते हुए अहंकार को सन्तुष्ट करते रहते हैं।

प्रश्न–महामाया के मोहपाश से कैसे छूटना होगा ?

उत्तर–अहंकार को अलग कर्ता न मानकर महामाया की शक्ति जानकर अहंकार को, ज्ञान में जाग्रत रहकर देखते हुए, समर्पित अनुभव करने से मोहपाश नष्ट हो जाता है।

महामाया की दया अनुकम्पा से ही जो होना चाहिए वह होता जाता है और जो करना चाहिए वही, साधक जीवात्मा करता जाता है।

प्रश्न–महामाया को कैसे जाना जा सकता है ?

उत्तर–महामाया की शरण होकर उसी की कृपा से उसे जाना जाता है। महामाया ही शक्तिमयी, विज्ञानमयी, गुणमयी, ज्ञानमयी, प्रेममयी, ब्रह्ममयी है, वही सर्वमयी है। वही पुण्यवानों में श्रद्धारूप से प्रकट होकर गुरु से सम्बन्धित बनाती है और पापियों में कलह के रूप में पापों का भोग कराती है। अज्ञान में अहंकार, कर्त्ता भोक्ता बनता है परन्तु अपने पीछे रहने वाली प्रेरक शक्ति को नहीं देख पाता। ज्ञान में अहंकार की क्षुद्रता, मूढ़ता मूर्खता एवं परतन्त्रता को देखकर नित्य सत्य महामाया की शरण का अनुभव करने पर अहं विसर्जित होने पर महामाया की महत्ता का अनुभव होता है।

प्रश्न–महामाया ज्ञानियों के चित्त को क्यों मोह में डाल देती है ?

उत्तर–जो अपने को ज्ञानी मानकर किसी को अज्ञानी समझता है वह अहंकार ही है। अहंकार वहीं तक रहता है जहाँ तक परमात्मा से विमुखता है, इसीलिए अहंकार को मिटाने के लिए ज्ञानी को विमोहित करके दुष्परिणाम भुगताते हुए महामाया सत्य परमात्मा के सन्मुख करती है।

प्रश्न–परमेश्वर की सृष्टि में जब कुछ भी यथार्थ अनावश्यक नहीं है तब अज्ञान मोह की क्या सार्थकता है ?

उत्तर–जहाँ कुछ बातों के यथार्थ ज्ञान से जीवन के अपराध पाप मिटते हैं वहीं पर कुछ ऐसी भी बातें हैं जिनके ज्ञान से भयानक पाप बढ़ते हैं। मान लो किसी को सदाचारी धर्म परायण निष्काम साधु सज्जन मानकर, तुम उस पर पूर्ण विश्वास कर रहे हो और वह लोभ मोह काम के वशीभूत होकर तुम्हारे घर में परिवार में लोभ की, कामना, वासना की पूर्ति करना चाहता है, परन्तु तुम्हें उसका ज्ञान नहीं है। तब तक तुम्हारा मन बहुत ही प्रसन्न है, शान्त है, उसके प्रति ईर्ष्या द्वेष क्रोध हिंसा के विचार नहीं उठते हैं, तब तक तुम उससे सम्बन्धित पुण्य करते हो परन्तु कोई पाप नहीं बनता है, लेकिन महीनों वर्षों पश्चात् अचानक तुम्हें उसकी चोरी का व्यभिचार कामाचार, दुराचार का, ज्ञान हो जाता है तब उसी समय से

तुम्हारे भीतर क्रोध प्रबल हो उठता है और निन्दा घृणा कटुता कठोरता पूर्वक हिंसात्मक प्रयोग करने लगते हो । अचानक जब कभी तुम्हें किसी के अनाचार व्यभिचार दुराचार का ज्ञान होता है तभी तुम्हारे भीतर अशान्ति क्रोधादिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। जब तक ज्ञान नहीं होते तब तक तुम्हारा हृदय शान्ति प्रसन्नता सद्भाव प्रीति से पूर्ण रहता है। तुम स्वयं जब लोभवश, कामवश किसी के साथ छल कपट चोरी व्यभिचार द्वारा अपने मन की पूर्ति का सुख भोगते हो तब यही चाहते हो कि हमारे दोषों का, दुराचार, व्यभिचार का किसी को ज्ञान न हो, इसीलिए अपने दोषों दुर्विकारों का ज्ञान अपने लिए कल्याणकारी है लेकिन दूसरों के दोषों विकारों पापों का अज्ञान कल्याणकारी है। इसके विपरीत अपने पापों का अज्ञान अपने लिए अहितकर है दूसरों के पापों का अज्ञान रहना अपने लिए हितकर है।

दूसरों में सद्गुणों के ज्ञान से और अपने में दोषों पापों के ज्ञान से तुम्हें अपने में सद्गुणों की वृद्धि की और दोषों, पापों के त्याग की प्रेरणा मिलेगी, किन्तु दूसरों में होने वाले सद्गुणों के अज्ञान से और अपने में होने वाले दोषों के अज्ञान से तुम्हारी अधोगति होगी, इसीलिए दूसरों के पापों अपराधों का अज्ञान होना और अपने में सद्गुणों पुण्यों का अज्ञान रहना परमशुभ है, कल्याणकारी है। तुम प्रभु प्रेम से इतने भरपूर हो जाओ कि प्रत्येक प्राणी प्रभु की आत्मा दीखने लगे और प्रत्येक वस्तु सबकी सेवा में लगती रहे।

प्रश्न–दुःख से बचने का क्या उपाय है ?

उत्तर–दुःख से बचने के उपाय अनेकों बताये जाते हैं, विविध वस्तुओं, व्यक्तियों तथा सम्पत्तियों शक्तियों का सहारा लिया जाता है परन्तु जिसका अन्त हो जाता है वह दुख के पार नहीं ले जाता है। दुःख की सीमा के पार जाने का एक मुख्य द्वार ध्यान भी है।

प्रश्न–किसके ध्यान से दुख की सीमा पार किया जा सकता है ?

उत्तर–किसी का ध्यान नहीं करना है प्रत्युत जो कुछ भी दीखता है, प्रतीत होता है, उसी को ध्यान से देखते हुए देखने वाले को देखना है। दुःख की सीमा में ठहर जाना ही दुःख का भोग है और दुःख के भीतर ध्यान से प्रवेश करते जाना ही उसकी सीमा को पार करने की योग साधना है।

कभी तुम कहते हो कि मैं दुखी हूँ, ध्यान से देखने पर कहते हो कि मेरा मन दुखी है, पुनः कहते हो मेरे शरीर में दुःख है, पुनः प्रश्न करने पर कहते हो मेरे पैर में दुःख है, फिर कहते हो पैर के अँगूठे में दुःख है, उस अँगूठे के कष्ट को ध्यान से देखो और जितने गहरे ध्यान से देखोगे उतना ही दुःख की सीमा घटती जायेगी और तुम दुख के भोक्ता न रहकर द्रष्टा रह जाओगे, यहीं पर दुख की सीमा पीछे रह जायेगी। शारीरिक रोग के दुःख को, हानि के, अपमान के, वियोग के, अभाव के दुःख को ध्यान से देखो। सीमा को देख लेना ही असीम में अपने को सुरक्षित पाना हो जाता है।

प्रश्न–आत्मा में असीम शक्ति है उस शक्ति के श्रोत को प्राप्त करने की क्या साधना है ?

उत्तर–तुम्हारे भीतर जितनी गंभीर शान्ति होगी, जितना अधिक चित्त निष्क्रिय होगा, जितना अधिक मन का मौन सधेगा उतनी ही शीघ्रता से मौन के मध्य से ही शक्ति का श्रोत खुल जायेगा। इसके विपरीत जितनी अधीरता होगी, बेचैनी, अशांति होगी, जितना अहंकार प्रबल होगा, और लाभ, हानि, हर्ष, शोक, संयोग वियोगादि द्वन्द्वों का प्रभाव रहेगा उतनी ही शक्ति हीनता बढ़ती जायेगी। सहस्त्रों साधक साधना के अभिमानी बने रहते हैं परन्तु द्वन्द्वों के संघर्ष में चिन्ता में अहंकार की प्रबलता में शक्ति के ह्रास को नहीं देख पाते। जप पूजा पाठ आदि साधना के लिए शक्ति भी किसी दिन नहीं रह जाती, अन्त में अशान्ति का भोग रह जाता है। कर्तापने का अहंकार ही अनन्त शक्ति के मध्य में, एक अति लघुगर्त बन कर सीमित शक्ति का भोगी बना रहता है। अहंकार मिटते ही परमात्मा की शक्ति समस्त क्रियाओं का अटूट श्रोत बन जाती है। तब कर्म होता है पर कर्ता नहीं रह जाता है केवल द्रष्टा, सब कुछ को देखना रहता है।

प्रश्न–संसार में यदि सभी ध्यान योगी निष्क्रिय हो जायें तब संसार का कार्य कैसे चलेगा ?

उत्तर–यह चिन्ता मूढ़ अहंकार की है क्योंकि वह अपने को सब कुछ का कर्ता मानता है। प्रथम तो इस ध्यान योग की चर्चा ही संसार नहीं सुन सकेगा, जो सुनेगा वह निष्क्रिय होने का संकल्प दृढ़ता पूर्वक नहीं करेगा और जो शान्त निष्क्रिय हो जायगा उसके लिए सारा संसार कुछ और ही

तरह का दीखने लगेगा। संसार अनादि प्रवाह है यह किसी के चलाये चलता नहीं और किसी प्रयास से बन्द हो सकता नहीं। यदि कोई साधक निष्क्रिय हो सकेगा तब क्रिया कदापि समाप्त नहीं होगी केवल कर्ता समाप्त होगा ।

प्रश्न–संसार में इतना संघर्ष क्यों है?

उत्तर–संसार में संघर्ष नहीं है समस्त संघर्ष अहंकारों के मध्य में है। अहंकार में जितनी अधिक कठोरता बढ़ती जाती है, उतनी ही असुविधा एवं संघर्ष बढ़ता जाता है, संसार के धर्मोपदेशक सन्त महात्मा गुरुजन मिलकर अहंकार को मिटा नहीं पाते इसीलिए संसार के संघर्ष समाप्त हो नहीं सकते। कोई साधक स्वयं अहंकार की सीमा को जब देख लेता है तब वह संघर्ष से मुक्त हो जाता है। अहंकार को ही लालच है तथा भय है जहाँ कहीं लालच लोभ है और भय है वहीं संघर्ष है। जहाँ प्रेम है, वहां लोभ नहीं भय नहीं ।

प्रश्न–सत्यमय शिवमय होने की सुगम साधना क्या है ?

उत्तर–आप कुछ होने के लिए कदापि न सोचें, कल कुछ बनने की भावना नहीं बनायें। अभी आज क्या है, उसे देखें, अभी जो है उसे ही जानें। अभी आप तन से मिलकर, आँख कान आदि इन्द्रियों से मिलकर मन से मिलकर, बुद्धि से, विचारों से मिलकर, सम्बन्धियों से मिलकर जो कुछ अपने को पा रहे हैं, उसे देखेंगे तो उसी समय जो कुछ असत् के, जड़ के, अनित्य के संग से, बन रहे हैं, वह दूर हटने लगेगा। जो यथार्थ है, श्रेष्ठ है, सुन्दर है, पवित्र है, वह प्रगट होने लगेगा। कुरूपता, निकृष्टता बाहर होने लगेगी, सत्य शिव निकटता निकटतम होने लगेगा। पुनः आपको भविष्य में कुछ होने का श्रम न करना होगा, जो कुछ वास्तव में आप हैं वह स्पष्ट होगा। जितनी सजगता से आप देखने में तत्काल तत्पर रहेंगे उतनी शीघ्रता से सत्य के निकट अपने को पा सकेंगे। यदि आपने यह सुनकर, या पढ़कर, ठीक समझकर भविष्य के लिए टाल दिया तब तो फिर जैसे के तैसे ही बने रहेंगे, प्रश्न भी इसी प्रकार चलते रहेंगे। अतः कभी नहीं, अभी इसी क्षण देखना है। यह जो वर्तमान क्षण है इसी के साथ शाश्वत् है, सत्य है इसी को इसी समय देखो।

प्रश्न–हम जो चाहते हैं वह क्यों नहीं कर पाते ?

उत्तर–आप जो नहीं कर पाते उसे चाहते ही नहीं । जो करते हैं उसे ही चाहते हैं । जो नहीं करना है उसे ही कल करने की, या फिर कभी करने की सोचते हैं। जो करना श्रेष्ठ है, प्रिय है, उसे अभी इसी क्षण करो, जो नहीं करना है उसे फिर कभी के लिए छोड़ दो।

कोई कामी कामना की पूर्ति चाहता है, लोभी धन चाहता है मोही अपने स्नेहपात्र को देखना चाहता है, तो उसे भविष्य में नहीं टालता। उसी क्षण अपनी पूर्ति चाहता है, उसी प्रकार आप अभी इसी क्षण और प्रतिक्षण जो हैं उसे देखते चलें, इस देखने को कल के लिये नहीं टाल दें। यदि आप बीते हुए भूतकाल की याद को और भविष्य की कल्पनाओं योजनाओं को अपने ऊपर से उतार दें तो जो कुछ सत्य है वह स्पष्ट हो जायेगा ।

आपके सामने जो कुछ दृश्य आ जाये, जो कुछ देखें या सुनें, बोलें, हँसे, चलते जायें, रुक जायें तभी देखें कि आपके भीतर क्या प्रभाव पड़ रहा है। आप हर्ष को देखें, उदासीनता खिन्नता को देखें, भय को देखें, लालच को देखें, जो कुछ उस क्षण आपसे भीतर चाहना हो, उसे देखें, बस देखते रहें। सावधान रहना! देखते हुए पूर्व संस्कार के अनुसार यदि किसी का आप विरोध करने लगेंगे तब सही रूप में द्रष्टा न रह जायेंगे। आपने प्रथम से ही कुछ बुरा मान लिया है, पाप मान लिया है, तब आप उसे देखने से घृणा करेंगे, देखना ही न चाहेंगे क्योंकि आपने प्रथम से ही प्रतिकूल या अनुकूल धारणा बना ली है अतः निष्पक्ष दृष्टि के बिना दर्शन नहीं होता, तब जो है वह दीखता नहीं ।

प्रश्न–काम, क्रोध, लोभ को पाप नरक का द्वार जानते हुए भी इनसे नहीं छूट पाते सो क्यों ?

उत्तर–आप काम, क्रोधादि को, पाप एवं नरक का द्वार केवल सुनकर या कहीं पढ़कर मान रहे हैं, परन्तु स्वयं देखा नहीं है। यदि मानकर देखने जानने का अभिमान करेंगे तो कभी इनसे मुक्ति नहीं मिलेगी, आप काम क्रोध के त्याग का संकल्प करेंगे, व्रत लेंगे, परन्तु यह आपके भीतर समयानुसार चलते ही रहेंगे। आप काम क्रोधादि को पाप मानकर अपने को कामी क्रोधी, मानकर भाग्य को न कोसते रहिये प्रत्युत जब काम हो, क्रोध हो तब उसी क्षण उसे देखिये मन की सतह में केवल देखिये, उस समय

क्रोधावेग में दूसरे को न देखिये दूसरे पर आक्रमण न कीजिए, कुछ भी न करिये, केवल क्रोध को देखिये क्यों हो रहा है, कहाँ हो रहा है, यह देखते ही आप उससे अपने को भिन्न पायेंगे। धैर्य के साथ क्रोध को काम को लोभ को देखते रहिये तभी उन्हें जान पायेंगे और जानते ही आपको विचित्र अनुभूति होगी। अज्ञान में ही काम क्रोधादि को आश्रय मिलता है, जानने देखने पर इनका लोप हो जाता है।

प्रश्न–**हमें अनेकों बार क्रोध आया है तब हम कैसे नहीं जानते?**

उत्तर–आपने क्रोध को जब ध्यान से देखा ही नहीं तब क्रोध को जानेंगे कैसे ? जब आपने क्रोध किया है तब आपका ध्यान वहाँ चला गया है जहाँ क्रोध नहीं है और जब ध्यान वहाँ लौटा है जहाँ क्रोध जाग्रत हुआ था तब क्रोध शान्त हो गया है, इसीलिए आप क्रोध को नहीं जान पाये क्योंकि क्रोध और ध्यान का संयोग हुआ ही नहीं। जिसे आप ध्यान से देखेंगे उसे ही जान पायेंगे। अपनी हानि पर अपमान पर प्रतिकूलता पर जब क्रोध जागता है तब आप ध्यान से देखना भूल जाते हैं और हानि पहुँचाने वाले को देखते, समझते हुए उससे भिड़ते हैं। जब क्रोध का वेग शान्त हो जाता है तब क्रोध को याद करते हैं पश्चात्ताप करते हैं और भविष्य में क्रोध न करने की योजना बनाते हैं, व्रत लेते हैं परन्तु पुनः क्रोध आता है। तब ध्यान से देखना भूल जाते हैं। जो क्रोध को ध्यान से देखता है वह उसी भाँति क्रोध की सीमा से भाग निकलता है जिस प्रकार जलती हुई आग को देखकर कोई बच निकलता है और यह जानकर कि यह आग मेरे ही द्वारा लगी है – वह किसी अन्य से नहीं झगड़ता । आप क्रोधावेग को ध्यान से देखिये बाहर न झाँकिये। क्रोध को देखते ही क्रोधी न रह जायेंगे ।

प्रश्न–**किसी पापी अन्यायी को दण्ड देने के लिए भी क्रोध बुरा है ?**

उत्तर–किसी पापी को दण्ड देने के लिए जब क्रोध अपने भीतर जागता है तब तो हम अपने को ही दण्डित करते हैं। आग पहले उसी स्थान को जलाती है जहाँ से आरम्भ होती है। आपको जब कोई गाली

देता है तब वह पाप करता है परन्तु क्रोधित आप होते हैं, तब तो गाली देता है कोई दूसरा और क्रोध से जलते हुए दण्ड भोगते हैं आप—यह बहुत ही विचित्र घटना है।

वास्तव में वही साधना सम्पन्न साधु पुरुष है जो क्रोध आने पर उसे धन्यवाद दे जिसके संग से आपके भीतर क्रोध जागा है। उसने आपको आत्म निरीक्षण का अवसर दिया है। आप उसे धन्यवाद देकर एकाकी होकर किसी कमरे में अपने को बन्द करके भीतर देखें, गहरे उतर कर देखें, क्या हो रहा है? कैसी जलन है, कैसा सन्ताप है! बहुत ध्यान से देखें कि अन्त में क्या होता है। दूसरे को दण्ड देने की बात आगे के लिए छोड़ दें। क्रोध में प्राणी पागल हो जाता है। पागल आदमी को दूसरे लोग तो पागल समझते हैं परन्तु पागल आदमी कभी अपने को पागल नहीं मानता। वही होश में होता है जो अपने पागलपन को जान लेता है।

प्रश्न—लोभ मोहादि विकार इतनी कठिनता से हमें पकड़े हुए हैं, इन्हें कैसे छोड़ें ?

उत्तर—लोभ मोहादि जो कुछ आपको पकड़े हुए हैं उन्हें छोड़ने का प्रयत्न आप न करें केवल उन्हें देखें ध्यान से देखें, उनकी पकड़ को देखें। देखने से ही मुक्ति का द्वार मिल जायेगा। जो कुछ सत्य है, या असत है, उसे ज्ञान में ध्यान से देखते रहें।

प्रश्न—किसी की प्रसिद्धि देखकर वैसा होने का लोभ क्या बुरा है ?

उत्तर—लोभ बुरा नहीं होता जो बुरा होता है उसी में लोभ बढ़ता है, इसीलिए उसे ध्यान से देखो जहाँ से लोभ उत्पन्न होता है। अधिक प्रसिद्धि से जितने पतन का भय होता है उतना अन्य किसी स्थान से नहीं होता। हजारों नासमझ अज्ञानी किसी को बहुत श्रेष्ठ महान मानते हुए यदि उसकी पूजा वन्दना करते हैं और आप उसी भाँति प्रसिद्धि के लोभी हैं तो अपने भीतर दरिद्र हैं, उसे देखिये। प्रसिद्धि की कामना जीवन को ज्वर की भाँति तपाती है क्षीण करती है।

प्रश्न—शान्त होने के लिए किसका सहारा लें।

उत्तर—जिसका भी सहारा लेंगे उसी से अशान्त होंगे, अतः सभी सहारों से निराश होकर स्वयं को देखें तब तत्काल शान्त हो जायेंगे।

प्रश्न–भारत जगत्–गुरू क्यों माना जाता है ?

उत्तर–भारत के अध्यात्म–विज्ञान–वेत्ता, तत्ववित्, आत्मवित् अथवा ब्रह्मविद् ऋषियों में इतनी गुरुता थी कि सारे जगत् के विद्वान, धनवान, बलवान, लघुता से पीड़ित होकर गुरुता प्राप्ति की प्रेरणा, उन ऋषियों से प्राप्त करते थे, परन्तु वही भारत देश आज दूसरे देशों के भोगैश्वर्य एवं फैशन में आगे बढ़ते हुए जगद्गुरु बनने में पीछे नहीं रहना चाहता। भारत के आध्यात्मिक ज्ञान विज्ञान से तृप्त सन्तुष्ट स्वस्थ मनीषी जन अपने गरूवैपन के कारण जगद्गुरु माने गये हैं लेकिन इस समय तो भौतिक ज्ञान विज्ञान में तुष्टि सन्तुष्टि खोजने वाले विद्वान तो जगद्गुरू न रहकर जगद्दास बन रहे हैं यही मस्तिष्क की विक्षिप्तता है।

प्रश्न–विद्वानों को आप विक्षिप्त पागल क्यों कहते हो ?

उत्तर–जो विद्वान, विज्ञानवेत्ता अपनी सीमा निर्माण के लिये दूसरों को मिटाना चाहता है, अपना घर बनाने के लिए दूसरों का घर तोड़ना चाहता है, वह विक्षिप्त है। उसका मन पागल है। स्वस्थ मन सृजन करना चाहता है किन्तु पागल मन दुखी होकर तोड़ने में, मिटाने में तत्पर होता है।

प्रश्न–सनातन धर्म को जानने के लिए सर्वोत्तम पुस्तक कौन–सी है ?

उत्तर–यदि बुद्धि में अध्ययन की योग्यता हो तो सबसे उत्तम पुस्तक यह प्रकृति ही है। जो कुछ भी पृथ्वी आकाश के मध्य में दीख रहा है, प्रकाशित हो रहा है, सभी में सनातन धर्म की व्याख्या अंकित है। एक खद्योत के तुच्छ प्रकाश में उतना ही सनातन धर्म है जितना महान सूर्य में है। मिट्टी के लघुतम कण से विशाल पर्वत तक सनातन धर्म देखने को मिलता है। कीट पतंग, चींटी, हाथी, हिरन, सिंह आदि पशु, बया, तोता, मोर आदि पक्षी, सभी जीव जन्तु, समस्त वनस्पति एवं खनिज पदार्थों में जो भी गुण हैं अथवा वस्तुओं का जो भी स्वभाव है, वह सनातन धर्म को व्यक्त कर रहा है। हम सबकी देह में कर्मेन्द्रियां ज्ञानेन्द्रियां मन बुद्धि चित्त अहंकार में सनातन धर्म निहित है। अज्ञानवश प्राणी सनातन धर्म का भोगी बन रहा है। धर्म का दर्शन तो कोई विवेकवती बुद्धि द्वारा ही कर पाता है। मनुष्य की बनाई हुई पुस्तक में सनातन धर्म की अनेकों व्याख्या हो सकती हैं पर प्रकृति में सदा से सनातनधर्म ज्यों का त्यों दर्शित हो रहा है। किसी

मनुष्य के बनाये बिना, प्रत्येक वस्तु में जो गुण स्वभाव रंग रूप विद्यमान है वह सनातन धर्म है।

प्रश्न—अनेकों धर्माभिमानियों में यथार्थ धर्मज्ञ कैसे पहिचाने ?

उत्तर—सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्म वेद जाजले ।। (महाभारत)

उसे ही यथार्थ धर्म को जानने वाला समझो जो कर्म से मन से वाणी से सबका हित करने में लगा है और जो सभी का नित्य स्नेही है। जिसे सब चाहते हों, जो किसी से कुछ न चाहता हो।

जिस प्रकार कमल, किसी सरोवर के कीचड़ से सम्बन्धित रहकर निर्लिप्त खिला रहता है उसी प्रकार असंग रहकर जीवन में जो शान्त प्रसन्न रहता है उसे ही धर्मज्ञ समझो।

जो समस्त भयों से मुक्त रहकर सत्य परमात्मा में ही निर्भर है उसे धर्मज्ञ समझना ।

जो दूसरों का हित सोचते हुए निरासक्त रहकर शोक मोह भय से रहित स्वस्थ शान्त रहता है उसे ही धर्मज्ञ कह सकते हो।

निर्ममो निरहंकारो निराशीः सर्वतः समः।
अकाम भूत इत्येव सतां धर्मः सनातनः ।।

जो ममता रहित, अहंकार का द्रष्टा, आशा रहित, सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाला निष्काम है उसे सनातन धर्म का ज्ञाता जानो।

जो दीर्घायु है, शूरवीर है, पण्डित है, सुख सुविधाओं से सम्पन्न है, रोग से रहित है, सुन्दर रूपवान होने के साथ ही सद्‌गुण शील से सज्जित है उसे पूर्व जन्म से ही धर्म परायण समझो ।

प्रश्न—धर्मनिष्ठ जन क्या धनहीन, कुरूप नहीं होते ?

उत्तर—एक दो सुलक्षण मात्र पूर्व धर्मात्मा की, या एक दो कुलक्षण पूर्व अधर्मी की पहिचान नहीं है।

जो समाज में निन्दित है, दरिद्र अर्थात् अन्न वस्त्र के अभाव से पीड़ित है, कुरूप है, रोगी है, मूर्ख है, आलसी है, क्रोधी, ईर्ष्यालु, घृणित है उसने पूर्व जन्म में धर्म का आचरण नहीं किया।

यदि कोई इस जन्म में धर्मपरायण होते हुए भी धनहीन अथवा कुरूप है तब तो मानना होगा कि उस पर या तो प्रभु की कृपा है—उसे प्रभु पूर्ण परमार्थी बनाना चाहते हैं या फिर धर्माचरण की पूर्णता में कोई कमी रह गई है।

प्रश्न—सभी से मित्रता रखने सर्वप्रिय होने की क्या साधना है ?

उत्तर—क्रोधी पर क्रोध न करो। जो अपने से न बोले उससे आवश्यकतानुसार स्वयं बोलो। जो तुम्हारे प्रति अपराध करे उसे क्षमा कर दो। तुमसे अपराध बन जाये तो क्षमा माँग लो। वाद—विवाद में चुप हो जाओ। किसी को कटु शब्दों द्वारा या आघात द्वारा अपमान न करो, किसी की निन्दा न करो। एकान्त में शान्त होकर शत्रुता रखने वाले का ध्यान करते हुए उसके प्रति अच्छे भाव, उच्च विचार दुहराओ।

प्रश्न—धर्मात्मा जनों पर अधर्मी जन शासन क्यों करते हैं ?

उत्तर—जिसका आश्रय नित्य अविनाशी सत्य परमात्मा ही आश्रय है वही धर्मयुक्त है, जो जगत् से समाज से, अथवा अन्य से कुछ नहीं चाहता लेकिन जिसे जगत् अथवा समाज चाहता है जो सभी के हित में रत है वही धर्मपरायण है, उस पर कोई शासन कर ही नहीं सकता। क्योंकि शासन के द्वारा जो कुछ लिया जाता है वह धर्मपरायण पुरुष अपने अधिकार में रखता ही नहीं। अधर्मी की पहुँच विनाशी वस्तुओं तक ही होती है, अधर्मीजन तृष्णा वासना कामना के वशीभूत होकर बलपूर्वक धन, मान भोग सुख ही चाहते हैं अतः इनकी गति धर्मनिष्ठ पुरुष के धन तक, अधिकार तक तथा भोग सामग्री तक ही हो सकती है, धर्मात्मा तक अधर्मी जन पहुँच ही नहीं पाते इसीलिए निर्लोभी निर्मोही, निरभिमानी, नित्य सत्य आत्मा के प्रेमी धर्मात्मा जन सदा निर्भय निश्चित शान्त स्वस्थ आत्मस्थ होकर कर्त्तव्य का पालन करते हैं वह किसी अधर्मी के द्वारा शासित नहीं होते।

प्रश्न—स्वयं के बोध की साधना क्या है ?

उत्तर—स्वयं का बोध तभी होता है जब चेतना के अतिरिक्त जानने को कुछ नहीं रहता। जहाँ तक किसी अन्य के विषय में जानने की अभीप्सा है वहां तक समाधि नहीं होती। यदि चित्त बाह्य दृश्य से मुक्त होता है तब स्वयं में ही शान्त होता है। शून्य होते ही स्वयं में प्रवेश होता है। स्व से बढ़कर कुछ भी नहीं है। शान्त, पूर्ण मौन होने पर स्वयं का बोध होता है।

प्रश्न–जो नित्य निरन्तर सत्य है उसका बोध क्यों नही होता ?

उत्तर–जब हम कुछ नहीं करते हैं तब उस सत का बोध होता है जो नित्य निरन्तर है। जहाँ विचार समाप्त होते हैं वहीं दर्शन का द्वार खुलता है। विचारों के आदि मध्य में और अन्त में केवल परमाश्रय सत् परमात्मा ही है।

अहंयुक्त चेतन अथवा ज्ञान, जीवात्मा है। अहं से मुक्त चेतन, ज्ञान स्वरूप परमात्मा है। जब तक कुछ करना है, कोई चाह है कोई हलचल है तब तक नित्य सत्य का बोध नहीं होता।

प्रश्न–पूर्ण स्वतन्त्र कौन है ?

उत्तर–जो किसी के बन्धन में नहीं और जो किसी को बांधता नहीं वही स्वतन्त्र है। जो नित्य जीवन को जान लेता है वही स्वतन्त्र होता है मनुष्य के भीतर जो जीवन है वह शाश्वत् अमृतत्व से नित्य युक्त है। मनुष्य के भीतर जो आनन्द है, वह पूर्ण सच्चिदानन्द की प्रत्यक्ष तरंग है। जीवन के तथा आनन्द के बोध से स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।

प्रश्न–संन्यास कैसे पूर्ण होता है ?

उत्तर–परमात्मा के योगानुभूति अथवा दर्शन के लिए सभी सुखों का त्याग होने पर संन्यास पूर्ण होता है। केवल ईश्वर के लिए जीने वाला संन्यासी है जिसके मन में संकल्प शान्त हो गये हैं वही संन्यासी है। केवल अग्नि न छूने वाला, पैसा न छूने वाला संन्यासी बाहर से तो होता है पर भीतर से रागी रह सकता है। जो राग द्वेष कामना अहंता ममता से रहित हो जाता है वही संन्यासी है।

संन्यासी वही है जिसमें निन्दा, क्रोध, कृपणता अनुरोध विरोध प्रिय अप्रिय से उदासीनता है, जो अनाश्रित है, संयोजनों में मुक्त है। जो उपाधि से दूर रहता है, महत्वाकांक्षा से रहित है, जिसमें शिष्य बनाने, मान एवं उच्च सिंहासन पाने की तृष्णा नहीं है वही संन्यासी है। जो मन से, तन से, वाणी से, हिंसा नहीं करता, जो अतीत की स्मृति भविष्य की चिन्ता से चित्त को बचाता रहता है जिसकी प्रज्ञा जाग्रत है वही परिव्राजक संन्यासी है।

प्रश्न–बुद्धि में स्थिरता कैसे आ सकती है ?

उत्तर–जब प्रत्येक परिस्थिति में संतोष रहेगा, किसी वस्तु की कामना नहीं रहेगी, राग–द्वेष मिट जायेगा, विषमता, चंचलता, असहिष्णुता, तृष्णा मिट जायेगी, इन्द्रियाँ वश में रहेंगी तब बुद्धि स्थिर हो जायेगी ।

प्रश्न–मनुष्य युद्ध से डरता है फिर युद्ध में क्यों प्रवृत्त होता है ?

उत्तर–मनुष्य इसीलिए लड़ता है युद्ध करता है क्योंकि डरता है भयातुर रहता है। भय के कारण ही संसार में युद्ध चलते रहते हैं।

प्रश्न–भय मिटाने का क्या उपाय है ?

उत्तर–जब तक कुछ पाने का और मिले हुए को बचाने का लालच है तब तक भय नहीं मिट सकता। दुनियां के सारे प्राणी परस्पर एक दूसरे से जहाँ तक भयभीत हैं वहाँ तक एक मात्र लोभ लालच के ही कारण हैं।

प्रश्न–क्या लोभ रहित होना सम्भव है?

उत्तर–किसी कारण से जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी होता है। अज्ञान में लोभ उत्पन्न होता है, ज्ञान में देखने पर प्रत्येक लाभ का अन्त दीखने लगता है।

अज्ञान में लाभ का लोभी मनुष्य भोगी बनता है भोगी का समयानुसार तन भी रोगी होता है क्योंकि मन तो पहले से ही रोगी रहता है। ज्ञान में जगा हुआ मानव लाभ का भोगी न रहकर दानी होता है और प्रेम योग द्वारा दान करते हुए निरभिमानी होता है, निष्कामी होता है। निरभिमानी और निष्कामी प्रेम पूर्ण होने पर लोभ से मुक्त हो पाता है।

प्रश्न–भगवान राम एवं भगवान कृष्ण पूर्ण ज्ञान स्वरूप प्रेम स्वरूप कहे जाते हैं फिर भी युद्ध में क्यों तत्पर हुए ?

उत्तर–भगवान राम भगवान कृष्ण के भीतर धन को तथा सुखोपभोग को एवं सनमान को अथवा पदाधिकार को, न बचाने का लोभ न पाने का लोभ था। भगवान के तीन ही मुख्य उद्देश्य होते हैं–प्रथम धर्म की संस्थापना, दूसरा साधुजनों की रक्षा, तीसरा कार्य दुष्टों का नाश–इन्हीं तीनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, पशुता दानवता असुरता के दमन के लिए, युद्ध अनिवार्य हो जाता है इसीलिये भगवान अपने महान ऐश्वर्य का उपयोग करते हैं।

प्रश्न–भगवान अपने अगाध प्रेम द्वारा सबको अभय दान क्यों नहीं देते ?

उत्तर–भगवान उसे ही अभयदान देते हैं जो भयातुर होकर अभय से छूटने के लिए शरणाश्रय लेता है। जो अहंकार से विमूढ़ होकर भगवान को ही भय दिखाता है वह तो भगवान पर अधिकार प्राप्त करना चाहता है इसीलिए ऐश्वर्य शक्ति द्वारा उसके अहंकार को नष्ट करना भगवान का कल्याणकारी कृत्य है।

प्रश्न–कीर्तन भगवद् नाम जप पाठादि से भय मिटता है या नहीं ?

उत्तर–यदि कीर्तन हरि नाम जप अथवा दुर्गा चालीसा, हनुमान चालीसा आदि के पाठ से लोभ मिट जाता है तब भय भी मिट जाता है, लाखों जन पढ़ सुनकर देखा देखी हरिनाम कीर्तन जप पूजा पाठ करने वालों का लोभ तो बना ही रहता है तब भय भी बना ही रहता है। एक अज्ञानी बालक भी भूत प्रेत की कल्पना से हनुमान जी का नाम लेकर निर्भय होना चाहता है परन्तु भय का कारण लोभ तो मन में भरा है, इसीलिये मन में भय बना ही रहता है।

प्रश्न–जिनके पास गनें हैं, एटम बम हैं, धनपति हैं क्या वे निर्भय नहीं हैं ?

उत्तर–जो भय से घिरे हैं वही गन एटम बम रखते हैं, वही सर्वोपरि पदाधिकार चाहते हैं, वही अहंकार की रक्षा के लिये विनाशी शक्तियों का सहारा लेते हैं ऐसे लोग कभी अभय नहीं हो सकते हैं।

प्रश्न–क्या कोई पूर्ण रूप से भय रहित हो सकता है?

उत्तर–जो कुछ भी नहीं चाहता वही भय रहित हो सकता है।

प्रश्न–शरीर रहते कुछ न चाहना कैसे सम्भव हो सकता है ?

उत्तर–शरीर के रहते–रहते केवल अविनाशी आत्मा को ही सर्वस्व जान लेने से संसार से कुछ चाहने की कामना नहीं रह जाती, केवल आत्मा में ही प्रीति होने से आत्मा में ही सन्तुष्ट एवं तृप्त रहने से विनाशी के संयोग की चाह नहीं रहती लोभ नहीं रहता।

प्रश्न–सृष्टि के रचयिता ने जीव के साथ भय क्यों लगा दिया है?

उत्तर–यदि आपसे पूछा जाये कि सूर्य ने जीवों के साथ अन्धकार क्यों बना दिया है? तो समझना होगा कि सूर्य ने अन्धकार नहीं बनाया। सूर्य ने अन्धकार कभी देखा ही नहीं । सूर्य के सामने अन्धकार का कभी अस्तित्व ही नहीं है, वास्तव में सूर्य से विमुख होने में ही अन्धकार है। प्रकाश में न होना ही अन्धकार में होना है। उसी प्रकार सत्य से, अविनाशी से, अथवा प्रेम से विमुख रहने तक ही असत का, विनाशी का भय का प्रभाव है। प्रकाश में दृष्टि खुलते ही अन्धकार का अभाव है प्रेम से जागते ही भय का अभाव है । जहाँ तक प्रेम है वहाँ तक भय का प्रवेश नहीं है। प्रेम से विमुख रहने तक ही भय है। जिस हृदय में भरपूर प्रेम है वही भय रहित है।

प्रश्न–धुरन्धर विद्वान पण्डित संन्यासी धर्मोपदेशक सभी क्यों भय ग्रसित हैं?

उत्तर–शिक्षित विद्वान पण्डित संन्यासी धर्मोपदेशकों को प्रायः शिक्षा के आरम्भ से ही भय दिखाया गया है लोभ बढ़ाया गया है उन्हें प्रेम नहीं पढ़ाया गया है इसीलिए सभी भय से घिरे हैं। जो प्रेम से जाग्रत हो गये हैं वही भय रहित हैं। लोभ के रहते कोई महान पण्डित विद्वान संन्यासी त्यागी तपस्वी धर्मोपदेशक भय से मुक्त नहीं हो पाता।

प्रश्न–भय को मिटाने के लिए भगवान से प्रार्थना सहायक है या नहीं ?

उत्तर–प्रार्थना बहुत की जा रही है कभी–कभी ऐसा आभास होता है कि भय मिट गया है। परन्तु नये–नये भय उत्पन्न होता रहते हैं इसीलिए केवल प्रार्थना पूजा मात्र नहीं प्रत्युत भगवान के प्रति प्रेम पूर्ण होना आवश्यक है।

प्रश्न–भगवान से प्रेम करने वाले लाखों भक्त भी क्या भयातुर नहीं होते ?

उत्तर–जो भक्त भयातुर होते हैं वह भगवान से प्रेम नहीं करते, वह भगवान से जो कुछ चाहते हैं उसी से प्रेम करते हैं। भगवान को चाहने वाले प्रेमी भक्त बिरले ही सुनने में आते हैं पर भगवान से चाहने

वाले लोभी मोही अभिमानी पुजारी सहस्त्रों लोग देखने में आते हैं। जो केवल भगवान के प्रेम को अपने में जगा लेता है प्रेम के द्वारा अन्य कुछ भी नहीं चाहता वही अभय होकर भक्त होता है।

प्रश्न–हम भगवान से प्रेम करना चाहते हैं परन्तु होता क्यों नहीं ?

उत्तर–प्रायः श्रोता सज्जन भगवान के विषय में सुन–सुनकर या पढ़कर प्रेम करना चाहते हैं, वास्तव में भगवान से प्रेम नहीं करना है, प्रत्युत अपने में छिपे हुए प्रेम को जानना और जगा लेना है। प्रायः लोभी, मोही, कामी, अभिमानी, अहंकारी ही लोभवश प्रेम करने की शिक्षा देते हैं किन्तु जो प्रेम से भरे हुए हैं वे ही प्रेम को अपने भीतर जगाने की शिक्षा देकर साधना बताते हैं। आप भगवान से प्रेम करने की चेष्टा न करके अपने भीतर प्रेम को खोदिये उसे निरावरण कीजिये साधना साधिये ।

प्रश्न–संसार के सन्त महात्माओं ने क्या परम प्रभु से प्रेम नहीं किया?

उत्तर–देखने से ही ज्ञात होगा कि जगत् प्रसिद्ध सन्त महात्माओं ने प्रेम किया नहीं किया, उन्होंने प्रभु के आदेश निर्देश उपदेश समझकर अपने में ही प्रेम को पूर्ण किया है।

प्रश्न–जगत् में सभी सन्त महात्माओं ने परमप्रभु से प्रेम करके ही तो भक्ति पाई है ?

उत्तर–ज्ञान दृष्टि से देखने वाले ही देख सके हैं कि जगत् के प्रसिद्ध सन्त महात्माओं ने प्रेम किया नहीं प्रत्युत प्रभु के नाम तथा ज्ञान एवं ध्यान के द्वारा अपने में प्रेम को जगाया है निरावरण बनाया है।

प्रश्न–प्रेम को जगाने विकसित करने का क्या उपाय है ?

उत्तर–प्रेम को विकसित करना चाहते हो तो प्रेम की याचना छोड़कर प्रेम को देते रहने का नियम बना लो और प्रेम के बदले में कुछ न चाहो, कोई अपेक्षा न रखो। प्रेम का भिखारी भोगी बना रहता है और प्रेम का दानी प्रेम योगी हो जाता है। प्रेम का भोगी अस्थिर सुख की दासता में बँधता है और प्रेम का योगी स्वयं सत्यानन्द का अनुभव करता है। प्रेम के भोगी को भोग का अन्त देखना होता है। प्रेम के दान से प्रेम का योग

अनन्त होता है। निष्काम एवं निरपेक्ष होकर प्रेम का दान करते रहने वाले ही जगत् में महान सन्त महात्मा पद में प्रतिष्ठित हुए हैं। प्रेम के दानी कुछ माँगते नहीं वे तो प्रेम स्वीकार करने वाले का अपने ऊपर अनुग्रह समझकर कृतज्ञता स्वीकार करते हैं, धन्यवाद देते हैं वे प्रेम के दानी एवं अभिमानी भी नहीं बनते, निरन्तर प्रेम से भरपूर खिले रहते हैं ।

प्रश्न–कोई माता या पतिव्रता पत्नी प्रेम का दान करते हुए महात्मा सन्त क्यों नहीं कही जातीं ?

उत्तर–अधिकतर माता अथवा प्रेमिका पत्नी प्रेम का दान करते हुए बदले में कुछ–न–कुछ पाने की अपेक्षा रखती है। अधिकतर प्रेम के बदले में कोई धन चाहते हैं कोई मान तथा अधिकार चाहते हैं कोई प्रेम के बदले में प्रेम चाहते हैं क्योंकि अपने को प्रेम करने वाले मानते हैं। जो कर्ता है वही भोक्ता बनता है। जहाँ कर्ता भोक्ता है वहीं अहंकार की सीमा है। जहाँ तक अहंकार है वहां तक प्रेम ढका हुआ है। अहंकार दानी नहीं हो पाता क्योंकि अहंकार भिखारी है दरिद्र है। अहंकार जो कुछ भी अपना मानकर देता है उसके बदले में कुछ–न–कुछ पाने के लिए ही देता है। माता पिता पुत्र पत्नी आदि जितने सम्बन्धी हैं वह अहंकार के ही नाम रूप हैं। अहंकार अपना मानकर आरम्भ में ही अपनी सन्तुष्टि के लिए लेता है, अपना मानकर दानी बनता है, त्यागी बनता है, अहंकार ही प्रेमी बनता है। अहंकार ही प्रेम की पूर्णता में बाधक है। अहंकार न रहने पर जो शेष है वही शान्तात्मा है महात्मा है परमात्मा है।

प्रश्न–दान करना चाहते हैं फिर क्यों नहीं कर पाते ?

उत्तर–दान करने की अभिलाषा मानवी स्वभाव है। अदान वृत्ति अर्थात् न देने की रूचि राक्षसी स्वभाव है। दैवी वृत्ति, उदारता पूर्वक दान के लिए उत्सुक होती है परन्तु लोभ की प्रधानता में राक्षसी वृत्ति दान नहीं करने देती है। जहाँ लोभ है वहीं भय है। जहाँ भय है वहीं भेद है। जहाँ भेद है वहाँ प्रेम नहीं विकसित होता। जहाँ भय है वहाँ शैतान का राज्य है, जहाँ प्रेम है वहाँ प्रभु का साम्राज्य है। जब भीतर प्रेम होता है तभी बाहर सब प्रभुमय दीखने लगता है। जिसकी दृष्टि में सभी प्रभुमय है तभी दान करना सहज स्वभाव हो जाता है, भेदभाव मिट जाता है, कोई शत्रु रह ही नहीं जाता, सर्व में, फूल में, कांटे में, जीवन में, मृत्यु में प्रभु की ही क्रीड़ा लीला

दिखने लगती है। जब तक हृदय, प्रेम से भरपूर नहीं होता तब तक ही विषयों में प्रतीत होने वाले सुखोपभोग की कामना तथा लोभ मोह ममता रागद्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, कलह, निन्दा, घृणा आदि दुर्विकारों से अहंकार घिरा रहता है। जिस दिन हृदय प्रेम से भर जाता है उसी दिन दुर्विकारों के मेघ छिन्न भिन्न हो जाते हैं तब तो चारों ओर परमात्मा का बोध होने लगता है। तभी जीवन का सत्य, जीवन का आनन्द, जीवन का सौन्दर्य आलोकित होता है—इसके विपरीत दिशा में हम लोभ से काम से भय से दुःख से अशान्ति से चिन्ता से घिरे हुए हैं। हमें प्रेम को पूर्ण करने की साधना के लिए दृढ़ संकल्प करना है।

प्रश्न—आत्मिक ज्ञान ध्यान एवं त्याग प्रेम की पूर्णता के उपदेश क्या विद्यार्थी समझ सकते हैं ?

उत्तर—जितना अधिक अधिकारी विद्यार्थी है उतने उत्तम अधिकारी बूढ़े लोग नहीं हैं, क्योंकि विद्यार्थियों में शक्ति है साहस है, वे ही दृढ़ संकल्प द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान ध्यान त्याग प्रेम को कालान्तर में पूर्ण कर सकते हैं। वृद्ध जन तो शक्तिहीन साहसहीन हो रहे हैं वे सुनकर समझ सकते हैं दूसरों को समझा भी सकते हैं परन्तु तद्नुसार आचरण, कोई बिरले ही, बाल्यकाल के साधनाभ्यासी वृद्ध द्वारा देखा जाता है। भोगाभ्यासी बूढ़े लोगों को त्याग प्रेम ज्ञान ध्यान का उपदेश उसी प्रकार व्यर्थ हो सकता है जिस प्रकार वृद्ध वेश्या को पतिव्रत धर्म का उपदेश निरर्थक ही होता है।

प्रश्न—आज के विद्यार्थी अधिकतर उद्दण्ड सदाचारहीन क्यों हैं ?

उत्तर—आज के शिक्षक प्रायः सत्य से अथवा जीवन से सम्बन्धित शिक्षा नहीं दे पाते, अधिकतर शिक्षक आरम्भ में रटाते हैं, फिर पढ़ाते हैं, अन्त में कुछ विषयों को, गणित, कला आदि सिखाते हैं। जीवन के, सत्य के, शान्ति के, आनन्द के आत्मा के, विनाशी और अविनाशी के विषय में नहीं समझाते। बहुत शिक्षक तो स्वयं ही नहीं समझते, तब विद्यार्थी को कैसे समझा सकेंगे।

प्रश्न—विद्यालयों में धर्म सम्बन्धित शिक्षा को क्या सही शिक्षा नहीं कह सकते ?

उत्तर—विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा के नाम पर जो बताया जाता है उससे अधिकतर भेदभाव बढ़ते हैं। भिन्न—भिन्न धर्मों में घृणा, द्वेष निन्दा

आदि विकार चलते रहते हैं। जैन धर्म, बौद्ध धर्म, हिन्दु धर्म, आर्य धर्म, वैष्णव धर्म, मुसलमान तथा ईसाई मजहब की कुछ बातें रटा दी जाती हैं, इससे बाल्यकाल से माने हुए धर्म का अभिमान दृढ़ हो जाता है, वही आगे चलकर संघर्ष युद्ध का कारण बनता है। वास्तव में धार्मिक शिक्षा द्वारा अपने माने हुए धर्म की बातें रटा देना बहुत ही सरल बात है। किन्तु यथार्थ मानव धर्म की साधना समझाना गम्भीर विषय है। वास्तव में धर्म सम्बन्धी श्लोक अथवा अपने धर्म ग्रन्थ के वाक्यों को रट लेना और परीक्षा में वही लिखकर नम्बर प्राप्त कर लेना जितना किसी विद्यार्थी के लिए सुगम है, उतनी सुगमता से व्यवहार में, धार्मिक साधना में, दृढ़ रहना वयोवृद्ध के लिए भी कठिन है। बालकों को आरम्भ से ही मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर की ओर न ढकेलकर आत्मा की ओर नित्य प्राप्त चेतन की ओर लौटने की साधना बता दी जाये तो जीवन धर्म पूर्ण हो सकता है।

प्रश्न–धार्मिक साधना का क्या परिणाम होता है ?

उत्तर–धार्मिक साधना को कुशलता पूर्वक पूर्ण कर सकने वाले विद्यार्थी सत्य के लिए तत्पर होते हैं, शान्ति के लिए तत्पर होते हैं, सेवा के लिए तत्पर होते हैं, वे ही दोषों का त्याग कर पाते हैं प्रेम को पूर्ण करने में सक्षम होते हैं। धार्मिक साधना में सधे विद्यार्थी आत्मा को जानने में समर्थ होते हैं ध्यान योग में सफल होते हैं।

प्रश्न–धार्मिक साधना का अधिकारी कौन है ?

उत्तर–धार्मिक साधना का अधिकारी प्रत्येक मनुष्य है चाहे वह हिन्दू हो, या जैन हो, बौद्ध हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, क्योंकि सत्य परमात्मा सभी के लिये एक समान है। प्रेम की पूर्णता प्राप्त करना सभी के लिए एक समान फल दाता है। त्याग से सभी को शान्ति सुलभ होती है। सम्यक् ज्ञान से सभी को मुक्ति सुलभ होती है। धार्मिक शिक्षा में भेद हो सकते हैं पर साधना में भेद नहीं होते।

प्रश्न–भिन्न–भिन्न धर्मावलम्बी, परस्पर द्वेष क्यों रखते हैं ?

उत्तर–मन से माने हुए धर्म के अभिमानी लोग माने हुए लाभ के लोभी हैं इसीलिये परस्पर भयभीत हैं एक दूसरे को समाप्त करके अपने ही धर्म का विस्तार चाहते हैं इसीलिये परस्पर ईर्ष्या द्वेष क्रोघ घृणा निन्दा और

हिंसा में तत्पर हैं। धर्म को मान ले वह बालक, धर्म को जान ले वही विद्वान और धर्ममय जीवन बिताये वही विवेकी होता है।

प्रश्न–धार्मिक उपदेश और धर्म की साधना में क्या अन्तर है ?

उत्तर–धार्मिक उपदेशों से कोरा पाण्डित्य बढ़ जाता है विवाद की योग्यता बढ़ जाती है, धर्म के विषय में जानकारी से अहंकार बढ़ता है, धर्मोपदेशक पाण्डित्य के अभिमान में अपने हृदय को घृणा से द्वेष से पर निन्दा से कटुता कठोरता कृपणता से बचा ही नहीं पाते, वे दूसरों को शान्ति का उपदेश देते हैं परन्तु स्वयं अशान्त ही बने रहते हैं।

धर्म पूर्णता की साधना से प्रत्येक साधक शक्ति से सम्पन्न होता है वह अपने शुभ संकल्प को पूर्ण कर लेता है हृदय शान्ति से भरा रहता है। शान्ति से सम्पन्न साधक ही सन्त हो पाता है। धर्मोपदेशक सन्त बनता है किन्तु धर्म की साधना का साधक भीतर से सन्त होता है। सन्त वेष बाहर होता है सन्त स्वभाव भीतर होता है।

बाल्यकाल से ही यदि विद्यार्थी को धर्म को साधने की प्रेरणा दी जाये तभी एक सुन्दर धर्मपरायण समाज विश्व को शान्ति का द्वार दिखा सकता है।

प्रश्न–हिन्दू को, जैन को, बौद्ध आदि को अपने–अपने मन्दिरों में साधना उपासना करना क्या धर्म नहीं है ?

उत्तर–वास्तव में किसी मन्दिर में जाना धर्म नहीं है एक कर्म है। आत्मा में जाना नित्य चेतन में होना स्वस्थ होना शान्त होना अभय होना निर्विकार होना धर्म में होना है।

प्रश्न–एक हिन्दू, गिरजाघर में अथवा एक ईसाई, हिन्दू मन्दिर में ध्यान कैसे साध सकता है ?

उत्तर–भले ही कोई मन्दिर हो या गिरजाघर हो या मस्जिद हो जो स्थान शान्तिमय है वहीं आप अपने भीतर आत्मा में शान्त हो सकते हैं। जिस स्थान में आप आत्मा से युक्त होते हैं वही अनुकूल उपासना का स्थान है। जिस प्रकार बाल्यकाल से ही मस्तिष्क में मन्दिर मस्जिद गिरजाघर भर दिये जाते हैं उसी मस्तिष्क में आरम्भ से ही शिक्षक सज्जन, पाँच सात वर्षों के भीतर किसी प्रकार, जड़ शरीर, जड़ मन, जड़ बुद्धि, जड़ अहंकार के पीछे रहने वाले, नित्य चेतन आत्मा से सम्बन्धित होने की

सद्भावना एवं जानकारी भर दें तो कितना महान पुण्य कार्य हो जाये, यही वास्तविक धर्म साधना की शिक्षा है, इसे जीवन में साधनी होती है।

प्रश्न–सम्यक् धर्म और मिथ्या धर्म की क्या पहिचान है ?

उत्तर–जो सिखाता है वह न करो, वह न करो–यही मिथ्या धर्म, संघर्ष में कलह में बाँध देता है। जो कहता है यह करो, यह करो, यह करो–ऐसा धर्म कुछ छोड़ने को नहीं प्रत्युत पाने की दिशा में प्रेरित करता है यही सृजनात्मक सम्यक् धर्म है। मिथ्या धर्म संसार से भागने की प्रेरणा देता है और सम्यक् धर्म परमात्मा को पाने के लिए प्रोत्साहित करता है।

प्रश्न–बालकों को बुरे काम करने को क्यों न मना किया जाये ?

उत्तर–बालकों को जिस काम के लिए मना करोगे उसकी ही ओर अत्यधिक आकर्षण होगा। अतः बालकों से यह न कहो कि झूठ न बोलो, यही कहो कि सत्य बोलो, क्रोध न करो ऐसा न कहकर, क्षमा करने की प्रेरणा दो। चोरी न करो–यह न कह कर–दान देने की ही प्रेरणा दो। सिनेमा न देखो–यह न कह कर–प्राकृतिक सौन्दर्य देखने की प्रेरणा दो। कठोर वचनों का प्रयोग न करो–ऐसा न कहकर मधुर प्रिय वाक्य ही बोलने के लिए सावधान करते रहो। वहाँ न जाओ–ऐसा न कहकर वहीं जाया करो ऐसा समझाते रहो।

शिक्षक एवं माता–पिता बालकों को बलपूर्वक बुराई छुड़ाने की अपेक्षा प्रेमपूर्वक भलाई में ही लगायें तो बहुत ही शुभ होगा, कल्याणकारी होगा। जो माता–पिता बालकों को दुख देते हैं वे हिंसक हैं। बलपूर्वक सुधार करने वाले किसी के तन पर तो कुछ देर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं पर मन पर कभी नहीं कर सकते कुछ समय पश्चात् मन तीव्र गति से भोगी बनकर ही प्रायः सावधान हो सका। विवेकी माता, पिता, शिक्षक शासन न करके प्रेमपूर्वक बालकों में विवेक जाग्रत करते हैं। विवेक जाग्रत करना अवश्य ही श्रमसाध्य है।

प्रश्न–क्या अनुशासनहीनता से बालक स्वच्छन्द न हो जायेंगे ?

उत्तर–जगत् में बलपूर्वक किसी को भला नहीं बनाया जा सका। प्रेमयुक्त बर्ताव से अवश्य ही बुराई, भलाई में बदल जाती है परन्तु अत्यन्त धैर्य और विवेकी की आवश्यकता है। जो प्रेम प्रक्रिया को नहीं समझ पाता

उस बुद्धिहीन प्राणी के प्रति आघात द्वारा परिवर्तन करना भले ही उचित हो किन्तु बुद्धियुक्त के प्रति प्रेमयुक्त बर्ताव द्वारा ही विजय मिल सकती है। पशु भी प्रेम पद्धति से पीछे–पीछे चलने लगते हैं लेकिन शासन पद्धति से मनुष्य को ही पशु के पीछे चलना पड़ता है। प्रेम में किसी को न बाँधना होता है और न किसी से बँधना होता है। किन्तु शासन द्वारा जो किसी को बन्धन में रखता है, भीतर से शासक भी बँधा रहता है। शासक, तन पर अधिकार जमाता है और शासित तो शासक के मन पर लदा रहता है।

विचार शक्ति से रहित, पशु प्रकृति वाले मनुष्य को शासन से कुछ पकड़ना या छोड़ना अथवा कुछ करना सिखाया जाता है लेकिन बुद्धि प्रधान विचारवान मनुष्य को शाश्वत् सत्य तथा सदा से विद्यमान धर्म समझाया जाता है।

प्रश्न–सम्यक् शिक्षा प्राप्त अच्छे विद्यार्थी के क्या सुलक्षण हैं ?

उत्तर–गुरुकुल से विश्वविद्यालय से निकला हुआ श्रेष्ठ सुन्दर शिक्षित विद्यार्थी वही है जिसके भीतर महत्वाकांक्षा न हो, पदाधिकार की लिप्सा न हो, धन की भूख न हो, जो तन से स्वस्थ हो, जिसका मन सन्तुलित हो, बुद्धि में गम्भीरता हो, विचार शक्ति हो, चित्त शान्त हो, हृदय प्रफुल्लित हो, प्रेम में इतना आगे हो कि प्रतिस्पर्धा में सबसे पीछे खड़ा हो, जिसमें अहंकार की जड़ता कठोरता के विरुद्ध विनम्रता हो।

अहंकार से अधिक दरिद्र, दुःखी भिखारी दुर्भाग्य युक्त संसार में कोई दूसरा नहीं है इसीलिए सम्यक् शिक्षा वही है, जो अहंकार से मुक्त बनाये, सरलता लाये। सुन्दर सुशिक्षित विद्यार्थी वही है जिसमें आत्म बल हो, सम्यक् साहस हो, साथ ही निरीक्षण की तीक्ष्ण दृष्टि हो। जो मन से, वाणी से, कर्म से किसी को कष्ट न देने के लिए सावधान रहता है, जो सेवा के, सहायता के उत्तम अवसरों में, कर्त्तव्य पालन में, आलस्य प्रमाद नहीं करता, विनोद मात्र के लिए भी किसी के आग्रह पर बुरी आदतों एवं दुर्व्यसनों को स्थान नहीं देता। निन्दा घृणा कलह क्रोध ईर्ष्या द्वेष से बचता रहता है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय एवं जीवन निर्माण के कठिन कर्त्तव्य को सम्हालता है–वही सुन्दर सुयोग्य विद्वान होता है।

प्रश्न–विद्यार्थियों में परस्पर प्रेम कैसे बढ़ सकता है ?

उत्तर–विद्यार्थियों में प्रतियोगिता की प्रथा हटा दो जीतने पर पुरस्कार न बाँटो, क्योंकि इससे प्रतिस्पर्धा बढ़ती है, द्वेष बढ़ता है, डाह होती है प्रेम नहीं बढ़ता। जो दौड़ में आगे हो कर, किसी को पीछे हटाकर गर्व से प्रसन्न होता है वह प्रेम में नहीं होता है क्योंकि दूसरों को अपमानित करता है अहंकार को चोट पहुँचाता है। प्रेम बढ़ाना है तो निर्बल को आगे बढ़ने में सहायता दो, दीन हीन को सबल श्रेष्ठ होने में सहयोग दो। जो दूसरों को पीछे करके आगे जाने को दौड़ता है सबसे श्रेष्ठ होने के लिए अधीर है, वह हिंसक है, प्रेम का विरोधी है। प्रतियोगिता प्रतिस्पर्धा मिट्टी के घरौंदों के निर्माण से चलकर बढ़ते–बढ़ते आज एटम बम हाइड्रोजन बम, के निर्माण तक पहुँच गई है।

जो विद्यार्थी दण्ड से भयातुर है, पुरस्कार से प्रलोभित है, असफलता से पीड़ित है, सफलता से उन्मत्त है, वह प्रेम नहीं सीखता, हिंसा सीखता है।

प्रश्न–स्त्री को पुरुषों के समान शिक्षित होने से क्या लाभ है?

उत्तर–पुरुष के समान स्त्री शिक्षित होने पर पुरूष तो होगी नहीं लेकिन पुरुष की नकल करेगी और समानता के अभिमान में संघर्ष चलेगा। स्त्रियों को घर सजाने की, पारस्परिक प्रेम की, दया सहानुभूति, सहिष्णुता नम्रता आदि सदगुणों के साथ व्यावहारिक शिक्षा गृह को स्वर्ग बनाने में सहायक है किन्तु जहाँ पति–पत्नी दोनों डॉक्टर हों, दोनों प्रोफेसर हों, दोनों इंजीनियर हों तब तो प्रेम की पूर्ति के विपरीत कभी–कभी अहंकार की कठोरता बढ़ेगी। परस्पर आकर्षण के लिए विभिन्न कला का ज्ञान आवश्यक है। पुरुषों की नकल से नारी की महान हानि सम्भव है।

प्रश्न–आज के युवक जोश में आकर चीजें तोड़ते हैं इससे उन्हें क्या लाभ होता है ?

उत्तर–नव निर्माण के लिए, सृजन के लिए पुरानी चीजों को तोड़ना, पुरानी गलत प्रथाओं को, रूढ़ियों को, मूढ़ता से भरी परम्पराओं को तोड़ना तो बहुत ही हितप्रद है लेकिन युवकों को यह विवेक नहीं होता, किन्तु तोड़ने की प्रवृत्ति तो कुछ तोड़ेगी ही इसीलिए जब सही तोड़–फोड़ नहीं कर पाते तब गलत तोड़–फोड़ से अपने आत्मबल को व्यर्थ में नष्ट करते

हुए अन्त में पश्चात्ताप करते हैं। प्रायः अशिक्षित युवक वह तोड़–फोड़ नहीं करते जो कि शिक्षित युवक करते हैं। यदि युवकों को यथार्थ शिक्षा आरम्भ से मिलने लगे तो जो शक्ति बसें जलाने में शीशा तोड़ने में व्यय होती है, उसी शक्ति से उसी आत्मबल से धन की तृष्णा पदाधिकार की तृष्णा अन्त में महत्वाकांक्षा के तोड़ने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। जब तक मनुष्य कामनाओं के पाश में जकड़ा रहता है तब तक कामना की अपूर्ति में शक्ति का दुरुपयोग, तोड़ने में ही करता रहता है लेकिन जब काम पाश से मुक्त होकर प्रेमामृत से तृप्त होता है तब तोड़ना भूलकर जोड़ने में ही धन्यता का अनुभव करता है, उसे ही शान्ति, प्रेम, आनन्द की अनुभूति होती है।

"आरा कुल्हाड़ा दुष्ट जन मिले देत बिलगाय ।
सुई सुहागा सन्त जन बिछुरे देत मिलाय ।।"

प्रश्न–शिक्षित समाज में भी विकराल संघर्ष क्यों बढ़ रहे हैं ?

उत्तर–जब तक शिक्षित मनुष्य व्यक्तिगत उन्नति चाहता है, व्यक्तिगत अहंकार शक्ति विकास का भूखा है, अपने ही वैभव को सर्वोपरि बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा है तब तक समाज व्यापी देश व्यापी संघर्षों का अन्त नहीं होगा। वर्तमान शिक्षा का लक्ष्य धन तथा सुखोपयोग की सुविधा प्राप्त करना है। आज की प्रचलित शिक्षा में सद् असद् कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक नहीं है। ध्यान से ज्ञान में देखने की प्रेरणा नहीं है। जो शिक्षित होकर कठोर है, विनम्र, दयालु, प्रेम से युक्त नहीं है, जो महत्वाकांक्षा के कारण अहंकार वश अशान्त है, उससे जंगली आदमी अच्छे हैं, क्योंकि वह समाज के शोषक नहीं हैं। यदि शिक्षित मानव विद्या द्वारा स्वयं को प्रभु में प्रतिष्ठित और स्वयं में प्रभु के प्रेम को प्रतिष्ठित अनुभव न कर सका तो उसका पशु ही उसे नष्ट–भ्रष्ट कर देगा।

शिक्षा से बुद्धि विकसित होती है पर हृदय की विशालता उदारता का सुयोग नहीं होता, इसीलिये अत्यधिक शिक्षित प्रेम के माधुर्य से रहित हैं, महत्वाकांक्षा के ज्वर से अशान्त हैं। शिक्षितजन, सम्पत्ति शक्ति उच्च पद प्राप्त कर सकते हैं परन्तु उन्हें भावना का रसास्वाद एवं आनन्द की अनुभूति, प्रेम की पूर्णता सुलभ नहीं हो सकती । इसीलिए बुद्धि विकास के साथ ही हृदय का विकास होना, जीवन निर्माण के लिए परम आवश्यक है।

प्रश्न–जो आनन्द सिनेमा में मिलता है वह क्या मन्दिरों में मिल सकता है?

उत्तर–सिनेमा में आनन्द नहीं मिलता, वहाँ तो आँखों, कानों के विषय में क्षणिक सुख प्रतीत होता है। सुख की प्रतीति अनुकूल विषय के स्पर्श से होती है। आनन्द की अनुभूति सत्य परमात्मा के योग से होती है। सत्य, परमात्मा, आनन्द अलग–अलग नहीं रहते। सिनेमा संगीत में सुखास्वाद लेने वाले भी कभी जानेंगे कि दुख को भूल जाना मात्र आनन्द नहीं है।

मनुष्य दरिद्रता को भूल जाये या समृद्धिशाली हो जाये–इसमें जो अन्तर है वही अन्तर दुःख के भूलने में और आनन्द की उपलब्धि में है। सुख में केवल दुःख का विस्मरण होता है और आनन्द में नित्य सत्य का स्मरण रहता है। सुख के द्वारा दुख दब जाता है और आनन्द के द्वारा दुःख मिट जाता है। सिनेमा संगीत शराब के द्वारा दुःख भूलना विवेकी मनुष्य कदापि पसन्द नहीं करते क्योंकि दुख भूलने के लिए, कुछ देर सुखास्वाद लेने के लिए तो घर में रहके सो जाना सुगम युक्ति है। यदि सोते रहना भी वश की बात नहीं है तो मरकर कब्र में सोने वालों का दुःख दीर्घ काल के लिए दब जाता है। वास्तव में नित्य आनन्द की प्राप्ति ही मानव का परम पुरूषार्थ है। आनन्द न सिनेमा में मिलता है न मन्दिर में ही मिलता है, आनन्द केवल प्रेम में, परमात्मा में मिलता है।

प्रश्न–मनुष्य संसार में सब कुछ पाकर भी अतृप्त क्यों है?

उत्तर–इसीलिए अतृप्त है, अशान्त है क्योंकि जो कुछ भी जगत् में पाता है, वह पूर्ण नहीं है जो कुछ है, सब अपूर्ण है, जो दिखता है परिवर्तनशील है, जितना भी इन्द्रियों से प्रतीत होने वाला सुख है वह क्षणिक है देहादिक समस्त वस्तुयें नश्वर हैं। इसीलिए जीवन सदा अतृप्त रहता है वह पूर्ण आनन्द को पाकर ही तृप्त हो सकता है और आनन्द उससे मिल ही नहीं सकता, जो अपूर्ण है। जो पूर्ण है, वह कभी भिन्न नहीं हो सकता, उसकी उत्पत्ति नहीं होती, उसका विनाश नहीं होता। जिसकी उत्पत्ति नहीं, जिसका विनाश नहीं, उससे कभी दूरी नहीं होती। जिससे कभी दूरी नहीं होती, उसे पाने के लिए कहीं यात्रा नहीं करनी पड़ती, क्योंकि उसकी नित्य उपस्थिति की अनुभूति वहीं होती है जहाँ से खोज का आरम्भ होता है और जहाँ खोजने का अन्त होता है।

आरम्भ के प्रथम जो कुछ है, अनादि है और अन्त होने के पश्चात् जो है, वही अनन्त है, वही परमात्मा है वही पूर्ण है। पूर्ण का बोध, काम से नहीं, प्रत्युत अन्तर–विश्राम से होता है। काम, विश्राम से विमुख बनाता है। विश्राम राम के सन्मुख करता है। जो काम के आदि में, मध्य में और अन्त में निरन्तर विद्यमान है, वही राम है।

प्रश्न–आनन्द के खोजने की सही दिशा कौन है ?

उत्तर–बालक आनन्द को खिलौनों में, खेल में खोजते हैं, विद्यार्थी आनन्द को विद्या की उपाधियों में और कामासक्त, आनन्द को कामिनी में खोजते हैं, भोगी थककर सिनेमा में संगीत में, लोधी धन में खोजते हैं, प्रौढ़ बुद्धि के लोग आनन्द को महत्वाकांक्षा की पूर्ति में खोजते हैं। यह सभी दिशाओं में जाने वालों को अन्तिम सन्देश देती है कि आनन्द की दिशायें सही नहीं हैं। जो मेधावी एवं परिणामदर्शी बुद्धि के मनीषी जन हैं, वे आनन्द को आत्मा में अनुभव करते हैं। आनन्द की सही दिशा आत्मा है। जो अनात्मा की ओर भागना बन्द करके आत्मा की ओर लौटता है, स्थिर होता है, मौन होता है, शान्त होता है, विश्राम में होता है, वही आनन्द में अपने को पाता है।

अन्तरदृष्टि न खुलने तक मनुष्य यह भी नहीं समझ पाता कि दुःख तो भीतर है और सुख बाहर खोजता है। बाहर सुख का आभास, भीतर के दुःख को कुछ देर के लिए भुला देता है पर मिटा नहीं पाता। जो भीतर आनन्द को पा लेता है वह बाहर सुख के लिए नहीं दौड़ता है। सुख का भिखारी नहीं जानता कि जहाँ बैठकर भीख माँग रहा है, वहीं आनन्द का कोष विद्यमान है।

प्रश्न–प्राचीन समय की अपेक्षा वर्तमान काल में लोग अधिक हिंसक क्रूर कर्मी क्यों हो रहे हैं ?

उत्तर–संसार का इतिहास बताता है कि सदा–सदा से समाज में हिंसक क्रूर कर्मी होते आ रहे हैं फिर भी अन्तर इतना ही है कि प्राचीन समय में लोभी कामी अभिमानी इतने शिक्षित न थे, अब अधिक शिक्षित हो गये हैं इसीलिए प्राचीनकाल के हिंसक, लाठी, पत्थर, धनुष बाण का प्रयोग करते थे अब अणु बम का, गन का प्रयोग करते हैं। पुराने समय में लोग बहुत श्रम से चोरी करके धन ले पाते थे, आज के शिक्षित भय दिखाकर

चतुरता से रिश्वत से अधिकाधिक धनी बन जाते हैं। जिस प्रकार भले सज्जन पुरुष, शिक्षित होकर कहीं–कहीं भलाई की अहिंसा की प्रेरणा दे रहे हैं उसी प्रकार बुरे असज्जन मनुष्य शिक्षित होने के कारण पूरी शक्ति से बुराई का प्रसार कर रहे हैं।

सभी सज्जन बुरे नहीं हो गये हैं, लेकिन बुरे हिंसक, कामी जन ही अधिक शिक्षित, शक्ति सम्पन्न हो गये हैं। जिस प्रकार सही शिक्षा, सद्गुणों को बहुगुणित बढ़ा देती है, उसी प्रकार अशुद्ध शिक्षा, बुराई को, दोषों को हजारों गुना बढ़ाने में सहायक होती है। लोभी अभिमानी एवं सुखासक्त कामी की बुद्धि में शिक्षा की दिशा, असत् पथ गामी बनती है। जो शिक्षित मनुष्य जितना अधिक लोभ से ग्रसित है कामना से आबद्ध है, तृष्णा से पीड़ित है उतना ही अधिक हिंसक है।

प्रश्न–भारत के आदर्श पुरुषों के समान होने की महत्वाकांक्षा क्या अनुचित है ?

उत्तर–अवश्य ही ध्रुव, प्रहलाद, हरिश्चन्द्र दानी कर्ण अथवा राम कृष्ण शिवाजी, गाँधी आदि के समान आदर्श जीवन बनाने की सर्वत्र शिक्षा दी जा रही है और कुछ शिक्षित लोग आदर्शों की नकल भी करते रहते हैं पर आज तक एक आदर्श के समान दूसरा कोई हो नहीं पाया। आज तक न कोई दूसरा ध्रुव हुआ न प्रहलाद हुए न कोई दूसरे राम कृष्ण हो सके, रामलीला रासलीला में राम कृष्ण सैकड़ों लोग बनते रहते हैं। प्रत्येक आदर्श को अनुकृति कर लेना किसी भी दम्भी लोभी पाखण्डी के लिए सरल है परन्तु कोई आज तक दूसरा बुद्ध दूसरा गाँधी दूसरा शिवाजी, दूसरा राणा प्रताप नहीं बन सका।

वास्तव में मानव को किसी के समान होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मनुष्य में स्वयं ही अनोखी पूर्णता निहित है उसी को प्राप्त करना है। जिसे स्वयं के सत्य का महत्व विदित नहीं है वही दूसरों की नकल करने के लिए दूसरों के समान होने के लिए वेष परिवर्तन, भाव परिवर्तन, विचार परिवर्तन, स्थान परिवर्तन के लिए व्यस्त रहता है–ऐसी महत्वाकांक्षा मनुष्य के मन का ज्वर है जो सदा सन्तापित करता रहता है।

प्रश्न—महत्वाकांक्षा का क्या अर्थ है ?

उत्तर—जिसकी महिमा गाई जाती है वह होने की दौड़ को अथवा सर्वश्रेष्ठ होने की उत्सुकता को महत्वाकांक्षा कहते हैं। किन्तु प्रायः शिक्षित मनुष्य की दृष्टि में सर्वोपरि महिमा उसी की प्रतीत होती है, जहाँ तक उसकी दृष्टि की पहुँच होती है इसीलिये आज का महत्वाकांक्षी, जिसे अपने आगे देखता है उसी के आगे होने की दौड़ लगाता है और कदाचित किसी के आगे निकल जाता है तब पुनः कोई आगे दीखने लगता है इस प्रकार अहंकार के दौड़ने का अन्त हो जाता है परन्तु महत्वाकांक्षा का अंत नहीं होता है। अतः महत्वाकाँक्षी अधिकतर, दरिद्र ही बना रहता है, तृप्त नहीं हो पाता है। एक बालक खेल में दौड़ में आगे होना चाहता है, कक्षा में सबसे आगे होना चाहता है, युवक भोग सामग्री जुटाने में सबसे आगे होना चाहता है, लोभी धन संग्रह में, अभिमानी पदाधिकार प्राप्त करने में आगे होना चाहता है, भौतिक विज्ञानी वस्तुओं की पदार्थों की शोध में, आधिदैविक विज्ञानी अन्तर्जगत की शक्तियों की खोज में, आध्यात्मिक ज्ञानी योग विज्ञान में आगे होना चाहता है। महत्वाकाँक्षी चूँकि दूसरों को पीछे करके आगे होना चाहता है इसीलिए अशान्त है अतृप्त है, और दूसरों के प्रति हिंसक है क्योंकि पीछे रहने वालों को आत्मग्लानि हीनता दीनता से दुखी बनाने में संकोच नहीं करता है। महत्वाकांक्षी के भीतर प्रतिस्पर्धा होती है।

अपने में दूसरों को देखकर सुनकर जब कमी प्रतीत होती है तब हीनता की वेदना से महत्वाकांक्षा उत्पन्न होती है।

महत्वाकांक्षा, अहंकार का सर्वोपरि रोग है। महत्वाकांक्षी के पीछे चलने वाले लोग उसे सफल मानते हैं परन्तु महत्वाकांक्षी अपनी उन्नति की योजनाओं के लिए ही चिन्ताग्रस्त अथवा व्यस्त रहता है। गृहस्थ ही नहीं संन्यासी त्यागी भी महत्वाकांक्षा को लेकर अशान्त देखे जाते हैं। आत्मज्ञान से ही महत्वाकांक्षा से मुक्ति मिलती है।

प्रश्न—आत्मा का ज्ञान कैसे होता है ?

उत्तर—जिसके द्वारा जड़ को जाना जाता है उसी अनात्मा जड़ वस्तु के द्वारा नित्य चेतन स्वरूप आत्मा की अनुभूति होती है। देह इन्द्रियां मन बुद्धि अहंकार को प्रकाशित करने वाला चेतन आत्मा है। स्वयं में शान्त होने पर असंग होने पर आत्मा का बोध होता है।

प्रश्न–जीवात्मा अपने परमात्मा की आराधना किस प्रकार करता है?

उत्तर–देह में नित्य निर्विकार चेतन तत्व ज्ञान स्वरूप आत्मा है और सर्व में सबकी आत्मा को ही परमात्मा कहते हैं अतः सर्व के प्रति प्रेमपूर्वक सेवाभाव से व्यवहार करना ही परमात्मा की आराधना है। श्रमी, संयमी, सदाचारी तथा सद्–असद्, धर्म अधर्म का विवेकी एवं निष्काम हृदय, अभिमान, ममता लोभादि दोषों से मुक्त ही सर्वमय परमात्मा की आराधना में तत्पर रह पाता है।

प्रश्न–निरपेक्ष साधना क्या है?

उत्तर–बीते हुए का स्मरण न करना, भविष्य का चिन्तन अथवा कल्पना न करना, वर्तमान को ही देखना, वर्तमान में ही जीना, निरपेक्ष साधना है। निरपेक्ष वही है जिसे किसी वस्तु व्यक्ति आकार–प्रकार की आवश्यकता न हो। स्वयं के द्वारा स्वयं में ही सत्य परमात्मा का अनुभव करना, किसी अन्य का, चिन्तन स्मरण न करना निरपेक्ष साधना है।

कुछ न करते हुए शान्त मौन होकर, विचार विकार रहित होकर, भीतर जो कुछ मन में, चित्त में हो रहा है, उसके साक्षी रहकर, बाहर जो कुछ हो रहा है, उसे द्रष्टा होकर देखना, केवल देखते रहना निरपेक्ष साधना है।

प्रश्न–सुख दुःख किसे होता है ?

उत्तर–मन के द्वारा अहंकार ही सुखी दुखी होता है। जहाँ सुख की आसक्ति नहीं रहती दुःख का भोग नहीं रहता वहाँ अहंकार नहीं रहता। जितनी अधिक हीनता प्रतीत होती है उतना अहंकार प्रबल होता है। असीम से विमुख होकर सीमा को स्वीकार करने वाला अहंकार सदा संग्राम में व्यस्त रहता है अशान्त रहता है।

प्रश्न–अन्त समय के लिए क्या तैयारी करना चाहिए ?

उत्तर–अन्त समय में जो छूट जायेगा उससे ममता लोभ नहीं रखकर, जो साथ जायगा उससे प्रेम करना चाहिये।

प्रश्न–क्या छूटता है और क्या साथ जाता है ?

उत्तर–जन्म लेने के साथ जो देह तथा परिवार के जन एवं धन बल अधिकार आदि जगत् से मिलते हैं वह सब जगत् में ही छूट जाते हैं और

जगत् की देहादिक वस्तुओं तथा व्यक्तियों के संग का अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव अर्थात् राग द्वेष ममता लोभ अभिमान एवं तृष्णा वासना कामना आदि विकार सूक्ष्म देह के साथ जाते हैं। पाप–पुण्य अथवा अधर्म धर्म के संस्कार साथ जाते हैं।

प्रश्न–जीव चौरासी के चक्कर में पड़ता है, इसका क्या अर्थ है?

उत्तर–मनुष्य की देह उसके अंगुल से 84 अंगुल की ही होती है। वासना वश जीव बार–बार चौरासी अंगुल की देह में आता है–यही चौरासी का चक्कर है फेरा है।

प्रश्न–ईश्वर है–यह नास्तिक को कैसे समझाया जाये ?

उत्तर–ईश्वर जिस अधिकारी पर कृपा करता है उसे स्वयं ही समझा देता है, आपको समझाने की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। क्या नास्तिक पर ईश्वर की दया नहीं है ?

आप अपने विषय में निर्णय कर लें कि ईश्वर के विषय में कुछ सुनकर मन से मानते हैं या बुद्धियोगी होकर ईश्वर को तत्वतः अपने साथ जानते हैं। अथवा आप ईश्वर को स्वयं में और ईश्वर में स्वयं को देखते हैं। क्योंकि 'मैं' रूपी अणु को जो साधक जान लेता है वही महान् ईश्वर को जान लेता है। मैं रूपी अणु को जो देख लेता है वही महान ईश्वर तत्व का अनुभव करता है।

सत्य परमात्मा स्वयं में है और सत्य में ही स्वयं की सत्ता है। जो सबमें परमेश्वर की सत्ता का अनुभव करता है वह किसी नास्तिक को समझाने की चिन्ता नहीं करता क्योंकि दूसरों को उपदेश देना सब कार्यों से सरल कार्य है लेकिन स्वयं के अज्ञान को ज्ञान से देख लेना बहुत ही बड़ा पुरुषार्थ है।

किसी नास्तिक को ईश्वर के विषय में समझाने का प्रयास न करके, वह नास्तिक स्वयं क्या है, कहाँ है, यही जान लो और उसे भी अपने आपको मानने के साथ जानने और देखने की प्रेरणा दो।

प्रश्न–असावधानी से क्या–क्या हानियाँ हैं?

उत्तर–समस्त दोष असावधानी से बनते हैं। पुण्य के तथा सेवा के एवं अनेकों लाभ के अवसर निकल जाते हैं।

मनुष्य सावधान न रहने के कारण ही गिरता है, दुखी होता है, चोट खाता है, और विद्या से, सद्‌गुणों के विकास से, ज्ञान प्रकाश में यथार्थ दर्शन से वंचित रह जाता है। असावधानी से ही दुर्घटनायें होती हैं। जो लेना चाहिये उसे ले नहीं पाता, जो देना चाहिए वह दे नहीं पाता ।

प्रश्न–हमें कहाँ सावधान रहना चाहिए ?

उत्तर–तुम जो कुछ बोलो, जो कुछ सुनो, तथा जो कुछ भी करो, सदा सावधान रहो, जिससे कि व्यर्थ से अथवा अनर्थ से बचते रहो।

सम्बन्धित जनों के प्रति कर्त्तव्य पालन में, तथा समय एवं शक्ति के सदुपयोग के लिए सावधान रहो। बीती हुई घटनाओं की स्मृति में एवं भविष्य की चिन्ता में न उलझकर वर्तमान में जो कुछ हो रहा हो और जो कुछ करना चाहिए उसे देखने के लिये सावधान रहो।

प्रश्न–जगत् के भाँति आत्मा प्रत्यक्ष क्यों नहीं दिखता ?

उत्तर–जगत् प्रत्यक्ष कदापि नहीं दिखता। जगत् की प्रतीति होती है प्राप्ति नहीं होती, जगत् तुमसे कभी नहीं कहता कि 'मैं हूँ'। तुम जगत् की वस्तुओं से मिलकर 'मै हूँ' या 'मेरी है'–ऐसा कहते हो। जो क्षण–क्षण बदल रहा है वह जगत् है और जो प्रत्येक क्षण में एक रस विद्यमान है वही आत्मा है। आत्मा के त्यागने पर जो त्यागा नहीं जा सकता वही आत्मा है।

प्रश्न–हमें उपासना में एकाग्रता क्यों नहीं होती ?

उत्तर–उपासना में वासना कामना चित्त को एकाग्र नहीं होने देती है। रूपासक्त मन के लिए उपासना का स्थान मन्दिर है तथा श्रद्धेय मूर्ति है। योगाभ्यासी के लिए उपासना का स्थान भूमध्य है वह हृदय है। हृदय ही आत्मा की अनुभूति का केन्द्र है और आत्मा ही केन्द्रों का केन्द्र है। देहाध्यासी को मूर्ति में सत्य की प्रतिष्ठा करनी होती है। मनोमय पुरूष को देह के भीतर सूक्ष्म शरीर के चक्रों में ध्यान योग का अभ्यास करना आवश्यक होता है। विज्ञानमय पुरुष, आत्मा का उपासक होता है।

प्रश्न–मन को विलीन करने का क्या उपाय है ?

उत्तर–मन को अन्तर नादध्वनि में लगाना, या किसी वस्तु में ध्यान को स्थिर करना अथवा जो कुछ सामने हो उसे ही ध्यान से देखते रहना अथवा मन को ही ध्यान से देखना सुगम साधना है।

प्रश्न–प्रभु की दया और कृपा में क्या अन्तर है ?

उत्तर–सांसारिक अनुकूलता की सिद्धि प्रभु की दया है स्वयं को शिवस्वरूप एवं आनन्दमय प्रेममय अनुभव करना प्रभु की कृपा है। सांसारिक अनुकूलता दया है। पारमार्थिक अनुकूलता और सांसारिक प्रतिकूलता प्रभु की कृपा है। दया से सुख मिलते हैं, कृपा से शान्ति सुलभ होती है। दया सभी प्राणियों पर है पर प्रभु की कृपा अधिकारी साधक पर है।

प्रश्न–सद्गुरु परमगुरु में क्या अन्तर है ?

उत्तर–जिसके द्वारा सांसारिक पदार्थों के उपयोग का ज्ञान होता है वह गुरु है। जिसके द्वारा दैवी शक्तियों एवं जीवन में सुलभ शक्तियों के सदुपयोग का ज्ञान होता है वही सद्गुरु हैं। जिसे पाकर कुछ पाना शेष नहीं रहता वही स्वयं के भीतर नित्य सुलभ आत्मा ही परमगुरु है। परमगुरु की प्राप्ति के लिए ही अन्य गुरु एवं सद्गुरु की आवश्यकता रहती है।

प्रश्न–सद्शिष्य के लक्षण क्या हैं?

उत्तर–गुरु के प्रति श्रद्धा होने पर अनित्य सुखों की कामना वाला मन ही असद् शिष्य है और अनित्य सुखों से विरक्त रहकर केवल नित्य आत्मा का उपासक मन ही, सदशिष्य है। पूर्ण विरक्ति तथा समता एवं शान्ति की प्राप्ति जिसे रहती है वही सदशिष्य है।

प्रश्न–माता–पिता के दोष का प्रभाव क्या सन्तान पर पड़ता है?

उत्तर–माता के दोष के कारण सन्तान में चरित्र हीनता आती है, पिता के दोष के कारण मूर्खता रहा करती है, वंश दोष के कारण कायरता और स्वयं के दोषवश दरिद्रता घेर लेती है।

प्रश्न–किसी व्रत की पूर्णता के लिए क्या–क्या करना चाहिए ?

उत्तर–अवसर पर क्षमा करो, दया करो। सत्य का ही पक्ष लो, सुखद का, पवित्र प्रिय वस्तु का तथा मान का, दान करो। शरीर को शुद्ध रखो, पूज्य की पूजा, देवपूजा करो, इन्द्रियों में संयम रखो, अग्नि में पवित्र वस्तु का हवन करो, सन्तोष को साथ रखो, किसी प्रकार की चोरी न करो।

जीवन में जिससे भी तन मन इन्द्रियों द्वारा सम्बन्ध है उसी के प्रति उसकी सन्तुष्टि के लिए उसके अधिकारानुसार कर्त्तव्य पालन करने से व्रत पूर्ण होता है। प्रत्येक आश्रम के धर्म को पूर्णतया पालन करने से व्रत पूर्ण होता है। यज्ञ कर्म द्वारा देवताओं को, स्वाध्याय द्वारा ब्रह्मर्षियों को, तथा श्राद्ध द्वारा सनातन पितरों को उनका भाग देकर सन्तुष्ट करने से एवं गुरुजनों को सेवा द्वारा सन्तुष्ट करने से व्रत पूर्ण होता है।

प्रश्न–आज्ञा न मानने वाले पुत्र के प्रति पिता का क्या कर्त्तव्य है?

उत्तर–यदि तुम पिता हो या पति हो बड़े हो, तुम्हारी बात छोटे लोग नहीं मानते हैं, तो तुम उनकी बात न मानो वह यदि तुमसे विरक्त हैं तो तुम भी उनसे अनासक्त हो जाओ। इतना और देख लो कि छोटे लोग तुम्हारी आज्ञा नहीं मानते तो क्या तुम बड़े समझदार होकर अपने हितैषी गुरू की, सन्त की और अपने भगवान की आज्ञा मानते हो? क्या तुम भगवान के आदेशानुसार ममता का, मोह का लोभादि दोषों के त्यागी हो चुके हो? यदि नहीं हो चुके, तो पहिले तुम भगवान की, गुरु की, आज्ञानुसार ममता लोभ अभिमान त्यागकर, अनासक्त होकर, प्राप्तशक्ति सम्पत्ति योग्यता द्वारा सेवा करते रहो। अधिकार का फलासक्ति का त्याग करो। यदि तुम बड़े होकर अपने परम सुहृद गुरु की भगवान की नहीं मानोगे तो छोटे लोग तुम्हारी बात नहीं मानते तो उनकी निंदा करते हुए मोह का ही परिचय देते हो।

प्रश्न–दया के सुपात्र कौन होते हैं ?

उत्तर–सर्वज्ञ ईश्वर की दृष्टि में सभी प्राणी दरिद्र होने के कारण दया के पात्र हैं। शक्ति सम्पत्ति सम्पन्न मनुष्य के लिए वही दया के सुपात्र हैं जो कृपण हैं, अनाश्रित हैं, वृद्ध हैं, दुर्बल हैं, रोगी हैं, शक्ति हीन हैं जो धनोपार्जन में असमर्थ हैं।

प्रश्न–लाखों धर्मात्मा मनुष्य विरक्त क्यों नहीं होते ?

उत्तर–धर्म के अभिमानी सहस्त्रों मनुष्य हैं परन्तु धर्म को यथार्थ रूप में जानने मानने वाले कोई बिरले ही हैं। मूर्ख मनुष्य, धर्म को मानते हैं किन्तु जानते नहीं हैं और विद्वान, लोभी मोही अभिमानी कामी होने के कारण धर्म को जानते तो हैं परन्तु मूढ़ता वश मानते नहीं ।

प्रश्न–धर्म को मानने और जानने में क्या अन्तर है ?

उत्तर–धर्म के विषय में मनुष्य जो कुछ सुनता है वही मन से स्वीकार करके बोलने लगता है–ऐसा व्यक्ति धर्म का मोही होता है। मोही वही है जो मन से मान ले, पर बुद्धि से जाने नहीं। धर्म का अभिमानी वही है जो बुद्धि से धर्म की व्याख्या अच्छे ढंग से करता रहे परन्तु लोभ मोह वश आचरण में न ला सके।

वह बालक वत है जो धर्म को मानता है। वह विद्वान है जो धर्म के विषय में जानता है। वह विवेकी सज्जन है जो धर्म में रहकर सदैव परहित में तत्पर रहता है।

प्रश्न–अनेकों वस्तुओं व्यक्तियों के धर्म का निर्णय कैसे करें?

उत्तर–वस्तु का व्यक्ति का जो स्वभाव है वही धर्म है। जो वस्तु व्यक्ति में अनायास ही होता है वही स्वभाव है। धर्म कुछ करने से नहीं होता वह तो स्वतः ही रहता है स्वभाव को प्रगट करने के लिए कुछ करना या बनाना नहीं होता। पुष्प को सुगन्ध फैलानी नहीं पड़ती, अग्नि को किसी वस्तु के जलाने की क्रिया करनी नहीं पड़ती, उसी प्रकार धर्म के लिए कुछ करना नहीं होता। प्रत्येक वस्तु की सिद्धि जिसके रहने से होती है वही उसका धर्म है।

प्रश्न–मन्दिर और मूर्ति पूजा क्या सनातन धर्म के अन्तर्गत नहीं है?

उत्तर–मन्दिर और मूर्ति मनुष्य की कृतियाँ हैं किन्तु सनातन धर्म किसी मनुष्य का रचा हुआ नहीं है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु का जो स्वभाव है वही सनातन धर्म है।

प्रश्न–भगवान राम या कृष्ण, भगवान बुद्ध या महावीर, जगतगुरु अथवा पैगम्बरों ने क्या सनातन धर्म को नहीं चलाया ?

उत्तर–जिस प्रकार बौद्धधर्म, जैनधर्म, हिन्दूधर्म, इस्लाम मजहब, ईसाईमत, आदि मनुष्य निर्मित नाम से प्रचलित हैं। उसी प्रकार रामधर्म, कृष्णधर्म, जगद्गुरु, शंकराचार्य, माध्वाचार्य, रामानुजाचार्य, धर्म कहीं नहीं लिखा पढ़ा जाता। भारत के प्रसिद्ध आचार्यों से धर्म नहीं निकला बल्कि जो सनातन धर्म के अनुयायी थे वही आचार्य पद में प्रतिष्ठित हो सके। इन्होंने धर्म को नहीं चलाया–स्वयं सभी आचार्य सनातन धर्म के अनुसार चले। भगवान ने

भी सनातन धर्म नहीं चलाया स्वयं ही अपने आचरण द्वारा सनातन धर्म–परायणता का परिचय दिया।

प्रश्न–मन्दिर में जाने वाले, मूर्ति पूजा करने वालों को सनातन धर्मी क्यों माना जाता है ?

उत्तर–सुन–सुनकर कुछ मान लेना अन्धे मन का काम है किन्तु यथार्थ सनातन धर्म को जानने वाले, किसी को मन्दिर में जाने मात्र से, मूर्ति पूजा करने मात्र से, तीर्थ यात्रा करने मात्र से ही सनातन धर्मानुयायी नहीं मान लेते, क्योंकि मन्दिरों तीर्थों में कोई भी जा सकता है परन्तु सनातन धर्म का प्रेमी, धर्मनिष्ठ, कोई सम्यक् सत्यदर्शी विद्वान ही हो सकता है।

ईंटों से मन्दिर बना लेना, पत्थर में मूर्ति बना लेना कुछ वस्तुओं से पूजा कर देना किसी भी भावुक व्यक्ति के लिये सुगम है पर इस देह को धर्म का मन्दिर बना लेना और जीवन में परमात्मा को प्रतिष्ठित देखना किसी प्रेम पूर्ण साधक का ही पुरुषार्थ है।

प्रश्न–मन्दिर बनाना क्या आवश्यक है ?

उत्तर–जब तक अपना हृदय परमात्मा का मन्दिर नहीं दीखता तब तक घर–घर में भगवान के मन्दिर बनना आवश्यक है और जब घर केवल भोग भवन बन रहे हों, जहाँ पशु की, राक्षस की, असुर की पूर्ति हो रही हो तब गाँव के बाहर मन्दिर बनाना आवश्यक है और गाँव में मन्दिर में, धर्म की, उपासना साधना की चेतावनी न मिल सके तब तीर्थों में जाना आवश्यक है और जब तीर्थों में तत्वदर्शी सन्त न मिले तब स्वयं ही तीर्थ होना आवश्यक है।

प्रश्न–मन्दिरों तीर्थों के द्वारा ही क्या सनातन धर्म नहीं टिका है ?

उत्तर–मन्दिरों की बदौलत जीविका चलाने वाले धन मान भोग चाहने वाले ऐसा ही कहते हैं परन्तु विवेकी विद्वान देखते हैं कि प्रायः मन्दिरों तीर्थों में सनातन धर्म की ओट लेकर अहंकृति का पोषण हो रहा है। मन्दिरों के द्वारा सनातन धर्म नहीं टिक रहा है प्रत्युत सनातन धर्म के द्वारा मन्दिर बनाने या बनवाने वालों का देह रूपी मन्दिर दिख रहा है, उसी के द्वारा

सनातन जीवन प्रवाह का परिचय मिल रहा है। मनुष्य जो कुछ भी तीर्थ मन्दिर बनाता है वह सनातन प्रकृति के द्रव्यों से ही बनाता है परन्तु मनुष्य का बनाया हुआ मन्दिर एक दिन नरक बन जाता है। वह भगवान का मन्दिर नहीं, व्यक्ति के भोग का भवन रह जाता है और उसे वही देख पाते हैं जिनकी ज्ञान प्रकाश में दृष्टि खुली होती है।

जब मनुष्य सनातन धर्म से विमुख होने के कारण घर को मन्दिर नहीं बना पाता, परिवार के जनों को भगवान की मूर्तियाँ नहीं समझ पाता और समस्त कर्म भगवान की पूजा में परिणत नहीं कर पाता तब अहंकार की सन्तुष्टि तृप्ति के लिए धर्म के नाम पर मन्दिर की रचना करता है परन्तु वह भगवत् दर्शन का द्वार न बनकर प्रेम की विमुखता में भोग का ही द्वार बना रहता है। जिस सनातन धर्म के आश्रय में पृथ्वी सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र आदि टिके हुए हैं, जो समस्त विश्व ब्रह्माण्डों को धारण कर रहा है उस धर्म को मन्दिर टेके हुए हैं वह बालक ही कह सकते हैं।

प्रश्न–तीर्थ मन्दिर क्या धर्म स्थान नहीं हैं?

उत्तर–जहाँ कुछ बन जाता है या बनाया जाता है वह कर्म है पर धर्म नहीं है। धर्म के द्वारा ही संसार की प्रत्येक वस्तु दीख रही है। कोई वस्तु कोई सन्त महात्मा जगद्गुरु धर्म स्थान नहीं बनाता प्रत्युत धर्म के द्वारा ही व्यक्ति, सन्त महात्मा जगद्गुरु पद में प्रतिष्ठित होता है। कोई भगवान भी धर्म नहीं बनाता, धर्म स्थान नहीं बनाता अपितु धर्म की पूर्णता में वह भगवान देखा जाता है जाना जाता है। मनुष्य यदि धर्म स्थान बनाता है तो अहंकार की तृप्ति करता है । धर्म के आश्रय से मानवता द्वारा मनुष्य सिद्ध होता है। धर्म परायण मानव जहाँ रहता है वहीं मन्दिर बन जाता है।

प्रश्न–ग्रामों में नगरों में मन्दिर बनाना क्या अनावश्यक है ?

उत्तर–सम्पूर्ण गाँव देवत्व से, धर्म भाव से रहित होता है, जहाँ पूरा ग्राम मन्दिर नहीं हो पाता है तब अपवित्रता की सीमा में एक पवित्र स्थान, मन्दिर बनाया जाता है। अशुद्ध क्षेत्र में शुद्ध स्थान, अर्थात् मन्दिर बनाने की आवश्यकता होती है, जहाँ चारों ओर नरक है वहाँ सुविधा की सांस लेने के लिए शुद्ध स्थान मन्दिर की अपेक्षा है। जहाँ सब ओर डुबाने वाला क्षेत्र है वहीं पर तारने वाले स्थान तीर्थ की आवश्यकता है।

प्रश्न–भारतवर्ष में ऐसे भी मन्दिर हैं तीर्थ स्थान हैं जहाँ जाते ही शान्ति मिलती है क्या यह मन्दिर का महत्व नहीं है ?

उत्तर–मन्दिरों में ही नहीं किसी को मस्जिदों में गिरजाघरों में, वनों, सरिताओं के तटों में, श्मशानों में, खण्डहरों में, वाटिकाओं में शान्ति प्रतीत होती है किन्तु इन्हीं सब स्थानों से जब लौटने का संकल्प होता है और कदाचित लौटने में बाधा उपस्थित हो जाती है, यातायात के साधन सुलभ नहीं होते, कई दिन तक टिकट मिलने की सम्भावना नहीं रहती है तब जहाँ शान्ति मिलती थी वहीं घोर अशान्ति मिलती है। वास्तव में जहाँ कहीं जिस स्थान में, मन्दिर में, कोई मनुष्य शान्त होकर आगे पीछे का चिंतन मनन भूलकर देखता है तभी उसे शान्ति का अनुभव होता है। किसी दर्शक को मन्दिर में शान्ति नहीं मिलती वह दर्शक स्वयं शान्त होकर मन्दिर को, मूर्ति को, वहीं के दृश्य को देखता है और अपनी शान्ति की छाया में मुग्ध होकर कहने लगता है कि यहाँ अनुपम शान्ति है।

जिस मन्दिर में तीर्थ में, यात्री शान्ति का अनुभव करता हैं वहीं पर निवास करने वाले, लोभ मोह एवं कामनाओं की आसक्तियों के कारण अशान्त रहते हैं। वास्तव में किसी स्थान में न शान्ति है न अशान्ति है मनुष्य के भीतर ही अशान्ति है और निरन्तर शान्ति है।

प्रश्न–पवित्र देव स्थानों का क्या कोई प्रभाव ही नहीं होता ?

उत्तर–पवित्र स्थानों का, देवस्थानों का, मन्दिरों, तीर्थों का प्रभाव उतना ही शुभ सुन्दर शान्तिप्रद होता है जितना कि अशान्त मनुष्य अशान्त प्राणी वहाँ से दूर रहता है। अशान्त प्राणियों की उपस्थिति से वातावरण में अशान्ति फैलती है। शान्त मनुष्यों की उपस्थिति से शान्ति सुरक्षित दिखती है। कहीं–कहीं मौन प्रार्थना में शान्ति का अनुभव होता है और मन्दिरों की अमर्यादित घंटा आदि वाद्यों की तुमुलध्वनियों से अशान्ति चलती रहती है। कहीं जन समाज की अधिक उपस्थिति से तीर्थ भी नरक बन जाते हैं। पवित्र मनुष्य अपनी योग्यता पूर्वक आचार विचार व्यवहार से तीर्थों देव स्थानों को प्रभावशाली बनाता है। अपवित्र मनुष्य अपनी अयोग्यता से तथा दुराचार दुर्व्यवहार से पवित्र तीर्थ स्थानों के प्रभाव को दूषित कर देता है। योग्य मनुष्य नर्क को स्वर्ग बना देता है और अयोग्य मनुष्य स्वर्ग को भी नर्क बना देता है।

प्रश्न–अशान्त मनुष्यों को ही मन्दिरों तीर्थों में जाना आवश्यक है तब उन्हें दूर रखने के निर्णय आप क्यों देते हैं ?

उत्तर–वास्तव में अशान्त मनुष्य किसी मंदिर या तीर्थ में शान्ति के लिए नहीं जाता है, वह तो जिस तृष्णा कामना के कारण अशान्ति है उसी की पूर्ति के लिये जाता है इसीलिए वह स्थानीय शान्ति को अपनी उपस्थिति से ढक देता है।

प्रश्न–कोई–कोई युवावस्था से साधु संन्यासी हो जाते हैं और हजारों लोग वर्षों कथायें सुनकर भी घर क्यों नही छोड़ पाते ?

उत्तर–बहुत सावधान होकर समझ लो कि युवावस्था से ही कोई भी वस्त्र बदलकर, गेरुआ वस्त्र पहिनकर, रूप किशोर की जगह आत्मानन्द नाम बदलकर, बाबू साहब से स्वामी जी, संन्यासी जी बन सकता है परन्तु भीतर से जीवन पर्यन्त धन के लोभ को, तन के मोह को, अधिकार के अभिमान को एवं काम क्रोधादि विकारों को त्यागकर संन्यासी नहीं हो सकता। आज के समय में गेरुआ वस्त्र पहिनकर नाम स्थान बदलकर संन्यासी बनने वाले और उनके वेष को देखकर उन्हें संन्यासी त्यागी विरक्त सन्त मानकर पूजा करने वाले अविवेकी नर–नारियों का बहुत बड़ा समुदाय है। इसीलिए परमगुरु भगवान कृष्ण ने प्रत्येक बुद्धिमान विद्वान को बुद्धियोगी होकर देखने जानने समझने की बार–बार सम्मति दी है परन्तु मोहासक्त विद्वान भी बुद्धियोग का आश्रय नहीं लेते और मूढ़तापूर्वक मान मानकर मन को सन्तुष्ट करते हैं। तुम सावधान हो तो बाह्य वेश मात्र से किसी को सन्तसंन्यासी न मानो, बुद्धियुक्त होकर जानने का प्रयत्न करो। यदि समझ ठीक हो तो किसी संन्यासी साधु की खोज में न भागो, स्वयं ही भीतर से साधु सन्त संन्यासी होकर रहो। तुम बाहर कुछ न बदलो भीतर मान्यता को अहंकार को बदलो।

प्रश्न–तीर्थों में सहस्त्रों महात्मा क्या सुलभ नहीं हैं ?

उत्तर–बने हुए महात्मा संन्यासी अवश्य सुलभ होते हैं इसीलिये सच्चे महात्माओं तक श्रद्धालु पहुँच ही नहीं पाता वह आरम्भ में ही अटक जाता है। बने हुए संन्यासी महात्मा में जिस अहंकार के अथवा जिस अभिमान एवं लोभ लाभ की तृष्णा के दर्शन होते हैं वैसे दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हैं। संन्यासी महात्मा बनना किसी भी आलसी प्रमादी निर्धन दुखी के लिए

अतिसरल है परन्तु संन्यासी महात्मा होना अति कठिन है श्रम साध्य है, विवेक साध्य है अन्त में प्रभु कृपा साध्य है।

प्रश्न–बने हुए संन्यासी महात्मा की क्या पहिचान है ?

उत्तर–जो वेष परिवर्तन, नाम परिवर्तन कर लेता है पर भीतर स्वभाव नहीं बदल पाता। अभक्तों का संग करता है। ज्ञान में स्वयं को न देखकर दम्भ से सदा दूसरों की कमी देखता है। अपने दोषों को छिपाता रहता है। अध्ययन से ज्ञान का अभिमान बढ़ता है किन्तु ज्ञान में अहंकार को नहीं देख पाता। अधिक बोलता है, दूसरों को उपदेश देने के लिए आतुर रहता है। विषय भोगों की कामना नहीं छोड़ पाता। ऊपर से विरक्ति दिखाकर भीतर से आसक्त रहता है। अधिक भोजन तथा अनियमित निद्रा, हँसी विनोद, व्यर्थ वार्ता में संकोच नहीं करता। अनुकूल सेवा न बन पाने से क्रोध करता है। काम विकार से ग्रसित रहकर नारियों के रूप का मोही बना रहता है। निन्दक के प्रति द्वेष करता है। दूसरों की निन्दा करता है। आलसी और शौकीन होता है। प्रसिद्धि की कामना प्रबल रहती है। मान बड़ाई की सर्वत्र चाह रहती है। शिष्य बनाने की तृष्णा प्रबल रहती है। आवश्यकताओं को बढ़ाता जाता है। दूसरों के दोष दिखाकर अपने को श्रेष्ठ दिखाता है। यह सब बने हुए वेषधारी संन्यासी महात्मा के कुलक्षण हैं।

प्रश्न–प्रयत्न करते हुए भी कभी सफलता के साथ असफलता क्यों होती है ?

उत्तर–प्रायः पुण्य के योग से सफलता और पाप के योग से असफलता मिलती है। लोभी मोही कामी की सफलता में पुण्य सहायक होते हैं और परमार्थी साधक की सफलता, ज्ञानपूर्वक सेवा त्याग एवं दान पर निर्भर रहती है।

यदि कोई साधक अज्ञान में आनन्द प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है तो अन्त में दुःख ही भोगता है।

अज्ञान में स्वतंत्र स्वाधीन होने का प्रयत्न करता है तब तो वह परतंत्रता, पराधीनता में ही रह जाता है। अज्ञान में जिसे जीवन मानता है वह मृत्यु से घिरा मिलता है। तुम ज्ञान से देखो और विधिवत् प्रयत्न करो। आत्मज्ञान ही ज्ञान है।

प्रश्न—सन्त बनने के लिए हम क्या करें ?

उत्तर—सन्त बनना हो तो वेष बदल डालो नाम बदल दो। और यदि सन्त होना है तो ऊपर से कुछ न बदलो—भीतर स्वभाव बदलो आज से सहन करना आरम्भ कर दो। सेवा तप भजन करने में जितनी प्रतिकूलतायें आयें सब सहन करो। अतिशय सहन करने वाला सन्त होता है। अविनाशी परमात्मा का प्रेमी ही अति सहिष्णु होता है। एक पठान श्री एक एकनाथ के स्नान करने के पश्चात् थूक देता था, 108 बार थूका एकनाथ ने 108 बार स्नान किया तब वह सन्त जानकर चरणों में गिरकर क्षमा माँगी। सन्त एकनाथ ने उसे धन्यवाद दिया कि तुमने मुझे 108 गोदावरी स्नान का लाभ दिलाया इसमें मैं क्षमा क्या करूँ। महान् विपत्ति में जिसका धैर्य न टूटे प्रभु आश्रय न छूटे वही सन्त है। सन्त वही जो पूर्ण सहिष्णु हो, तितिक्षु हो, इसके साथ अत्यन्त करुणावान हो और सभी प्राणियों के प्रति सुहृद्भाव हो। जो दैवी गुणों से सम्पन्न है वही सन्त है।

सन्त ही समृद्ध होता है। सन्त कुछ नहीं चाहता इसीलिये उसकी स्वतन्त्रता अनन्त हो जाती है।

सन्त अन्तबल से विमुख रहकर अनन्त में शान्त रहता है।

प्रश्न—ज्ञान और योग में क्या अन्तर है ?

उत्तर—ज्ञान में केवल देख लेना मात्र है करना कुछ नहीं है। अन्धकार को मिटाने के लिए प्रकाश में केवल आँख खोल कर देखते ही रहना है, अन्धकार के साथ कुछ नहीं करना है।

योग में उन बाँधने वाली जंजीरों को काटना है श्रम करना है जिन जंजीरों से अज्ञान में बँध गये हैं।

ज्ञान में दर्शन होता है योग में बन्धन काटकर मिलन होता है।

प्रश्न—गीता के कर्मयोग ज्ञान योग भक्तियोग में परम श्रेष्ठ क्या है ?

उत्तर—तुम जहाँ से चलना आरम्भ कर सको वही परमश्रेष्ठ है जो साधक जिस मार्ग से पहुँचेगा उसके लिए वही परम श्रेष्ठ होगा। गीता में सभी प्रकार के साधकों के लिए भिन्न—भिन्न स्वभावानुसार चर्चा की गई है।

प्रश्न—शास्त्रों में कहीं सब कुछ ब्रह्म है, कहा है और कहीं सब कुछ मिथ्या है ऐसा क्यों कहा है?

उत्तर—बाहर देखने वाला सब कुछ परमात्मा ही है—ऐसा देखते—देखते विराट विश्व के रूप में ही ब्रह्म को देखता है और भीतर अन्तर्मुखी साधक

भीतर जाते–जाते इतना शून्य शान्त हो जाता है कि भीतर कुछ शेष रहता ही नहीं वहाँ 'मैं हूँ' भी नहीं रह जाता तब केवल पूर्ण शेष रहता है। बहिर्दर्शी पूर्ण होकर और अन्तर्दर्शी शून्य होकर अखण्ड अनन्त का अनुभव करता है।

प्रश्न–भगवद्लीला का क्या अर्थ है ?

उत्तर–जिस कर्म में कर्त्तापने का अहंकार न हो वही लीला कही जाती है। निष्काम होकर दूसरों की सन्तुष्टि तृप्ति तथा हित के लिए जो किया जाता है वही लीला है। जीवफलाशा को लेकर कर्म करता है और ईश्वर दूसरों को फल देने के लिए सब कुछ करता है इसीलिए उसकी लीला मात्र है। लीला और चरित्र में अन्तर है।

प्रश्न–भक्त और भगवान में क्या अन्तर है ?

उत्तर–जिसमें पूर्ण ऐश्वर्य है (जो किसी से पराजित न होकर सभी को अपने आधीन रखे वही ऐश्वर्यवान है) जिसमें सर्व को धारण करने की महान शक्ति है। अर्थात् पूर्ण धर्म है, जिसमें पूर्ण वैराग्य है, पूर्ण आनन्द है, जिसमें पूर्ण सौन्दर्य है, जिसमें सम्पूर्ण ज्ञान है, जो सर्वज्ञ है वही भगवान है।

जो किसी के आधीन न होकर इन्द्रियों को अपने आधीन रखकर संसार में अनासक्त रहता है वही पूर्ण कीर्तिवान, पूर्ण ज्ञानयुक्त, पूर्ण आनन्दमय श्रृष्टिकर्ता, स्थितिदाता, और लय करने वाला भगवान कहा जाता है, ईश्वर कहा जाता है।

जो सांसारिक अनुकूलता प्रतिकूलता से प्रभावित विचलित न होकर निरन्तर भगवान के साथ अभिन्नता का अनुभव करता रहता है, जिसका मन भगवानमय है वही भक्त है।

प्रश्न–समाज का सुधार तथा भ्रष्टाचार की निवृत्ति कैसे हो ?

उत्तर–तुम अपना सुधार करने में प्रमाद न करो तब तो समाज कुछ अंशों में अवश्य सुधर जायेगा, यदि दूसरों के सुधार की चिन्ता करते रहोगे तब तो अपने बिगड़ने को भी नहीं देख पाओगे। समाज का सुधार तो प्रभु भी नहीं कर पाये थे समझाने का कर्त्तव्य पूर्ण किया था पर दुर्योधन को या अपने ही कुल को समझा न पाये थे ।

तुम भ्रष्टाचारियों को देखते हुए प्रभु की कृपा का सहारा लिये रहो जिससे कि तुम भी उन्हीं की तरह न हो जाओ। तुम न ही तो किसी की

निन्दा करो, न किसी से घृणा करो, न किसी के सुधारने का साहस करो। सबके भीतर कल्याणकारी परमात्मा विद्यमान है वही अपने मंगलमय विधान से सबका कल्याण कर रहा है। तुम्हारे लिये भी वही कल्याण का प्रेरक है। सदा प्रभु की दया कृपा का अनुभव करते हुए सदा शान्त प्रसन्न सम और सहिष्णु बने रहो। दूसरों के सुधार का संकल्प भी अहंकार में ही होता है। अतः तुम संकल्प का त्याग कर संकल्प रहित होकर नित्य चेतन परमात्मा के योग का अनुभव करो। प्रभु जिसे सुधार के लिए भेजते हैं वही सुधारक हो पाता है।

प्रश्न–कथा में श्रवण की बहुत अधिक महिमा क्यों गाई गई है?

उत्तर–किसी की कथा सुनते ही मन तदाकार हो जाता है। जगत् के जीवों की कथा सुनने से सुखैश्वर्य एवं सुखोपभोग में रागासक्ति बढ़ती है, भय बढ़ता है, संशय सन्देह बढ़ते हैं, सत्य परमात्मा में, असत् जगत् के नाम रूप ही सत्य प्रतीत होते हैं, घोर मोह की वृद्धि होती है।

भगवत कथा सुनते रहने से निर्भयता दृढ़ होती है। सन्देह, भ्रम, अज्ञान की निवृत्ति होती है। प्रेम स्वरूप से हृदय में परमप्रभु प्रगट होने लगते हैं।

सभी में प्रभु के दर्शन की दृष्टि सुलभ होती है। जगत् के नामरूपों के प्रति आसक्ति, प्रभु के प्रति परम प्रेम में परिणत हो जाती है।

जो यहि कथा सनेह समेता ।
सुनिहहिं कहिहहिं समुति सचेता।।
होइहैं रामचरण अनुरागी ।
कलिमल रहित सुमंगल भागी ।। (रामायण)

प्रश्न–गृहस्थ भक्त और वनस्थ ज्ञानी की साधना में क्या अन्तर है ?

उत्तर–गृहस्थ भक्त में अत्यन्त भगवद् प्रेम की प्रधानता रहती है, वह सभी में भगवान को देखने का अभ्यासी होता है। वनस्थ ज्ञानी में अत्यन्त वैराग्य की प्रधानता होती है, वह दृश्य मात्र को मिथ्या जानकर अन्तरात्मा में ही शान्त स्वस्थ रहता है।

प्रश्न–आत्मा को पाने के लिए क्या किया जाये ?

उत्तर–आत्मा तो है ही उसे पाने के लिए कुछ नहीं करना है उसके होने का ज्ञान ही उसे पा लेना है। जो वर्तमान में प्रत्यक्ष नहीं है उसे पाने के लिए कुछ करना पड़ेगा।

संसार की प्रत्येक वस्तु कर्म के द्वारा मिलती है परन्तु आत्मा कुछ न करके मिला हुआ दीखता है।

जब तक मनुष्य मुक्त भक्त धर्मात्मा बनने के लिए धर्म स्थान बनाता है, मन्दिर बनाता है, पुजारी बनता है, अथवा जो कुछ भी बनाता है और स्वयं कुछ बनता है तब तक सत्य से परमात्मा से विमुख ही रहता है।

आत्मा, जीवन का नित्य प्राप्त सत्य है वह खोया नहीं है, खो सकता नहीं है, वह हमारे प्राणों का प्राण है, केवल उसकी विस्मृति हो रही है, क्षण–क्षण सावधान रहकर आत्मा की, जीवन की, निरन्तर सत्य की स्मृति जगानी है। यही स्मृति प्राप्त करने के लिए कोई जप करते हैं कोई सुरति योग का अभ्यास करते हैं। किसी भी साधना के द्वारा जो कुछ पाने की या देखने की आशा करते हैं, वह तो उनका काल्पनिक सत्य होता है, सुनकर माना हुआ परमात्मा होता है। जो कुछ बाहर मिलता है, वह कभी छूटता भी है परन्तु सत्य परमात्मा मिला ही है, केवल स्मरण होते ही सुलभ दीखता है। परमात्मा की विस्मृति न होना ही उसका निरन्तर योग होना है, उससे नित्य युक्त रहना है।

प्रश्न–परलोक के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर–यदि परलोक में सुखोपभोग चाहिए तो दान पुण्य में ही शक्ति सम्पत्ति का उपयोग करना चाहिए।

यदि परलोक से मुक्ति चाहिए तब कर्तापने के अभिमान को छोड़कर द्रष्टा होकर आत्मा में विश्राम लेते रहना चाहिए । सारा काम प्रकृति में होते हुए देखना चाहिए। यदि भगवद् भक्ति चाहिये तो केवल भगवद् प्रेम में ही नित्य तृप्त सन्तुष्ट रहना चाहिए।

यदि शान्ति चाहिए तो संसार में किसी वस्तु व्यक्ति से सुख की आशा कामना नहीं रखना चाहिए। कुछ न चाहने से शान्ति, भगवान को ही अपना मानने से भक्ति और किसी को अपना न मानने से मुक्ति सुलभ हो जाती है।

प्रश्न–प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो करना चाहिए उसे न करते हुए अकरणीय कर्म करना प्रमाद है, विपरीत बुद्धि होना, मन में मद भर जाना प्रमाद है।

कर्त्तव्य को भूलते रहना, स्वरूप को भूले रहना, प्रभु को भूल जाना ही प्रमाद है।

प्रश्न–ब्राह्मणों के मतानुसार जप सन्ध्या पूजा पाठ ही क्या नित्य धर्म है ?

उत्तर–जप सन्ध्या पूजा पाठ ही, धर्म नहीं है, मनुष्य की उन्नति के लिए जप सन्ध्या पूजा पाठ भी, धर्म है। इस नित्य कर्त्तव्य को पालन करने से तत्काल लाभ भले ही न दिखाई दे परन्तु इनको नहीं करने से समय का दुरुपयोग तत्काल दिखता है।

विद्वान सज्जन, जप सन्ध्या पूजा पाठ को कर्त्तव्य कर्म जानते हुए इतने से ही सन्तुष्ट नहीं रहते, वे सत्य में, दया में, श्रम में, सेवा में, दोषों के त्याग में, तप में, दान में, ज्ञान में, श्रद्धा करते हुए तद्नुसार आचरण में लाते हैं।

प्रश्न–भिखारियों को देना क्या उन्हें आलसी नहीं बनाना है ?

उत्तर–जब तक किसी प्रकार की चाह है तब तक सभी भिखारी हैं। कोई मुख से माँगते हैं, कोई पापों से तरसते रहते हैं कोई पूर्ति के लिए मन से व्यथित रहते हैं। कोई पैसा मांगता है कोई संयोग–भोग का सुख मांगता है। कोई मान चाहता है। कोई प्यार तथा अधिकार चाहता है। कोई वस्तु चाहता है, कोई वोट ही चाहता है। संसार से चाहने वाला सदा भिखारी ही बना रहता है। जो किसी से कुछ लेता है, उसे देना भी चाहिए। देने वाला उदार होता है लेने वाला दरिद्र दीन बना रहता है अतः कुछ–न–कुछ पात्र की योग्यता अनुसार देने योग्य को देते रहना ही शुभ है सुन्दर है। हर किसी को उसके श्रमानुसार योग्यता तथा आवश्यकता का निर्णय करते हुए जहाँ तक जो कुछ दे सको धन, मान, प्यार, अधिकार, सुख सन्तोष देते रहो।

प्रश्न–हमें आत्मा परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर–जो कुछ तुम्हें ज्ञात है उससे सम्बन्ध न रखने पर जो अज्ञात परमात्मा है वही शेष रह जाता है।

अहंकार द्वारा आत्मा परमात्मा नहीं मिलता, अहंकार के न रहने पर वही आत्मा रह जाता है जो अहंकार का जीवन है। अहंकार का खो जाना ही आत्मा का रह जाना है।

जिसकी सत्ता से तुम सब कुछ करते रहते हो जब कुछ न करोगे तब मौन होकर शान्त रहकर उसी का अनुभव कर सकोगे ।

प्रश्न–मन को वश में करने की सरल साधना क्या है ?

उत्तर–बाहर जिससे विरोध करते हो भीतर उसे पकड़े ही रहते हो जिसे बाह्य चेतना में भुलाया हटाया जाता है वही अन्तर चेतना में बस जाता है।

मन से लड़ो नहीं उससे उतर ठहरकर उसकी चंचलता को देखते रहो। देखते ही वह नहीं रहेगा, न देखने पर तुम्हें ले भागेगा।

जिसे तुम हटा नहीं सकते, रोक नहीं सकते, भुला नहीं सकते, उसी के आधीन हो। क्योंकि उससे कुछ चाहते हो, या फिर ऋणी हो, इसीलिए जिसे जो कुछ देना हो वह दे दो, जो कुछ लेना हो वह छोड़ दो, तभी मन शान्त होगा ।

प्रश्न–भजन करते हुए कष्ट दुःख क्यों बाधा डालते हैं ?

उत्तर–जहाँ तक भजन करने वाला अहंकारी बना रहेगा वहीं तक दुःख कष्ट पीड़ा सन्ताप रहा करते हैं।

हजारों नर नारी ईश्वर के नाम जप को ही भजन मानते हैं नाम जपने वालों के अपेक्षा वह लोग ईश्वर के निकटवर्ती भक्त सिद्ध होंगे जो ईश्वर का काम करते हैं। दीन दुखी गरीब की सेवा सहायता करना, दीनबन्धु भगवान का काम करना है। पानी पानी रटने से प्यास नहीं बुझती, पानी पीने से प्यास बुझती है। राम राम रटते हुए राम की सेवा करना ही सच्चा भजन है।

जो राम के अनुशासन को मानते हुए तद्नुसार आचरण करता है वही राम का भजन करता है।

राम नाम लेते हुए जब मन राममय हो जाये और बुद्धि राम तत्व के ज्ञान मय हो जाये साथ ही अहंता राम के प्रेम में डूब जाये तभी भजन की पूर्णता है। निष्पाप निर्द्वन्द्व होने पर ही भजन पूर्ण होता है।

प्रश्न–हम सच्चे त्यागी तपस्वी तथा प्रेमी भक्त कैसे बन सकते हैं ?

उत्तर–जब तक कुछ बनना चाहोगे, कुछ से कुछ होना चाहोगे तब तक परमात्मा से पृथक् ही रहोगे, कुछ बनने की या होने की कामना

छोड़कर परमात्मा से नित्य सम्बन्धित तुम अपने आपको उसी रूप में देखो जैसे कि हो।

प्रश्न–हम ज्ञान योग द्वारा सत्य का साक्षात् कैसे कर सकते हैं ?

उत्तर–अटूट धैर्य द्वारा ही ज्ञान योग की सिद्धि होती है। जब काम विकार नहीं रहेगा, किसी से द्वेष नहीं रहेगा, आलस्य को स्थान नहीं मिलेगा, रोग का आक्रमण नहीं होगा, कोई संशय नहीं होगा तब ज्ञान में सत्य का साक्षात् होगा। कोई भी आसुरी वृत्ति परमात्मा के साक्षात्कार में बादल की भाँति आवरण बन जाती है।

प्रश्न–लोभ मोह कामादि विकारों से मुक्ति कैसे मिलती है ?

उत्तर–जहाँ तक पंच भूतों की बनी देह रहेगी, अहंकार बुद्धि मन चित्त कार्य–करण रहेंगे, जहाँ तक निर्गुण मयी प्रकृति का कार्य चलेगा, दस इन्द्रियाँ जब विषयोन्मुख रहेंगी, जब तक इच्छा रहेगी, सुख दुख की प्रतीति रहेगी, जहाँ तक धारणाशक्ति का सम्बन्ध जगत् के नाम रूपों से रहेगा तब तक विकारों से सम्बन्ध नहीं टूटेगा फिर भी जितनी अधिक दैवी वृत्तियाँ जाग्रत होकर सशक्त होती जायेंगी वहाँ तक विकारों के विपरीत सद्‌गुणों की प्रधानता बढ़ती जायेगी। सद्‌गुणों की वृद्धि द्वारा विकारों से मुक्ति मिलेगी।

प्रश्न–पराजित न होने का कोई मन्त्र है ?

उत्तर–तन्त्र शास्त्र में एवं वेद में अनेकों मन्त्रों, अनुष्ठानों का वर्णन है व्यवहार में जो सहनशीलता रूपी कवच को धारण करता है वही अन्त में जीतता है। परमात्मा की अनन्त शक्ति का आश्रय लेकर धैर्य से चोटों को सहते रहो। जो धैर्य से सहन नहीं करता वही टूटता है।

प्रलोभन से विचलित नहीं होना ही विजय के लक्षण हैं। अपने चित्त के प्रति सम्यक् जाग्रति ही जीवन विजय का मुहूर्त है।

प्रश्न–महात्मा और परमात्मा में क्या अन्तर है ?

उत्तर–जो मिले हुए सर्वस्व को परमात्मा के अर्पण करता है। जो दैवी सम्पत्ति से अर्थात् दिव्य ज्ञान, दिव्य गुणों से संयुक्त रहता है वही महात्मा होता है।

जो जीवात्मा को अपनी दया से सब कुछ देता जाता है वही परमात्मा कहा जाता है।

जिसमें कामनायें रहती हैं वही जीवात्मा, जिसकी सत्ता से अथवा जिसकी दया में कामनाओं की पूर्ति का सुख मिलता है वही परमात्मा और जिसमें कामनाओं का त्याग हो जाता है वही महात्मा। परमात्मा सभी को सुलभ है परन्तु महात्मा दुर्लभ है।

प्रश्न–धनाभाव से दुखी न होने का क्या उपाय है ?

उत्तर–लाखों पशु हैं जो धन न होने से दुःखी नहीं हैं। जो धन के लोभी हैं वह धनाभाव से दुखी रहते हैं। यदि धन की तृष्णा छोड़ दी जाये तो धनाभाव का दुःख नहीं रहता ।

अनेकों व्यक्ति सुखद वस्तुओं के न मिलने से दुखी होते हैं और वस्तुओं की प्राप्ति धन से होती है। यदि वस्तुओं की कामना नहीं रहे तब धनाभाव का दुख मिट जाता है। वस्तुओं की कामना तभी नहीं रहेगी जब सुखोपभोग की इच्छा न रहेगी, सुखोपभोग की इच्छा तभी नहीं रहेगी जब ज्ञान द्वारा सुख निस्सार दिखेगा और सन्तोष होगा। इसके साथ ही प्रेम से भरे हुए हृदय द्वारा दूसरों की सुख देते रहने का स्वभाव होगा ।

प्रश्न–धनाभाव में कन्या के अविवाहित रहने के दुख को कैसे दूर करें ?

उत्तर–पुत्र पुत्री अपने भाग्यानुसार ही निर्धन या धनवान घर में जन्म लेते हैं शरीर, संयोग, सम्पत्ति, सम्बन्ध, भाग्यानुसार स्वतः जुड़ते हैं, तुम पुत्री पुत्र के भाग्य को देखते हुए कर्त्तव्य पालन करो, जो कुछ कर सकते हो उसमें आलस्य न करो, जो नहीं कर सकते हो उसकी चिन्ता में दुखी न बनो। समस्त दुःख मन की प्रतिकूलता के कारण होते हैं और प्रतिकूलता की वेदना अनुकूलता के रागवश होती है अनुकूलता का राग अज्ञान में दृढ़ होता है। अज्ञान को ज्ञान में देखने से दुःख का अन्त हो जाता है।

प्रश्न–झूठ बोलने वाले पर क्रोध न आने के लिए क्या उपाय है ?

उत्तर–तुम सत्य बोलने के मिथ्या अहंकार को अपने साथ देखने लगा तब तो दीखने लगेगा कि तुम स्वयं भी झूठ ही बोल रहे हो, इतना ही नहीं दिन रात झूठ में ही जी रहे हो, झूठ ही देख रहे हो और पता नहीं लगता कि झूठ के साथ ही सन्तुष्ट हो रहे हो तुम्हारा सारा व्यक्तित्व झूठ में ही चल रहा है। झूठ से सम्बन्धित होकर ही कहीं मोही, कहीं लोभी, कहीं

अभिमानी बन रहे हो। झूठ बोलने से देखने सुनने से जो लाभ होता है वह झूठ ही होता है प्रायः बिना लाभ के ही झूठ बोलने की आदत बन गई है। यदि क्रोध ही करना है तो अपने भीतर झूठ बोलने वाले पर क्रोध करो, असत्य से मोह करने वाले पर, असत के लोभी तथा असत अनित्य वस्तुओं के अभिमानी पर क्रोध करो।

एक अविनाशी आत्मा परमात्मा ही सच है उसमें अतिरिक्त जो प्रकृति से प्रतीत होता है वह असत् है अनित्य है।

प्रश्न–पाँच तत्व कौन हैं ?

उत्तर–आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, यह पाँच तत्व हैं।

प्रश्न–पाँच तत्वों से किसकी उत्पत्ति हुई है?

उत्तर–पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, पाँच विषय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन तत्त्वों की उत्पत्ति हुई है।

प्रश्न–पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कौन हैं ?

उत्तर–कान, त्वचा (खाल),आँख, जीभ और नाक यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।

प्रश्न–पाँच कर्मेन्द्रियाँ कौन हैं ?

उत्तर–वाणी (जिससे बोलते है), हाथ, पैर, उपस्थ (जिससे मूत्र त्याग करते हैं), गुदा (पाखाना त्याग करने की इन्द्री) यही पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

प्रश्न–ज्ञानेन्द्रियों से क्या ज्ञान होता है ?

उत्तर–कान के द्वारा शब्द सुनने का, त्वचा के द्वारा स्पर्श (गरम शीतल) का, आँख के द्वारा रूप देखने का (अच्छा या बुरा), जीभ के द्वारा रस (स्वाद लेने, खट्टा, मीठा, कडुवा आदि) का, नाक के द्वारा गंध (दुर्गन्ध, सुगन्ध) का ज्ञान किया जाता है।

प्रश्न–कर्मेन्द्रियों के द्वारा कौन कौन से कर्म होते हैं?

उत्तर–वाणी से बोलने का, हाथ द्वारा लेना देना और छूना, पैरों के द्वारा चलना दौड़ना, उपस्थ से पेशाब त्याग करना, और गुदा के द्वारा मल का त्याग करना, यही कर्मेन्द्रियों के कार्य हैं।

प्रश्न–ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति किन तत्वों से हुई है ?

उत्तर–आकाश से कान और वाणी की, वायु से त्वचा और हाथ, अग्नि से आंख और पैर की, जल से जीभ और उपस्थ की, पृथ्वी से नाक और गुदा की उत्पत्ति हुई।

प्रश्न–पांच विषय कौन हैं ?

उत्तर–शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह पांच विषय हैं ।

प्रश्न–विषयों की उत्पत्ति किन तत्वों से हुई है ?

उत्तर–शब्द की आकाश से, स्पर्श की वायु से, रूप की अग्नि से, रस की जल से और गन्ध विषय की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई है।

प्रश्न–विषयों से और जीवन से क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर–संसार की भोग सुखों की पूर्ति के लिए विषयों की तथा इन्द्रियों की आवश्यकता है।

प्रश्न–इन्हें विषय क्यों कहते हैं ?

उत्तर–विषयों के सुखोपभोग के कारण जीव बार–बार जन्म मरण, सुख दुःख के चक्कर में पड़ता है, इसीलिए इन्हें विषय कहते हैं। जिस प्रकार शराबादि पीने वाले को प्रारम्भ में अच्छा लगता है परन्तु उसके परिणाम में दुःख उठाना पड़ता है। इसी प्रकार विषयों के सुख में जो सुख की प्रतीति होती है, उसके परिणाम में भयंकर दुःख उठाना पड़ता है।

प्रश्न–विष और विषयों में क्या अन्तर है ?

उत्तर–विष के खाने से ही कोई मरता है, बुद्धि खराब होती है। विषयों को देखने से ही इनकी और प्रवृत्ति हो जाती है। विषयोपभोग में बार–बार मरना पड़ता है इसी से इसमें ''य'' शब्द अधिक है। अतः इन्हें विषय कहते हैं।

किसी सन्त का वचन है –

विष से विषयों में भरी, मादकता अधिकाय ।
विष खाये बौरात है, विषय देखि बौराय ।।

प्रश्न–विषयों के सुख भोग में जब दुःख मिलता है तब उनकी ओर प्रवृत्ति क्यों होती है?

उत्तर–विषय सुख में इतनी आसक्ति हो गई है कि दुःख होते हुए भी प्राणी उसका त्याग नहीं करता है।

प्रश्न–विषयों के दुःखद परिणाम से कैसे छुटकारा मिलेगा, इसका क्या साधन है ?

उत्तर–विषय भोग के दुखद परिणाम पर दृष्टि रखने पर, धर्मपूर्वक जीवन चलाने पर, दृढ़ व्रत लेकर संयम करने पर, विषयों के दुःखद परिणाम से मुक्ति होती है।

प्रश्न–विषयों का सुख तो सभी जीवों को मिलता है फिर मानव जीवन में इसका क्या महत्व है ?

उत्तर–मानव जीवन विषयों के भोग के लिए मिला ही नहीं है। मानव जीवन तो विषय भोगों से विरक्त होकर परमानन्द को प्राप्त करने के लिए मिला है।

श्री भगवान राम ने अयोध्यावासियों को यही सन्देश दिया है –

यहि तन कर फल विषय न भाई ।
स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुःखदाई ।।
नर तन पाइ विषय मन देहीं ।
पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं ।।

अर्थ–श्री भगवान् रामजी कहते हैं कि इस मनुष्य शरीर के पाने का फल विषय भोग नहीं है, यह तो अन्य पशु पक्षी आदि योनियों में बड़ी स्वतन्त्रतापूर्वक मिल जाते हैं। मानव जीवन में यदि स्वर्ग जैसा भी सुख विषयों में मिले वह भी छोटा है क्योंकि सभी प्रकार के सुख का अन्त दुःख होता है।

जो मनुष्य शरीर पाकर परमार्थ का साधन नहीं करते हैं, जिनकी विषयों की ओर प्रवृत्ति रहती है, वह अमृत को फेंक कर मानों विष का पान करते हैं ।

प्रश्न–किस तत्व में कौन से गुण हैं ?

उत्तर–आकाश में शब्द, वायु में शब्द और स्पर्श, अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप, जल में शब्द, स्पर्श, रूप, और रस, पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं।

प्रश्न–इनका स्पष्ट विवेचन करिये ।

उत्तर–आकाश से केवल शब्द का ज्ञान होता है। आकाश में स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान नहीं होता है। वायु के चलने में शब्द भी होता है और वायु का स्पर्श भी होता है। परन्तु वायु को देख नहीं पाते हैं, स्वाद तथा गन्ध भी नहीं है। अग्नि जब जलती है तब शब्द होता है उसकी उष्णता का भी ज्ञान होता है अग्नि के रूप का भी ज्ञान होता है। परन्तु अग्नि के स्वाद और गन्ध का ज्ञान नहीं होता है। जल में शब्द, स्पर्श, रूप

और रस भी है। जल में गन्ध नहीं है। पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध सभी प्रकार का ज्ञान होता है।

प्रश्न–**शब्द कितने प्रकार के होते हैं ?**

उत्तर–(1) ध्वनि स्वरूप, जैसे मृदंग बाजे में होता है ।

(2) वर्ण स्वरूप जो वाणी से बोला जाता है।

प्रश्न–**स्पर्श कितने प्रकार का होता है ?**

उत्तर–शीतल, गरम और सम यह तीन प्रकार का है।

प्रश्न–**रूप कितने प्रकार के हैं ?**

उत्तर–रूप नीला, श्वेत, पीला, लाल आदि कई प्रकार के होते हैं।

प्रश्न–**रस कितने प्रकार के हैं ?**

उत्तर–मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और काषाय यह छः प्रकार का है।

प्रश्न–**गन्ध कितने प्रकार की होती है ?**

उत्तर–गन्ध, सुगन्ध और दुर्गन्ध दो प्रकार की है।

प्रश्न–**पाँच प्राण कौन से हैं ?**

उत्तर–व्यान, समान, उदान, प्राण और अपान यह पांच प्राण हैं।

प्रश्न–**प्राणों की उत्पत्ति किन तत्त्वों से हुई है?**

उत्तर–व्यान की आकाश से, समान की वायु से, उदान की अग्नि से, प्राण की जल से और अपान की पृथ्वी तत्त्व से हुई है।

प्रश्न–**शरीर में प्राणों के द्वारा कौन–कौन क्रियायें तथा कर्म होते हैं ?**

उत्तर–**व्यान**–वायु का मुख्य स्थान उपस्थ मूल के ऊपर है। सर्वांग नाड़ियों में संचरित होकर तृप्ति पहुंचाता है। शरीर में रुधिर का संचार इसी व्यान वायु के द्वारा होती है।

समान–जो वायु नाभि से हृदय तक रहता है, प्राण अपान का ग्रन्थि रूप है, जठराग्नि को प्रज्वलित करता है, इसी के द्वारा भोजन की पाचन क्रिया होती है।

उदान–जो वायु कण्ठ से सिर पर्यन्त गति करने वाला है। शरीर को उठाये रखना इसका काम है। उदान प्राण वायु के द्वारा ही मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से निकलना और सूक्ष्म शरीर के कर्म वासनाओं और संस्कारों के अनुसार गर्भ में प्रवेश करना। सिद्ध योगीजन इसी प्राण वायु के द्वारा स्थूल शरीर से निकल कर लोक–लोकान्तर का भ्रमण करते हैं ।

प्राण–बाहर की वायु को अन्दर ले जाना और अन्दर की वायु को बाहर निकालना, इसकी गति मुख और नासिका द्वारा होती है। भोजनादि को पचाना और अलग करना, अन्न की पुरीस, पानी को पसीना और मूत्र, रसादि से वीर्य बनाना प्राण वायु का कार्य है। हृदय से लेकर नासिका पर्यन्त शरीर के ऊपरी भाग में वर्तमान है। ऊपर की इन्द्रियों का काम इसी प्राण वायु के आश्रित है।

अपान–वायु का कार्य, गुदा से मल त्याग, उपस्थ से मूत्र त्याग, अण्डकोष से वीर्य निकालना तथा गर्भादि को नीचे ले जाना, कमर, घुटने और जांघ आदि की क्रियाएं इसी अपान वायु के द्वारा ही होती हैं। नीचे की ओर गति करता हुआ, नाभि से लेकर पैर के तलवों तक इसका वास स्थान है। नीचे की इन्द्रियों का काम इसके आधीन है।

नोट–प्राण वायु के पांच भेद और बताये गए हैं। नाग–वायु से छींकें आती हैं। कूर्म वायु सिकोड़ना और फैलाना, कृकल वायु क्षुधा पिपासा, देवदत्त से निद्रा, तन्द्रा, जमुहाई का आना, धनंजय वायु पोषणादि तथा मृतक होने पर देह को फुलाती है।

कहीं कहीं उदान वायु के द्वारा भी क्षुधा और प्यास का होना लिखा है।

प्रश्न–चतुष्टय अन्तःकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर–अन्तः कहते हैं भीतर को, करण कहते हैं इन्द्रियों को, अतः शरीर के अन्दर कार्य करने वाली इन्द्रियां ।

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, यही चतुष्टय अन्तःकरण है।

प्रश्न–यह सब अलग हैं या एक हैं ?

उत्तर–एक वृत्ति के चार प्रकार कर्म भेद से हो जाते हैं। जो वृत्ति किसी वस्तु के प्राप्त करने का संकल्प करती है वह 'मन' कहलाता है। वही वृत्ति वस्तु कैसे प्राप्त होगी इसका जब चिन्तन करता है, उसे 'चित्त' कहते हैं। जो वृत्ति वस्तु के प्राप्त करने का निश्चय करती है वह 'बुद्धि' कहलाती है। जब वही वृत्ति वस्तु के प्राप्त करने के निश्चय को धारण कर लेती है तथा वस्तु प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगती है उसे अहंकार कहते हैं। किसी से मिलकर तद्रूप हो जाना अहंकार है।

प्रश्न–आप कहते हैं कि वृत्ति एक है, हमें तो यह सब अलग–अलग प्रतीत होते हैं ।

उत्तर–वृत्ति एक ही है, गुण कर्मादि के भेद से ऐसा प्रतीत होता है। जैसे मिट्टी एक ही है परन्तु नाम रूप से बर्तनों और खिलौनों में भिन्नता मालूम देती हैं। जिस तरह एक ही व्यक्ति सुखी होता है तब सुखी, जब दुःखी होता है तब दुःखी, स्त्री के सामने पति, पुत्र के सामने पिता और पिता के सामने पुत्र होता है। इसी प्रकार एक वृत्ति के यह चार प्रकार हो जाते हैं।

प्रश्न–मन का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–वासनाओं का समूह ही मन है। जिस तरह इन्द्रियों का समूह शरीर है, अनेकों मकानों को मिलाकर गाँव होता है, अथवा संकल्प विकल्प को ही मन कहते हैं।

प्रश्न–मन का कार्य क्या है ?

उत्तर–मन का कार्य है, मानना और मनन करना, किसी वस्तु को देखने, सुनने या भोगी हुई वासना के अनुसार उसके प्राप्ति के लिए संकल्प उठाना ।

प्रश्न–मन एक है कि अनेक हैं । क्योंकि एक ही समय में कई कार्य हो जाते हैं ?

उत्तर–हम पहले ही कह चुके हैं कि जब वृत्ति ही एक है तब मन कई कैसे हो सकते हैं। एक साथ कई काम होने की जो प्रतीति होती है, वह मन की अनेकता नहीं है, मन की चंचल गति इतनी तेज होती है कि मालूम ऐसा पड़ता है कि मन एक साथ में कई कार्य करता है।

किसी पुस्तक में छेद करने पर ऐसा मालूम होता है, कि एक साथ ही छेद हो गया, परन्तु पहले पन्ने में छेद होने के बाद ही दूसरे पन्ने में छेद होता है। इसी प्रकार जिस समय जिस इन्द्रिय के साथ मन होता है उसी का ज्ञान होता है। अतः कान के साथ रहने से सुनना, आँख से देखना, नाक से सूँघना, त्वचा से स्पर्श का, जीभ से स्वाद का ज्ञान होता है। जब इन सबसे सम्बन्ध तोड़ लेता है तब किसी का भी ज्ञान नहीं होता है।

प्रश्न–भगवान का भजन करते समय मन इधर–उधर क्यों भागने लगता है, उस समय स्थिर क्यों नहीं होता है ?

उत्तर–मन भागता नहीं, मन तो अपनी ही जगह में रहता है। मन में देखी सुनी और भोगी हुई वासनायें रहती हैं, उन वासनाओं की स्मृतियां उठती हैं, उसी को साधक मन का भागना समझ लेता है।

जिस तरह तालाब तथा तालाब का जल कहीं आता–जाता नहीं है, वायु के स्पर्श से जल में लहरें उठतीं और विलीन होती रहती हैं। इसी प्रकार मन में भी स्मृतियाँ उठतीं और विलीन होती रहती हैं।

प्रश्न–मन की एकाग्रता का क्या साधन है?

उत्तर–अभ्यास और वैराग्य मन की एकाग्रता का साधन है।

प्रश्न–अभ्यास किसे कहते हैं ?

उत्तर–मन जिन संसार के विषयों का चिन्तन करता है उनमें सुख मानता है बार–बार उस ओर से मन को हटा कर भगवान के चिंतन में लगाना। क्रोध की जगह उदारता, स्वार्थ की जगह सेवा, इन्द्रिय लोलुपता की जगह जितेन्द्रियता, मोह की जगह प्रेम, झूठ की जगह सत्य, कटु कर्कश शब्दों की जगह मधुर और प्रिय शब्द बोलने आदि का बार–बार आचरण करना ही अभ्यास है।

संसार प्रपंच से हट कर एकान्त स्थान में बैठकर सब ओर से मन को हटा कर भगवान का ध्यान या जप करना भी अभ्यास है।

प्रश्न–कब जाने कि मन शुद्ध हो गया ?

उत्तर–जब बुराई की उत्पत्ति न हो और भलाई स्वतः होने लग जाय, और भलाई करने का अभिमान न हो। तब मन शुद्ध समझना चाहिए ।

प्रश्न–भजन करते समय मन चंचल होता है। उस समय मन की एकाग्रता के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर–मन में जो चंचलता हो रही है उसे देखो, उससे विरोध न करो, न उसका सहयोग दो और उससे तदात्म हो जाओ, यह सन्त सम्मति है। मन को किसी एक स्थान पर स्थिर कर दो, भगवान के चित्र पर, नाम पर, और स्वांस पर मन को लगा देने से भी कुछ काल के लिए स्थिरता आ जाती है।

एक सन्त के अनुभव के आधार पर जीभ को बीच में रखने से भी मन एकाग्र होता है।

अधिक देर तक नाम जप करने से भी मन में एकाग्रता आ जाती है।

जो कुछ सामने आवे सबसे अपने आपको हटाते चले जाओ, यानी सबसे असंग हो जाने पर भी मन एकाग्र हो जाता है।

प्राणायाम आदि की क्रियायें करने से भी मन एकाग्र हो जाता है।

सच्ची मन को एकाग्रता तभी आती है जब मन संसार के सुखों को निस्सार समझ कर उनका विचार पूर्वक त्याग कर देता है और परमेश्वर से अनुराग कर लेता है। तब मन की वास्तविक एकाग्रता आती है।

श्री सन्त तुलसीदास जी ने कहा है कि–

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा।
परसि कि होई विहीन समीरा।।
मन से सकल वासना भागी।
केवल राम चरन लौ लागी।।
निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।
कामादिक मद दम्भ न जाके।
तात निरन्तर बस मैं ताके।।

प्रश्न–भजन करने का स्थान, आसन और समय कौन होना चाहिए ?

उत्तर–भजन करने का स्थान, एकान्त (कोलाहल से दूर) स्वच्छ, हवादार, सुगन्धयुक्त (फूल, चन्दन, धूप, दीप आदि से युक्त) होना चाहिए।

ढाई फुट चौकोर लकड़ी की चौकी, उसके ऊपर शुद्ध ऊनी या सूती वस्त्र, कुश की आसनी, उसके ऊपर रूई की गद्दी या मोटा कपड़ा होना चाहिए। जो मृग चर्म इस्तेमाल कर सके तो वह भी होना चाहिए।

समय प्रातःकाल 4 बजे से 7 बजे तक, सांयकाल 7 बजे से 10 बजे तक ऋतु तथा अपने दैनिक कार्यों के अनुसार एक समय नियत कर लेना चाहिए। अधिक से अधिक 3 घण्टे और कम से कम एक घण्टा बैठना चाहिए।

प्रश्न–किस आसन से और किस ओर मुंह करके बैठना चाहिए ?

उत्तर–पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन और सुखासन यह चार आसन भजन करने के हैं। जिसे जिस आसन से आराम से अधिक देर तक बैठा जा सके वह आसन उसके लिए ठीक है।

प्रातःकाल पूर्व की ओर, सायंकाल पश्चिम की ओर मुंह करके बैठना चाहिए। पीठ की रीढ़ सीधी रहनी चाहिए।

प्रश्न–साधक का भोजन क्या होना चाहिए ?

उत्तर–ताजी दाल–रोटी, हरी सब्जी, फल, दूध गाय का, सूखे मेवा, आदि का सेवन करना चहिए। बाजार की बनी हुई मिठाई, लहसुन, प्याज, चाय, भांग, बीड़ी, तम्बाकू आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। सिनेमा, ड्रामा, अधिक सजावट श्रृंगार आदि की भावना नहीं रखनी चाहिए।

प्रश्न–संकल्प किसे कहते हैं ?

उत्तर–पूर्व वासना के अनुसार किसी पदार्थ, व्यक्ति से सुख प्राप्ति की जो वृत्ति उठती है उसे संकल्प कहते हैं।

प्रश्न–संकल्प की उत्पत्ति क्यों होती हैं ?

उत्तर–सुख की आसक्ति से, निज स्वरूप की विस्मृति, पूर्व विषयों की स्मृति से, अपने को देह मान लेने से संकल्प की उत्पत्ति होती है।

प्रश्न–संकल्पों की पूर्ति कैसे होती है ?

उत्तर–विधिपूर्वक प्रयत्न से ।

प्रश्न–संकल्पों की निवृत्ति कैसे होगी ?

उत्तर–ज्ञान से, संकल्प पूर्ति के दुःखद परिणाम का दर्शन करने से, वस्तु, व्यक्ति, अवस्था और परिस्थिति का यथार्थ ज्ञान हो जाने से संकल्पों की निवृत्ति हो जायेगी ।

प्रश्न–संकल्पों से जीव को क्या मिलता है?

उत्तर–संकल्पों की उत्पत्ति में अभाव की वेदना, संकल्पों की पूर्ति न होने पर क्रोधादि दोषों के द्वारा दुःख, संकल्प पूर्ति काल में क्षणिक सुख की प्रतीति, संकल्प पूर्ति के बाद अभाव, संकल्पों को विचारपूर्वक त्याग कर देने पर शान्ति प्राप्त होती है।

प्रश्न–बार–बार संकल्पों की उत्पत्ति क्यों होती है ?

उत्तर–संकल्प पूर्ति के समय जो सुख होता है, उसकी वासना जब चित्त में बस जाती है, उस सुख की स्मृति होने पर बार–बार संकल्पों की उत्पत्ति होती है।

प्रश्न–आवश्यक और अनावश्यक संकल्प किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिनकी पूर्ति होना अनिवार्य है, जो संकल्प हित की भावना से किये जाते हैं वह आवश्यक संकल्प हैं।

जिन संकल्पों की उत्पत्ति, सुख भोग के लिए होती है, जिनकी पूर्ति के बिना रह सकते हैं, जिन संकल्पों से किसी को दुःख या अहित हो वह अनावश्यक संकल्प हैं।

प्रश्न–अनावश्यक संकल्पों का त्याग कैसे हो ?

उत्तर–अपने मन की रुचि को पूरा न करने से, तथा दूसरों से पूरा न कराने से, शुभ संकल्पों के करने का तथा अशुभ संकल्पों के त्याग का दृढ़ व्रत लेने से, सर्व हितकारी भाव से सेवा करने से, अनावश्यक संकल्पों का त्याग और आवश्यक संकल्पों की पूर्ति स्वतः हो जाती है।

प्रश्न–अनावश्यक संकल्पों के त्याग की क्या पहिचान है ?

उत्तर–सुख भोग की रुचि का नाश हो जाना, जब अशुभ की तो उत्पत्ति न हो और शुभ संकल्पों की पूर्ति स्वतः ही जाय।

प्रश्न–निःसंकल्पता का क्या साधन है ?

उत्तर–योग भोग की रुचि का नाश कर देने से, संसार के यथार्थ ज्ञान हो जाने पर सच्ची निराशा, अपने को सब ओर से हटा लेने से निःसंकल्पता आती है। संकल्प पूर्ति का जब महत्व नहीं रहता तब निःसंकल्पता स्वतः आ जाती है।

प्रश्न–भूख प्यास लगने पर तो संकल्प उठेंगे ही ?

उत्तर–भूख प्यास का उठना संकल्प नहीं है, आवश्यकता है।

प्रश्न–सभी प्रकार के संकल्पों की पूर्ति में सुख होता है फिर शुभ और अशुभ संकल्पों में क्या अन्तर है ?

उत्तर–शुभ और अशुभ संकल्पों की पूर्ति में सुख अवश्य होता है, परन्तु परिणाम में अन्तर है। जैसे कोई शराब पीने का संकल्प करे और स्वादिष्ट दूध पीने का संकल्प करे, पीते समय दोनों को सुख मिलेगा परन्तु परिणाम में अन्तर हो जायेगा।

प्रश्न–सभी संकल्पों की पूर्ति अपूर्ति प्राकृतिक विधान के द्वारा ही होती है फिर उसमें सुख दुःख तथा अहित क्यों होता हैं ?

उत्तर–संकल्पों की पूर्ति अपूर्ति में सुख दुःख और अहित तभी होता है जब उसमें हम जीवन बुद्धि मान लेते हैं।

प्रश्न–संकल्प पूर्ति अपूर्ति को साधन कैसे बनाया जाय ?

उत्तर–संकल्प पूर्ति में सुख बुद्धि न रहे, संकल्प अपूर्ति की वेदना कितनी ही प्रबल क्यों न हो परन्तु संकल्प पूर्ति की आशा न करें तो संकल्प पूर्ति अपूर्ति साधन हो जाये।

प्रश्न–संकल्प पूर्ति और संकल्प पूर्ति की आशा, में क्या अन्तर है ?

उत्तर–संकल्प पूर्ति के सुख में स्वाभाविक अरुचि होती है परन्तु संकल्प पूर्ति की आशा निरन्तर बढ़ती रहती है।

संकल्प पूर्ति काल में वस्तु, व्यक्ति, अवस्था और परिस्थिति के मिलने में सम्बन्ध होता है और संकल्प पूर्ति की आशा में वस्तु आदि के न होने पर भी सम्बन्ध बना रहता है।

प्रश्न—संकल्प पूर्ति का जीवन में क्या स्थान है ?

उत्तर—संकल्प पूर्ति का जीवन में कोई स्थान भले ही हो परन्तु संकल्प पूर्ति में जीवन का कोई स्थान नहीं है। यानी जीवन में सुख हो परन्तु सुख में जीवन न हो।

संकल्प पूर्ति का जीवन में स्थान संकल्प निवृत्ति के लिए है। सुख भोग के लिए नहीं ।

प्रश्न—वासना किसे कहते हैं?

उत्तर—संकल्प पूर्ति के सुख की जो स्मृति है यानी सुख भोग का रस है वह जब चित्त में अंकित हो जाता है जिसके कारण पुनः संकल्पों की उत्पत्ति होती है उसे वासना कहते हैं।

प्रश्न—वासना का नाश कैसे होगा ?

उत्तर—संकल्प पूर्ति का प्रलोभन और संकल्प अपूर्ति का भय न रहे, संकल्प पूर्ति पर परिणाम पर दृष्टि रखने से, भगवान् से दृढ़ अनुराग होने पर, प्रबल जिज्ञासा की जागृति और पूर्ति होने पर, वासना का नाश होता है।

सन्त तुलसीदास जी कहते हैं –

तन सुखाय पंजन करै धरै रैन दिन ध्यान ।
तुलसी मिटै न वासना बिना विचारे ज्ञान ।।
उर से सकल वासना भागी।
केवल राम चरन लौ लागी।।

प्रश्न—कामना किसे कहते हैं ?

उत्तर—जब कभी कोई वस्तु किसी दूसरे के पास दिखती है और उसके पाने की चाह उत्पन्न हो जाती है उसे कामना कहते हैं।

प्रश्न—कामना का नाश कैसे होगा ?

उत्तर—वर्तमान में ही सन्तोष करने से, अपने पास जो वस्तु नहीं है किसी अन्य के पास दिखती है उसके पाने की चाह का विचारपूर्वक त्याग कर देने से, जिनके पास वे वस्तुएं हैं उसको देख कर प्रसन्न हो जाने से, कामना का नाश होता है।

प्रश्न–इच्छा किसे कहते हैं ?

उत्तर–देखी, सुनी और भोगी हुई, वस्तु आदि की चाह करना इच्छा है।

जिसकी पूर्ति के बिना रह सके, जिसकी पूर्ति भविष्य पर निर्भर हो, उसे इच्छा कहते हैं।

प्रश्न–इच्छाओं का नाश कैसे होगा ?

उत्तर–वस्तु, व्यक्ति, अवस्था और अप्राप्त परिस्थिति से विचारपूर्वक सुख की आशा का त्याग कर देने से इच्छाओं का नाश होगा ।

प्रश्न–वासना, कामना और इच्छा में क्या अन्तर है ?

उत्तर–वासना का सम्बन्ध बीते हुए सुख से, कामना का सम्बन्ध मौजूदा सुख से, इच्छा का सम्बन्ध आगे आने वाले सुख से रहता है।

प्रश्न–आवश्यकता किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसकी पूर्ति के बिना नहीं रह सकते, जिसकी अपूर्ति की वेदना बढ़ती ही जावे, जब तक उसकी पूर्ति न हो जाय और कुछ अच्छा न लगे उसे आवश्यकता कहते हैं। जैसे भूख प्यास।

प्रश्न–आवश्यकता और इच्छा में क्या अन्तर है ?

उत्तर–आवश्यकता एक होती है, इच्छायें अनेक होती हैं।

प्रश्न–अभिलाषा किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो किसी प्रकार मिटाई नहीं जा सकती, जो स्वभाव से स्वाभाविक हो, जिसकी पूर्ति में स्वाधीनता, अमरत्व, प्रेम, चिर शान्ति और विश्राम मिलता है।

प्रश्न–आवश्यकता और अभिलाषा में क्या अन्तर है ?

उत्तर–आवश्यकता का सम्बन्ध शरीर के पोषण से है। अभिलाषा का सम्बन्ध सत्य से अभिन्न होने में है।

प्रश्न–स्वर्ग, नर्क किसे कहते हैं ?

उत्तर–जहाँ पर सब इच्छाओं की पूर्त्ति होती है वहीं स्वर्ग है। जहाँ किसी इच्छा की पूर्ति नहीं होती है, वही नर्क है। जहाँ कोई इच्छा ही नहीं रहती वही परम धाम है।

जब काम क्रोधादि दोषों में वृद्धि होती है वह नर्क जाने का मार्ग है, जहाँ गुणों का विकास होता है वह स्वर्ग जाने का मार्ग है।

प्रश्न–**सुख और दुःख क्यों होता है ?**

उत्तर–जब अपने मन की बात पूरी हो जाती है वहाँ सुख, जहां मन की बात नहीं पूरी होती वहीं दुःख की प्रतीति होती है।

प्रश्न–**सत्य और असत्य क्या हैं ?**

उत्तर–असत्य जिससे प्रकाशित होता है, उसे सत्य कहते हैं। जिसकी उत्पति, विनाश और परिवर्तन होता है उसे असत्य कहते हैं। जो स्वयं अपने आपको प्रकाशित नहीं करता, अथवा जो किसी से प्रकाशित है वह असत्य है।

शरीर, मन, बुद्धि आदि यह सब असत्य और जड़ हैं क्योंकि यह सब आत्मा के स्वप्रकाश से प्रकाशित हैं।

संसार और संसार की सर्व वस्तुयें भी असत्य और जड़ हैं क्योंकि यह उस सत्य परमात्मा से प्रकाशित हैं। जो कुछ दिखता है अथवा जो कुछ जानते हैं वह सब जड़ और असत्य है। जो देखता है और जो जानता है वही सत्य, चेतन, ज्ञान स्वरूप आत्मा है। जिसके प्रकाश में दिखता है अथवा जानते हैं वही सत्य ज्योति स्वरूप परमात्मा है।

प्रश्न–**शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि को कौन प्रकाशित करता है?**

उत्तर–विषयों को इन्द्रियां, इन्द्रियों को मन, मन को बुद्धि, बुद्धि को अहं, अहं को जीवात्मा, जीवात्मा को परमात्मा अपने स्वप्रकाश से सबको समान रूप से प्रकाशित करता है।

सन्त तुलसीदास जी ने लिखा है–

विषय करण सुर जीव समेता,
सकल एक से एक सचेता।
सब कर परम प्रकाशक जोई,
राम अनादि अवधपति सोई।
जासु सत्यता से जड़ माया,
भास सत्य इव मोह सहाया ।

प्रश्न–जीव और परमात्मा एक हैं या दो हैं ?

उत्तर–जीव और परमात्मा एक ही है, शरीर में व्यापक जीव आत्मा, विश्व में व्यापक परमात्मा। जैसे घड़े में जो आकाश वह घटाकाश, घट और बाहर सर्वत्र जो व्यापक है वह परमात्मा है जिसे महाकाश कहते हैं। जैसे बल्ब में जो प्रकाशित बिजली है वह जीव आत्मा, तार में बिजली है वह आत्मा, पावर हाउस में जो बिजली है वह परमात्मा, पावर हाउस के बाद जो बिजली सर्वत्र अदृश्य रूप में व्याप्त है वह ब्रह्म है।

प्रश्न–जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर–अविद्योपाधि जीव है। जिसमें आनन्द की लालसा और भोग की रुचि रहती है, वह जीव है। जो अपने को कर्त्ता भोक्ता मानता है वह जीव है, जो भगवान् से मिली वस्तु को अपनी मान लेता है वह जीव है। जो अपने को तथा भगवान को भूला हुआ है वह जीव है। जिसे संसार के वास्तविक रूप का ज्ञान नहीं हैं वह जीव है। जो भगवान से विमुख होकर संसार के अनित्य सुखों की ओर दौड़ा जा रहा है वह जीव है। मोहादि बन्धनों से बंधा हुआ जीव है।

प्रश्न–ईश्वर किसे कहते हैं ?

उत्तर–विद्योपाधि को ईश्वर कहते हैं। जो प्रेरक है सबसे असंग है, केवल द्रष्टा मात्र है, जिसमें कर्ता भोक्ता का अहं भाव नहीं, जो मोहादि विकारों से मुक्त है, जिसे मृत्यु, बुढ़ापा, सुख, दुःख छू नहीं सकते हैं, वह ईश्वर अपने ज्ञान से जानता है कि यह सुख दुःख है, यह मृत्यु और बुढ़ापा है, उसे ईश्वर कहते हैं।

प्रश्न–ब्रह्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो सर्वत्र, सर्व काल में है, जिसका आदि है न अन्त है। सर्वोपाधि रहित चिन्मात्र तत्व को ब्रह्म कहते हैं।

प्रश्न–शरीर कौन–कौन हैं ?

उत्तर–स्थूल, सूक्ष्म और कारण यह तीन शरीर हैं।

प्रश्न–स्थूल शरीर का निर्माण कैसे हुआ ?

उत्तर–इसका निर्माण पांच तत्वों के सम्मिश्रण से हुआ है। इसे मांसमय कहते हैं।

प्रश्न–पांच तत्वों से स्थूल शरीर में कौन–कौन पदार्थ बने, इसका विवेचन करिए।

उत्तर–पृथ्वी से–हड्डी, मांस, खाल, नाड़ी और रोम ।

जल से–शुक्र (वीर्य), रूधिर, लार, मूत्र और पसीना ।

अग्नि से–भूख, प्यास, आलस्य, निद्रा और मैथुन।

वायु से–चलना, बल (ताकत), फैलना, सिकोड़ना, निरोध करना।

आकाश से–काम, क्रोध, लोभ, मोह, और भय ।

प्रश्न–स्थूल देह की रक्षा कैसे होती है ?

उत्तर–स्थूल देह की रक्षा अन्न से होती है, अन्न से ही इसकी उत्पत्ति होती है और अन्त में अन्न में ही लय हो जाती है।

प्रश्न–जन्म मरण किसका होता है ?

उत्तर–स्थूल शरीर का जन्म मरण होता है, सूक्ष्म शरीर का आवागमन होता है। कारण शरीर का बोध होता है।

प्रश्न–जीवात्मा को स्थूल शरीर किसलिए मिलता है ?

उत्तर–पूर्व में किये गये शुभाशुभ कर्मों के भोग के लिए, पूर्व वासनाओं की पूर्ति के लिए स्थूल शरीर जीवात्मा को मिलता है।

प्रश्न–मनुष्य शरीर का अधिक महत्व क्यों है?

उत्तर–अन्य शरीर में केवल भोग ही होता है, इसलिए वह सब भोग योनियां हैं, मनुष्य शरीर में ज्ञान की अधिकता है। इससे ज्ञान का आश्रय लेकर जीवात्मा सुख दुःख, जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो सकता है। इसलिए इसे कर्म योनि कहते हैं।

बड़े भाग्य मानुस तन पावा,
सुर दुर्लभ सद ग्रंथन गावा।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा,
पाई न जेहि परलोक संवारा।

सो परत्र दुःख पावइ, सिर धुनि–धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोस लगाई ।।
नर तन पाई विषय मन देहीं,
पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं।
नर तन सम नहि कवनिउ देही,
जीव चराचर याचत तेही।
नरक स्वर्ग अपवर्ग नसेनी,
ज्ञान विराग भगति सुभ देनी।
जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाय ।
सोकृत निन्दक मन्द मति, आतम हन गति जाय ।।

– श्री रामचरित मानस से

प्रश्न–जीवात्मा को स्थूल शरीर के सुख–दुख और जन्म मृत्यु से किस तरह मुक्ति मिल सकती है ?

उत्तर–शरीर के द्वारा संसार की सेवा करने से , विषय भोगों के सुख की चाह का त्याग करने से मुक्ति मिल सकती है।

प्रश्न–सूक्ष्म शरीर का निर्माण कैसे हुआ ?

उत्तर–सूक्ष्म शरीर भी तत्वों के योग से बना है। इसमें पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण, मन और बुद्धि यह 17 तत्व के समूह को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। यह वासनामय है।

प्रश्न–स्थूल शरीर में यह 17 तत्व कहां रहते हैं ?

उत्तर–मन बुद्धि और पांच प्राण स्थूल देह के अन्दर रहते हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियां पाँच कर्मेन्द्रियां स्थूल देह के बने हुए स्थानों में रहती हैं।

प्रश्न–सूक्ष्म शरीर का क्या कार्य है?

उत्तर–सूक्ष्म शरीर से जीवात्मा स्थूल शरीर के द्वारा संसार के सुख भोग सकता है। स्थूल शरीर के नाश होने पर जीवात्मा ऊपर के लोकों में जाता है, वहां पर इसी शरीर के द्वारा सुख दुःख का भोग भोगता है। पुनः इसी शरीर के द्वारा शरीर धारण करता है। स्वप्नावस्था में स्वप्न की काल्पनिक रचना और भोग इसी के द्वारा होता है। प्राण निकलने के समय जैसी वासना सूक्ष्म शरीर में होती है उसी के अनुसार इसकी गति होती तथा शरीर मिलता है।

प्रश्न–सूक्ष्म शरीर को सुख–दु:ख से कैसे मुक्ति मिल सकती है ?

उत्तर–काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान आदि दोषों के त्याग से सूक्ष्म शरीर की शुद्धि होती है। प्रेम, दया, क्षमा, कृपा, उदारता आदि दिव्य गुणों के द्वारा सूक्ष्म शरीर सुन्दर बनता है।

भगवत चिन्तन, वासनाओं के विचारपूर्वक त्याग कर देने पर, परमात्मा के ही भजन, ध्यान में लगे रहने से योगाभ्यासादि के साधनों के करने से सूक्ष्म शरीर से मुक्ति मिलती है।

इसी सूक्ष्म शरीर के द्वारा सिद्ध योगीजन स्थूल शरीर से निकल कर अन्तरिक्ष के लोकों में भ्रमण करके पुनः वापिस आ जाते हैं।

प्रश्न–कारण शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर–चेतन से प्रतिबिम्बित सत्व चित्त जिसमें अहंकार बीज रूप से छिपा हुआ अपने कार्य को बन्द किए रहता है, उसको कारण शरीर कहते हैं।

कारण शरीर के आधार पर ही स्थूल सूक्ष्म देहों की उत्पत्ति होती है।

जब तमोगुण, रजोगुण को इतना दबा लेता है कि सूक्ष्म शरीर स्वप्न में भी कार्य करना बन्द कर देता है, तब सुषुप्ति अवस्था आती है। उस समय कारण शरीर में कार्य होता है। इसमें बाहर भीतर का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है, अतः अज्ञान को ही कारण शरीर कहते हैं। कारण शरीर में केवल अभाव की ही प्रतीति होती है, अथवा कुछ न जानने का, या कुछ नहीं है, इस प्रकार का अभिमान वहां रहता है उसे ही कारण शरीर कहते हैं।

प्रश्न–किस शरीर की कौन अवस्था है?

उत्तर–स्थूल की जाग्रत, सूक्ष्म की स्वप्न, कारण शरीर की सुषुप्ति अवस्था है।

प्रश्न–अवस्थाओं का वास स्थान कहां है ?

उत्तर–जाग्रत का नेत्रों में, स्वप्न का कंठ में, सुषुप्ति का हृदय में वास स्थान है।

प्रश्न–किस अवस्था में किस गुण की प्रधानता रहती है ?

उत्तर–जाग्रत में स्वप्न और सुषुप्ति दोनों का ज्ञान होने के कारण सत्व गुण, स्वप्न में कल्पित सृष्टि यानी स्वप्न का ज्ञान होने से रजोगुण और सुषुप्ति में कुछ भी न जानने के कारण तमोगुण की प्रधानता रहती है। तुरिया में शुद्ध सत्व गुण रहता है।

प्रश्न–अवस्थाओं का भोग क्या है ?

उत्तर–जाग्रतावस्था में विषयों के सुख का स्थूल भोग, सुख दुःखात्मक।

स्वप्नावस्था में, कल्पित सृष्टि का सूक्ष्म भोग, सुख दुःखात्मक ।

सुषुप्ति अवस्था में, आनन्द का भोग, थकावट को दूर करना और पुनः शक्ति का संचय करना ।

तुरियावस्था में, परमानन्द का योग होता है।

प्रश्न–जाग्रत और स्वप्न में क्या अन्तर है?

उत्तर–जाग्रत में जो कुछ दिखता है अथवा जो कुछ ज्ञान होता है उसका स्वप्नावस्था में विस्मरण हो जाता है, परन्तु जाग्रतावस्था के सब व्यवहार झूठे हैं ऐसा ज्ञान किसी को स्वप्नावस्था में नहीं होता है, क्योंकि जाग्रत में उन सभी अवस्थाओं का ज्ञान जाग्रत होने पर हो जाता है।

स्वप्नावस्था में जो कुछ दिखता है, वह स्वप्नावस्था में जाग्रत की भाँति सत्य प्रतीत होता है, जाग्रतावस्था की भांति ही सुख–दुख की प्रतीति होती है। परन्तु जागने पर स्वप्न की याद तो बनी रहती है परन्तु सब झूठा था, ऐसा ज्ञान सबको जाग्रतावस्था में रहता है। यही जाग्रत और स्वप्न में अन्तर है।

जाग्रतावस्था में ईश निर्मित, स्थूल सृष्टि के द्वारा भोग होता है, जिसमें स्थूल शरीर की आवश्यकता है। स्वप्न में जीव को काल्पनिक सृष्टि में भोग सूक्ष्म शरीर के द्वारा होता है। स्वप्न का सुख–दुख जाग्रत होने पर मिट जाता है, जाग्रत का सुख–दुख ज्ञान होने पर मिटता है।

प्रश्न—शास्त्र और सन्तजन इस जाग्रत संसार को भी स्वप्नवत् बताते हैं।

उत्तर—यह ठीक है, जब हम संसार की ओर जाते हैं अथवा संसार से सुख की आशा का सम्बन्ध जोड़ लेते हैं तब स्वप्न की भांति ही जाग्रत सत्य प्रतीत होता है, उसके सुख—दुख भी सत्य प्रतीत होते हैं। परन्तु जब ज्ञान हो जाता है, मोह निद्रा से प्राणी जाग जाता है तब वही जाग्रत स्वप्न की भाँति झूठा हो जाता है। सत्य जो परमात्मा है उसका बोध हो जाता है और जगत् प्रपंच सब झूठा स्वप्न की भांति दिखने लगता है।

जानिय तबहिं जीव जगजागा,
जब सब विषय विलास विरागा।
जो सपने सिर काटै कोई,
बिन जागे न दूर दुःख होई।
जेहि जाने जग जाइ हेराई,
जागे जथा स्वप्न भ्रम जाई ।

प्रश्न—कभी स्वप्न में बड़े भयंकर स्वप्न दीखते हैं कभी अच्छे और कभी स्वप्न सत्य हो जाते हैं।

उत्तर—स्वप्नावस्था जाग्रत और सुषुप्ति के बीच की अवस्था है। जब स्वप्न में तमोगुण की प्रधानता होती है, तथा कुछ अनिष्ट होने को होता है तब भयंकर स्वप्न दीखते हैं। जब स्वप्न की रजोगुण अवस्था होती है तब स्वप्न अच्छे तथा उनकी याद बनी रहती है। जब स्वप्न की सतोगुणी अवस्था होती है तब वही स्वप्न सत्य भी हो जाते हैं।

प्रश्न—सुषुप्ति अवस्था का जीवन से क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—जाग्रत और स्वप्न के व्यवहारों से जब जीव थक जाता है तब सुषुप्ति अवस्था में उसे विश्राम मिलता है। सुषुप्ति अवस्था में ही जीव की थकावट दूर होती है और पुनः कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है, इसी को कारण शरीर कहते हैं।

सोकर उठने के बाद जब चित्त में प्रसन्नता हो, थकावट न हो, आलस्य न हो, काम करने की नवीन स्फूर्ति हो उस समय सत्वगुणी सुषुप्ति अवस्था हुई।

जब सोकर उठने पर शरीर में थकावट, मन में खिन्नता, किसी काम में मन न लगना यह सुषुप्ति की रजोगुणी अवस्था है।

जब सोकर उठने से शरीर भारी, चित्त में व्याकुलता, काम करने की शक्ति का न होना, यह सुषुप्ति की तमोगुणी अवस्था है।

प्रश्न–सुषुप्ति और समाधि में क्या अन्तर है?

उत्तर–सुषुप्ति अवस्था भोगों में थकावट होने पर आती है, सुषुप्ति में जो विश्राम और शक्ति मिलती है, वह पुनः भोगों की ओर गतिशील करती है। सुषुप्ति में जड़ता का दोष होता है, समाधि में जड़ता का नाश और ज्ञान रहता है।

समाधि भोगों से अरुचि करके अपने निज अभ्यास के द्वारा होती है, इसमें जो विश्राम और शक्ति प्राप्त होती है उससे परमात्मा का योग होता है।

सुषुप्ति में रजोगुण, सतोगुण दब जाते हैं। वहां पर तमोगुण की प्रधानता होती है। समाधि में तमोगुण, रजोगुण दब जाते हैं वहां पर सतोगुण की प्रधानता होती है।

इसमें चित्त से आत्मा की भिन्नता रहती है, अर्थात् चित्त द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होता है। परन्तु यह आत्मा का शुद्ध स्वरूप नहीं है। कारण शरीर यानी सुषुप्ति अवस्था से भिन्न जो तुरियावस्था से भी अतीत जो अवस्था है उसी आत्मा के शुद्ध स्वरूप में स्थिति होती है।

मैं देहादि के व्यापारों से और उनसे होने वाले परिणामों से सदा असंग हूँ ऐसी अचल स्थिति बनाये रखना ही, स्वरूपा स्थिति है।

प्रश्न–तुरियावस्था किसे कहते हैं ?

उत्तर–योग के अभ्यास के द्वारा चित्त की समस्त वृत्तियां जब शांत हो जाती हैं और जीवात्मा तथा परमात्मा का जब योग होता है, उसे तुरियावस्था कहते हैं। यह तीनों गुणों और तीनों अवस्थाओं से परे की अवस्था है।

प्रश्न–गुण कितने हैं ?

उत्तर–सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण यह तीन गुण हैं।

प्रश्न–अवस्थाओं से और गुणों से क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर–सतोगुण जाग्रतवस्था, रजोगुण स्वप्नावस्था, तमोगुण सुषुप्ति अवस्था, तीनों अवस्थाओं से परे तुरियावस्था होती है।

प्रश्न–अवस्थाओं में गुणों का भेद क्यों है?

उत्तर–जाग्रतावस्था में स्वप्न और सुषुप्ति दोनों की स्मृति बनी रहती है। इसी से इसे जाग्रतावस्था कहते हैं।

स्वप्नावस्था में जाग्रत की विस्मृति और अपनी कल्पना के द्वारा रची हुई सृष्टि में सुख–दुःख का भोग होता है, इसलिए इसे रजोगुण अवस्था कहते हैं। सुषुप्ति में जाग्रत स्वप्न दोनों ही नहीं रहते केवल अज्ञानावस्था रहती है इसी से इसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। तुरिया में अपने स्वरूप की स्मृति और जगत् की विस्मृति रहती है पूर्ण चैतन्यावस्था होती है उसे तुरियावस्था कहते हैं।

प्रश्न–आपने ऊपर कहा कि जाग्रत में सुषुप्ति की याद रहती है, और जब आप कहते हैं कि सुषुप्ति में कुछ भी याद नहीं रहता, तो फिर जाग्रत में सुषुप्ति की याद कैसे रहेगी ?

उत्तर–सुषुप्ति अवस्था में ज्ञान रहता है परन्तु उसका ज्ञान जाग्रत होने पर होता है, सुषुप्ति में नहीं होता है। इसी से ऐसा कहा गया है।

प्रश्न–सुषुप्ति अवस्था में कौन–सा ज्ञान रहता है?

उत्तर–मैं खूब सोया, मेरी सारी थकावट दूर हो गई, यदि इसका अनुभव सुषुप्ति अवस्था में न हुआ होता तो जाग्रत होने पर कैसे कहता कि मैं खूब सोया।

प्रश्न–प्राण जड़ है या चेतन ?

उत्तर–प्राण जड़ है, सो जाने पर चेतन के योग से देह की रक्षा के लिए वह संचरित रहता है। यदि उसमें चैतन्य शक्ति होती तो सोते समय किसी के बुलाने पर वह तुरन्त बोल देता।

प्रश्न–कर्म कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर–क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध यह तीन प्रकार के कर्म होते हैं।

प्रश्न–क्रियमाण कर्म कौन से होते हैं ?

उत्तर–पूर्व सुख की वासना से जो नए संकल्प किये जाते हैं उन्हें क्रियमाण अथवा नवीन कर्म कहते हैं। फल की इच्छा रखकर जो कर्म होते हैं वह नवीन कर्म हैं।

किसी की वस्तु आदि को देखकर उसके पाने के लिए जब इच्छा उठती है उसे संकल्प कहते हैं और जब उसके पाने का प्रयत्न करने लगते हैं तव वह नवीन कर्म कहे जाते हैं।

जिस तरह अन्न पैदा करने के लिए किसान खेत को जोतता और बोता है वह क्रियमाण कर्म है।

जो हम दूसरों के साथ व्यवहार करते हैं वह नये कर्म हैं।

प्रश्न–संचित कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–फल की इच्छा से नवीन कर्म किये जाते हैं, जब तक उनका फल नहीं बनता तब तक वही कर्म संचित कहे जाते हैं।

जिस तरह खेत में अनाज बोने के बाद जब तक उसका फल उपभोग में नहीं आता तब तक वह संचित रहता है।

दूसरों के साथ किए गए शुभाशुभ कर्म जब तक भोग रूप में नहीं आते हैं तब तक वह कर्म संचित रहते हैं।

प्रश्न–प्रारब्ध कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जो अपने आप आवे वही प्रारब्ध कर्म का फल है। किए गए कर्मों का फल उपभोग में आता है उसे प्रारब्ध कर्म से आना कहते हैं।

प्रश्न–अकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो कर्म सर्व हितकारी भाव से किए जाते हैं वह अकर्म कहे जाते हैं, उसका फल कर्ता को नहीं भोगना पड़ता है।

प्रश्न–कर्म का फल तो बनेगा ही फिर किए गए कर्म का फल क्यों नहीं भोगना पड़ेगा ?

उत्तर–जो कर्म अपने लिए नहीं किए जाते हैं, सबके हित के लिए किए जाते हैं उसका फल कर्ता को नहीं समाज को मिलता है। जिस तरह कोई खेत को समाज के लिए बोता है तो उसका उपभोग समाज करता है, कर्ता नहीं।

प्रश्न–कर्म का फल न चाहने पर कर्ता को फल नहीं भोगना पड़ता तो फिर जीवों का वध करने वालों को भी उसका फल नहीं भोगना पड़ेगा ?

उत्तर–ऐसा नहीं होता है, ऊपर यह बताया गया है कि जो कर्म सर्व हितकारी भाव से किए जायेंगे, उन्हीं का फल कर्ता को नहीं भोगना पड़ेगा, परन्तु जो कर्म अपनी सुखासक्ति के वश में होकर किए जायेंगे उनका फल न चाहने पर भी प्राकृतिक विधान से भोगना पड़ेगा ?

प्रश्न–उदाहरण देकर समझाइये।

उत्तर–जिस तरह एक सिपाही आज्ञा पाकर बन्दूक से सैकड़ों व्यक्तियों को मार डालता है परन्तु उसे सजा का भागी नहीं होना पड़ता। यदि बिना आज्ञा के किसी को मार डाले तो उसे भी सजा का दंड भोगना पड़ेगा।

प्रश्न–नवीन कर्म न बने इसका क्या साधन है ?

उत्तर–वर्तमान में जो कुछ मिला है उसी से सन्तुष्ट रहो, किसी की वस्तु आदि को देखकर उसके पाने की इच्छा न करो। कुछ न करो, करो तो सर्व हितकारी भाव से कर्म करो। मिले हुए को अपना मानो, अपने को कर्ता न मानो।

तुमसे अधिक किसी के पास सुख भोग की वस्तुएं आदि दीखतीं हो तो उसे देखकर प्रसन्न हो जाओ, नवीन कर्म न बनेंगे यह सन्त अनुभूति है।

प्रश्न–अशुभ कर्म कौन हैं ?

उत्तर–अपने सुख के लिए जब दूसरों को दुःख देते हैं, अपने विकास के लिए जब दूसरों का विनाश करते हैं, अपने हित के लिए जब दूसरों का अहित करते हैं।

जो हम दूसरों से अपने लिए नहीं चाहते हैं, अथवा दूसरों का व्यवहार जो हमें नहीं अच्छा लगता है वही व्यवहार दूसरों के साथ करने से अशुभ कर्म बनते हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, ईर्ष्या, राग, द्वेष, झूठ, छल, कपट, दंभ पाखंड आदि करना यह सब अशुभ कर्म हैं।

प्रश्न–अशुभ कर्मों का क्या फल होता है?

उत्तर–दुःख, अशांति और अन्त में विनाश ही अशुभ कर्मों का फल है।

प्रश्न–शुभ कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–दूसरों के हित में अपना हित करना, दूसरों के सुख में अपना सुख देखना, दूसरों के विकास में ही अपना विकास देखना ही शुभ कर्म है।

जो हमें दूसरों से अच्छा लगे, अथवा जो दूसरों से अपने लिए चाहते हैं वही शुभ कर्म हैं।

प्रेम, दया, क्षमा, करूणा, उदारता, सेवा, त्याग, प्रेम, विनम्रता, सहनशीलता आदि गुणों का विकास करते हुए दूसरों के साथ व्यवहार करना शुभ कर्म हैं।

प्रश्न–शुभ कर्म का फल क्या है ?

उत्तर–नित्य सुख, चिर शान्ति और अमरत्व और अन्त में प्रेम प्राप्ति ही शुभ कर्मों का फल है।

प्रश्न–मनुष्य अशुभ कर्म क्यों करता है, अशुभ कर्मों का त्याग क्यों नहीं कर पाता है ?

उत्तर–सुख की आसक्ति के वश में होकर अशुभ कर्म करता है। इन्द्रियों के द्वारा जो क्षणिक सुख की प्रतीति होती है उस सुख के लालचवश अशुभ कर्मों का त्याग नहीं कर पाता है।

प्रश्न–शुभ कर्मों को चाहते हुए भी क्यों नहीं कर पाते हैं?

उत्तर–जब तक अशुभ कर्मों का त्याग न होगा तब तक शुभ कर्म नहीं कर सकेंगे। शुभ कर्म करना नहीं है, अशुभ कर्मों के त्याग में ही शुभ कर्मों के स्वतः होने की शक्ति आ जाती है।

प्रश्न–किस अशुभ कर्म के त्याग से शुभ कर्म स्वतः होने लगता है ?

उत्तर–असत्य के त्याग से सत्य, क्रोध के त्याग से क्षमा, लोभ के त्याग से उदारता, कठोरता के त्याग से सरलता, अभिमान के त्याग से विनम्रता, स्वार्थ के त्याग से सेवा, विषय चिन्तन के त्याग से भगवत चिन्तन, आलस्य के त्याग से श्रम, असंयम के त्याग से संयम, राग–द्वेष के त्याग से त्याग और प्रेम स्वतः होने लगता है।

प्रश्न–निष्काम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिन कर्मों के करने में अपने तथा अन्य के सुख की वासना न हो, भगवत प्राप्ति के लिए जो कर्म किये जाते हैं वही निष्काम कर्म हैं।

प्रश्न–निष्काम कर्म का क्या फल है?

उत्तर–निश्चिन्तता, निर्भयता और विश्राम ही निष्काम कर्म का फल है।

प्रश्न–सब प्रकार के कर्मों के बन्धन से और उसके सुख–दुख से कैसे छुटकारा मिल सकता है?

उत्तर–यथार्थ ज्ञान हो जाने से, सुख भोग की आसक्ति मिट जाती है, जिससे नये कर्म नहीं बनते। संचित कर्म शुभ कर्मों के करने से अथवा ज्ञानाग्नि में दग्ध हो जाते हैं इसलिए कर्म फिर फल नहीं देते हैं। प्रारब्ध भोग कर नष्ट हो जाता है।

तुलसीदास जी का वचन है–

तुलसी ज्ञान के उदय से संचित कर्म नसायं।
क्रियमाण होते नहीं, प्रारब्ध रहि जायं ।।

प्रश्न–प्रारब्ध कर्मों से कैसे छुटकारा होता है? उदाहरण देकर समझाइए।

उत्तर–जिस प्रकार एक कैदी को एक वर्ष की सजा दी गई यदि वह एक वर्ष की सजा भोग ले, बीच में कोई अपराध न करे तो वह जेल से छुटकारा पा जाता है। इसी प्रकार शुभा–शुभ कर्मों के अनुसार जीवात्मा को सुख–दुःख के रूप में प्रारब्ध कर्म फल भोगना पड़ता है। जब सब प्रकार के शुभाशुभ कर्मों का फल समाप्त हो जाता है तब वह सुख–दुख, जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

प्रश्न–ज्ञानी को प्रारब्ध कर्मों का सुख–दुःख होता है या नहीं ?

उत्तर–ज्ञानी उसे ही कहते हैं जो सुख–दुःख का सदुपयोग करता है, भोग नहीं।

सुख से सुखी होकर उसका भोग करना, दुःख से दुःखी होकर उसमें दुःखी होना यह ज्ञानी का लक्षण नहीं है, अपितु वह अज्ञानी है। ज्ञानी सुख आने पर उसका सदुपयोग दुःखियों की सेवा में करता है और दुःख आता है तो विवेक और विचार के बल से उस दोष को त्याग कर देता है, जिस दोष के कारण उसे दुःख होता है। अतः सुख में सेवा और दुःख में त्याग के बल के द्वारा ज्ञानी अपने को सुख और दुःख की दासता के बन्धन से मुक्त कर लेता है। यह सन्त वचन है।

प्रश्न–शरीर का दुःख तो ज्ञानी को भी होगा ?

उत्तर–शरीर का दुःख ज्ञानी को होता है, परन्तु वह उसे शरीर मन का धर्म मान कर उससे असंग होकर उसे प्रसन्नता पूर्वक सहन करता है। अज्ञानी हाय–हाय करके भोगता है, ज्ञानी अपने ही कर्मों का फल समझ कर उसे वाह–वाह कर भोग डालता है। अज्ञानी को हाय–हाय कर भोगने से दुःख और बढ़ जाता है, कभी–कभी उस दुःख से बचने के लिए और भी अशुभ कर्म हो जाते हैं जिनका परिणाम भविष्य में फिर दुःख के रूप में भोगना पड़ता है।

ज्ञानी उसे प्रसन्नतापूर्वक सहन करता है तो दुःख अधूरा रह जाता है। अनेकों अपराधों से बच जाता है।

पूर्ण ज्ञानी तो अपने अविनाशी स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके शरीर और अन्तःकरण से असंग हो जाता है। सुख–दुख का सम्बन्ध शरीर और अन्तःकरण से है, अपने निज स्वरूप से नहीं। इसलिए ज्ञानी को प्रारब्ध के सुख–दुख के भोग भी बंधन में नहीं बांधते हैं।

प्रश्न–प्रारब्ध कर्म कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर–इच्छा प्रारब्ध, अनिच्छा प्रारब्ध, परेक्षा प्रारब्ध, पुण्य प्रारब्ध, पाप प्रारब्ध, यह पाँच प्रकार के प्रारब्ध कर्म होते हैं।

प्रश्न–इनका विशेष स्पष्टीकरण कीजिए।

उत्तर–(इच्छा प्रारब्ध) जो कर्म फल की इच्छा से किए जाते हैं। उनका जब फल बनता है तो कर्ता में उसके फल भोगने की स्वयं इच्छा होती है, उसे इच्छा प्रारब्ध करते हैं। जैसे अपनी स्वेच्छा से व्रत आदि में भूखे रहना।

(अनिच्छा प्रारब्ध) इच्छा के न होने पर भी जब कर्म का भोग भोगना पड़ता है तब उसे अनिच्छा प्रारब्ध कहते हैं। जैसे किसी समय भोजन को चाहते हुए भी न मिलना ।

(परेक्षा प्रारब्ध) दूसरों की इच्छा पूर्ति के लिए जो भोग भोगना पड़ता है उसे परेक्षा प्रारब्ध कहते हैं। जैसे किसी सेवा कार्य करते समय भोजन न मिलना ।

(पुण्य प्रारब्ध) शुभ कर्मों के फल को न चाहते हुए सुख का भोग होना। जैसे न चाहते हुए भी स्वादिष्ट भोजन मिलना ।

(पाप प्रारब्ध) अशुभ कर्मों के फल के कारण चाहते हुए भी सुख न मिलना और न चाहते हुए भी दुःख भोगना पड़े। जैसे प्रयत्न करते हुए भी भोजनादि का न मिलना ।

प्रश्न–ज्ञानी के लिए इच्छा प्रारब्ध तो बाधक होना चाहिए ?

उत्तर–ज्ञानी को इच्छा प्रारब्ध भी बाधा नहीं पहुंचा सकता है। वह इच्छा धारण करके भी कोई भोग भोगेगा, तो भी कोई बाधा की सम्भावना नहीं है। क्योंकि ज्ञानी को भोग काल में भी मिथ्यात्व निश्चित है। वह अपने को कर्ता भोक्ता नहीं मानता है। अतः उसे इच्छा प्रारब्ध बाधा नहीं पहुंचा सकता है। जिनकी दृष्टि में जगत् की सत्यता ही नहीं है, सदा अपने अविनाशी सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हैं। ऐसी स्थिति में चाहे उसकी करोड़ों इच्छायें हों उसका कुछ भी बिगड़ता नहीं, वास्तव में ऐसी इच्छायें इच्छा ही नहीं हैं।

प्रश्न–इसको कोई उदाहरण देकर समझाइए ।

उत्तर–कोई मनुष्य बालकों के साथ मिट्टी के खिलौनों में खेलने लगे और खिलौने टूट जायें तो उसे दुःख नहीं होगा, परन्तु अज्ञानी बालक को अवश्य दुःख होगा।

ड्रामा में अनेकों व्यक्ति अपना–अपना पार्ट अदा करते हैं परन्तु वह अपने को कभी नहीं भूलते हैं, खेल समाप्त होने पर वह उसके बन्धन में नहीं बंधते हैं।

प्रश्न–ज्ञानी को प्रारब्ध के अनुसार मिले हुए सुख को बांटने से फिर उसका फल बनेगा। तब उसे फिर उसी सुख को भोगना पड़ेगा। तब तो वह कर्म ज्ञानी के लिए भी बाधक हो गया ?

उत्तर–ज्ञानी सुख को बोता नहीं है त्याग करता है। बोने में और त्याग में अन्तर है। बोया वह जाता है जिसके बदले में चाहते हैं, त्याग उसको कहते हैं जिसके बदले में कुछ नहीं चाहते हैं।

दोनों में अपनापन का भाव रहता है, त्याग में उसी की वस्तु मानी जाती है जिसे वह दी जाती है।

जो दाना खेत में बोया जाता है, वह फलता है परन्तु जो दाना फेंक दिया जाता है वह फलता नहीं है। अथवा जो दाना भुन जाता है वह फिर नहीं उगता है उससे भूख तो दूर हो जाती है परन्तु फल नहीं बनता है।

प्रश्न–वाणी कितने प्रकार की हैं ?

उत्तर–परा, पश्यन्ति, मध्यमा और बैखरी यह चार प्रकार की वाणी है।

प्रश्न–इनके शरीर में वास स्थान कहां पर हैं ?

उत्तर–परानाभि में, पश्यन्ति हृदय में, मध्यमा कंठ में और बैखरी वाणी का वास–स्थान जिह्वा में रहता है।

प्रश्न–किस शरीर का किस वाणी से सम्बन्ध है ?

उत्तर–परा और पश्यन्ति का कारण शरीर से, मध्यमा का सूक्ष्म शरीर से, बैखरी वाणी का स्थूल शरीर से सम्बन्ध है। बैखरी वाणी क्रिया रूप है, मध्यमा क्रिया और ज्ञान रूप है, परा और पश्यन्ति शुद्ध ज्ञान रूप है।

प्रश्न–आवरण किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिससे कोई वस्तु ढक जाती है उसे आवरण कहते हैं ।

प्रश्न–आवरण कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर–मल, विक्षेप, आवरण यह तीन प्रकार के हैं ।

मल दोषों को, विक्षेप चंचलत्व को, आवरण अज्ञान को कहते हैं ।

प्रश्न–चार प्रकार की खान कौन हैं ?

उत्तर–अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज यह चार प्रकार की खान हैं।

अंडज–जो जीव अंडे से पैदा होते हैं उन्हें अंडज कहते हैं। जैसे–पक्षी, मछली, कछुआ आदि ।

पिंडज–जो जीव गर्भ से पैदा होते हैं उन्हें पिंडज कहते हैं। जैसे मनुष्य, पशु आदि ।

स्वेदज–जो जीव पसीना या मैल से पैदा होते हैं वह स्वेदज कहे जाते हैं। जैसे–जुंआ, खटमल आदि ।

उद्भिज–जिनकी उत्पत्ति पृथ्वी से अंकुरित होकर होती है वह उद्भिज कहलाते हैं। जैसे–वृक्षादि ।

प्रश्न–पंचकोष किन्हें कहते हैं ?

उत्तर–अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय और आनंदमय यह पांच कोष हैं।

प्रश्न–प्रत्येक कोष में कौन से तत्व हैं ?

उत्तर–अन्नमय कोष–पांच भूत, पांच विषय, 10 प्रकार के मिश्रण को अन्नमय कोष कहते हैं।

मनोमय कोष–पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और एक मन मिलाकर 6 तत्वों को मनोमय कोष कहते हैं।

प्राणमय कोष–पांच प्राण, पांच कर्मेन्द्रियों को मिला कर 10 तत्वों को प्राणमय कोष कहते हैं।

विज्ञानमय कोष–पांच ज्ञानेन्द्रियां और बुद्धि को मिला कर 6 तत्वों को विज्ञानमय कोष कहते हैं।

आनन्दमय कोष–स्फूर्ति, विद्या, अविद्या, ईश, और जीव, इस प्रकार के समुदाय को आनन्दमय कोष कहते हैं।

प्रश्न–कुल कितने तत्व हैं ?

उत्तर–पांच भूत, पांच विषय, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण, मन, बुद्धि, स्फूर्ति, विद्या, अविद्या, जीव और ईश, इस प्रकार सब 32 तत्व कहलाते हैं।

प्रश्न–उपादान, निमित्त कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर–उपादान–जिससे कोई वस्तु बनाई जाती है वह उपादान कारण है।

निमित्त–जो बनाता है वह निमित्त कारण कहलाता है।

उदाहरण–जिस तरह कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाता है, तो मिट्टी उपादान कारण है, और कुम्हार बनाने वाला निमित्त कारण है।

प्रश्न–त्रिविध अभिमान क्या हैं ?

उत्तर–विश्वाभिमान, तैजसाभिमान और प्रज्ञाभिमान, यह त्रिविध अभिमान हैं।

प्रश्न–किस अवस्था में कौन अभिमान रहता है ?

उत्तर–जाग्रत में विश्वाभिमान, स्वप्न में तैजसाभिमान और सुषुप्ति में प्रज्ञाभिमान रहता है। तुरिया अथवा समाधि अवस्था में निरभिमानी रहता है।

स्थूल शरीर में विश्वाभिमान, सूक्ष्म शरीर में तैजसाभिमान और कारण शरीर में प्रज्ञाभिमान रहता है।

प्रश्न–अवस्थाओं और शरीर में अभिमान किस प्रकार रहता है, इसका संक्षिप्त विवेचन कीजिए ।

उत्तर–विश्वाभिमान–जीव अपने को देह मान कर, मैं जन्मा, बढ़ने लगा, मैं युवा हो गया, फिर वृद्ध होकर मरूंगा, इत्यादि। शरीर और इन्द्रियों के धर्मों को अपने में आरोपित करके उसमें सुखी दुःखी होता रहता है, यही विश्वाभिमान है।

तैजसाभिमान–स्वप्नावस्था में स्वप्न दृश्य की कल्पना करके उसे देखता है। उसमें भी कल्पित देह मैं ही हूँ तथा कल्पित दृश्य को देख कर सुखी दुःखी होता है, इस प्रकार का जो अभिमान है वही तैजसाभिमान है।

प्रज्ञाभिमान–स्वप्नावस्था के बाद, जीव सुषुप्ति (गाढ़ निद्रा) में अपने मैं पने का त्याग नहीं करता है। मैं खूब सोया, सारी थकावट दूर हो गई, ऐसा जागने पर कहता है, सुषुप्ति में इस प्रकार का अनुभव करने वाला जो मैं पन है वही प्रज्ञाभिमान है।

निराभिमानी–मैं तीनों देहों का ज्ञाता, शुद्ध चेतन, ज्ञान स्वरूप, अविनाशी तत्व हूँ। इन्द्रियों तथा देहादि के विकारों से मैं सदा असंग हूँ, ऐसी अचल स्थिति बनाये रखना ही निराभिमानिता अथवा समाधि अवस्था है।

प्रश्न–अष्टांग योग किसे कहते हैं ?

उत्तर–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, यह योग के आठ अंग हैं।

प्रश्न–यम के कितने भेद हैं ?

उत्तर–सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह यह पांच भेद यम के हैं।

प्रश्न–नियम के कितने भेद हैं ?

उत्तर–शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, यह पांच नियम के अंग हैं।

प्रश्न–आसन कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर–योगियों ने मुख्य 84 आसन बताये हैं।

प्रश्न–प्राणायाम किसे कहते हैं ?

उत्तर–स्वांस को भीतर ले जाना पूरक, स्वांस को रोकना कुम्भक, स्वांस को बाहर निकालना रेचक, इन क्रियाओं को विधि पूर्वक करने को प्राणायाम कहते हैं।

प्रश्न–बन्ध कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर–मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध, महाबन्ध, महाबेध यह सब बन्ध हैं।

प्रश्न–मुद्रायें कितने प्रकार की होती हैं ?

उत्तर–खेचरी मुद्रा, महामुद्रा, अश्विनी मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, योनी मुद्रा, योग मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, तड़ागी मुद्रा, विषरतीकरण मुद्रा और वज्रोली मुद्रा, यह सब मुद्रायें हैं।

नोट–आसन, प्राणायाम, बन्ध और मुद्राओं को किसी योगी से सीख कर ही करें ।

प्रश्न–**चक्र कितने हैं और उनके नाम क्या हैं?**

उत्तर–चक्र मुख्य 7 हैं –

(1) मूलाधार, (2) स्वाधिष्ठान, (3) मणिपुर (4) अनाहत, (5) विशुद्ध (6) आज्ञा, (7) सहस्त्रार ।

प्रश्न–**इनके स्थान शरीर में कहां पर हैं ?**

उत्तर–मूलाधार का गुदा के ऊपर, स्वाधिष्ठान का पेडू में, मणिपूर का नाभि में, अनाहत का हृदय में, विशुद्ध का कंठ में, आज्ञा का भृकुटि में और सहस्त्रार का ब्रह्मरन्ध्र में स्थान है।

प्रश्न–**प्रत्येक चक्र में कितने दल हैं ?**

उत्तर–मूलाधार में 4, स्वाधिष्ठान में 6, मणिपूर में 10, अनाहत में 12, विशुद्ध में 16, आज्ञाचक्र में 2, सहस्त्रार में एक हजार दल हैं।

प्रश्न–**चक्रों के दलों में कौन–कौन से अक्षर हैं ?**

उत्तर–मूलाधार में–वं,शं,षं, और सं यह 4 अक्षर हैं।

स्वाधिष्ठान में–बं,भं,मं,यं,रं,लं यह 6 अक्षर हैं।

मणिपुर में–डं,ढ़ं,णं,त,थ,द,ध,न,प,फ, यह 10 अक्षर हैं।

अनाहत में–कं,खं,गं,घं,ङं,चं,छं,जं,झं,ञां,टं,ठं, यह 12 अक्षर हैं।

विशुद्ध में–अ,आ,इ,ई,उ,ऊ,ऋ,ॠ,लृ,ॡ,ए,ऐ,ओ,औ,अं,अः, यह 16 अक्षर हैं।

आज्ञा में–हं, क्षं यह दो अक्षर हैं।

सहस्त्रार में–अ से लेकर क्ष तक सब वर्ण और स्वर हैं।

प्रश्न–**चक्रों के तत्व बीज कौन–कौन हैं ?**

उत्तर–मूलाधार का लं, स्वाधिष्ठान का वं, मणिपूर का रं, अनाहत का यं, विशुद्ध का हं, आज्ञा का ऊँ, सहस्त्रार का बिन्दु तत्त्व बीज है।

प्रश्न–किस चक्र में कौन तत्व है ?

उत्तर–मूलाधार में पृथ्वी, स्वाधिष्ठान में जल, मणिपूर में अग्नि, अनाहत में वायु, विशुद्ध में आकाश, आज्ञा में महतत्व, सहस्त्रार में विसर्ग।

प्रश्न–किस चक्र का क्या रंग है ?

उत्तर–मूलाधार का रक्त, स्वाधिष्ठान का सिंदूरी, मणिपूर का नीला, अनाहत का अरुण, विशुद्ध का धूम्र, आज्ञा का श्वेत, सहस्त्रार का अवर्ण रंग है।

प्रश्न–किस चक्र के कौन देवता हैं ?

उत्तर–मूलाधार के ब्रह्मा, स्वाधिष्ठान के विष्णु, मणिपुर के रूद्र, अनाहत के ईशान रूद्र, विशुद्ध के पंचवक्त्र, आज्ञा के लिंग, सहस्त्रार के सत्य यह देवता हैं।

प्रश्न–किस चक्र में कौन शक्ति है?

उत्तर–मूलाधार की डाकिनी, स्वाधिष्ठान की शाकिनी, मणिपूर की लाकिनी, अनाहत की काकिनी, विशुद्ध की शाकिनी, आज्ञा की हाकिनी, सहस्त्रार की महाशक्ति, ये शक्तियां हैं।

प्रश्न–चक्रों के ध्यान का क्या फल है ?

उत्तर–मूलाधार – विद्या, अरोग्य प्राप्ति । स्वाधिष्ठान – काव्य,योग प्राप्ति। मणिपुर–विद्या सामर्थ्य । अनाहत–ईश्वत्व विवेक प्राप्ति। विशुद्ध–वक्तृत्व, ज्ञान। आज्ञा–वाक्य सिद्धि। सहस्त्रार–मुक्ति ।

श्री गुरु पूर्णिमा के परीक्षा प्रश्नोत्तर

प्रश्न–मानव जीवन क्या है ?

उत्तर–विवेक युक्त, साधन युक्त जीवन ही मानव जीवन है।

प्रश्न–विवेक युक्त जीवन क्या है ?

उत्तर–बुराई को त्याग कर भलाई करना, जो मिला है उसे अपना न मानना, भगवान को ही अपना मानना विवेक–युक्त जीवन है।

प्रश्न–साधनयुक्त जीवन क्या है?

उत्तर–जो कुछ मिला है उसका सदुपयोग करना ही साधन युक्त जीवन है।

प्रश्न–साधन क्या है ?

उत्तर–जो मिला है साधन है, जीवन ही साधन है।

प्रश्न–दुःख क्यों होता है?

उत्तर–इच्छाओं की उत्पत्ति, अपूर्ति और परिणाम में दुःख होता है। अपने सुख के लिए जब किसी को दुःख देते हैं, तब उसके परिणाम में दुःख होता है।

प्रश्न–सुख कब होता है?

उत्तर–इच्छाओं की पूर्ति में, दूसरों को सुख देने में सुख मिलता है।

प्रश्न–दुःख का अन्त कैसे होगा ?

उत्तर–सुख भोग की आशा का त्याग करने से ।

प्रश्न–शान्ति कैसे मिलेगी ?

उत्तर–मन की चाहों का त्याग करने से शांति प्राप्त होगी ।

प्रश्न–मोह कैसे दूर होगा ?

उत्तर–माने हुए सम्बन्ध के त्याग से । संसार से माना हुआ सम्बन्ध और भगवान से मानी हुई दूरी है।

प्रश्न–माना हुआ सम्बन्ध और मानी हुई दूरी कैसे दूर होगी?

उत्तर–संसार के सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो जाने से, संसार का माना हुआ सम्बन्ध टूट जाता है। भगवान को अपना मान लेने से मानी हुई दूरी मिट जाती है।

प्रश्न–संसार का सच्चा स्वरूप क्या है ?

उत्तर–उत्पत्ति, परिवर्तन और विनाश ही संसार का स्वरूप है।

प्रश्न–पाप किसे कहते हैं ?

उत्तर–अपने सुख भोग के लिए किसी को दुःख देना ही पाप है। अपने निज स्वरूप को भूल कर जगत् से सम्बन्ध जोड़ लेना पाप है।

प्रश्न–सत्संग से क्या लाभ है ?

उत्तर–सत्संग से जीवन का वह विवेक प्राप्त होता है जिसके प्रकाश में हम अपने जीवन पथ को चला कर स्वाधीनता, अमरत्व और प्रेम को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न–सेवा कैसे पूरी होगी ?

उत्तर–जिससे सबका हित हो, ऐसे कर्म करने से, बदले में कुछ न चाहने से, मिले हुए सुख को करूणित होकर देते रहने से, सुखी को देख कर प्रसन्न होना, दुःखी को देख कर दया करने से पूरी होगी।

प्रश्न–सेवा से क्या लाभ है ?

उत्तर–अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

प्रश्न–अपने साथ बुराई करने वाले के साथ क्या करना चाहिए?

उत्तर–बुराई करने वाले के साथ ऐसा व्यवहार करो जिससे उसके अन्दर से बुराई निकल जाय। उसके प्रति घृणा, द्वेष, ईर्ष्या न हो।

प्रश्न–भगवान से प्रेम कैसे होगा ?

उत्तर–भगवान को ही अपना मान लेने से, भगवान से कुछ न चाहने से, जगत् से सारी प्रीति समेट कर भगवान में लगा देने से भगवान से प्रेम होगा।

प्रश्न–कौन–सा साधन अच्छा है ?

उत्तर–जिससे अन्तःकरण की शुद्धि हो।

प्रश्न–त्याग किसका करना चाहिए ?

उत्तर–अशुभ, असुन्दर और अपवित्र का त्याग करो, दोषों और अनावश्यक इच्छाओं का त्याग करो।

प्रश्न–धर्म क्या है?

उत्तर–दुःख में धैर्य, अपना अपकार करने वाले पर क्षमा, विषयों से इन्द्रियों का दमन करना, बाहर भीतर की शुद्धता, इन्द्रियों को अपने बस

में करना, शुद्ध बुद्धि, किसी की वस्तु न चुराना अथवा बिना पूछे न लेना, शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति, सदा सत्य, प्रिय, मधुर बोलना, किसी पर क्रोध न करना, इन 10 लक्षणों को धर्म कहते हैं। जो धारण करने योग्य हो वही धर्म है।

प्रश्न–भगवान को कैसे भक्त प्रिय हैं ?

उत्तर–शास्त्र और भगवान की आज्ञा के अनुसार चलने वाला भक्त भगवान को प्रिय है।

प्रश्न–सुन्दर जीवन किसका है?

उत्तर–जिसे संसार और भगवान चाहे और वह संसार भगवान से कुछ न चाहे।

प्रश्न–कर्त्तव्य किसे कहते हैं?

उत्तर–जो हम कर सकते हैं, जिसमें सबका हित हो, जिसके करने के हमारे पास साधन हों, जो हम दूसरों से अपने लिए चाहते हैं, यही मानव का कर्तव्य है।

प्रश्न–दु:ख–सुख का सदुपयोग क्या है ?

उत्तर–त्याग विरक्ति ही दु:ख का, सेवा ही सुख का सदुपयोग है।

प्रश्न–भजन किसे कहते हैं ?

उत्तर–भगवान के नाते जो कुछ किया जाता है वह सब भजन है।

प्रश्न–भोग किसे कहते हैं ?

उत्तर–अपने सुख के लिए जो किया जाता है, इन्द्रियों के द्वारा जो सुख की प्रतीति होती है, जिसके परिणाम में जड़ता शक्तिहीनता और परतन्त्रता आती है उसे भोग कहते हैं।

प्रश्न–जीव का लक्ष्य क्या है ?

उत्तर–किसी प्रकार की कमी न रहने देना। पूर्णता ही जीव का लक्ष्य है।

प्रश्न—**लक्ष्य की प्राप्ति कैसे होगी ?**

उत्तर—विवेक के प्रकाश में विधिपूर्वक प्रयत्न करने से, मिले हुए के सदुपयोग से, जो अपूर्ण है उससे सम्बन्ध तोड़ कर पूर्ण से सम्बन्ध जोड़ लेने से लक्ष्य की प्राप्ति होगी ।

प्रश्न—**राग द्वेष किसे कहते हैं ?**

उत्तर—किसी को न अच्छी लगने वाली बुराई का जीवन बना रहना ही राग है। सबको अच्छी लगने वाली भलाई का न करना ही द्वेष है।

गुरु सन्देश

(1) सभी कार्य सेवा भाव से करो, सेवा के बदले में कुछ न चाहो।

(2) परमात्मा और जीवात्मा के बीच में मोह का सागर लहरा रहा है। इस सागर को पार कर जाना ही मानव का परम पुरुषार्थ है।

(3) जितना सुख भोगोगे, उतने ही पुण्य कम हो जायेंगे, जितना दुःख प्रसन्नतापूर्वक सह लोगे उतने ही दोष कम हो जायेंगे।

(4) सुख भोग से नवीन संकल्पों की उत्पत्ति होती है।

(5) सुख भोग की रूचि का अन्त हो जाना ही योग है।

(6) जब वैराग्य ढीला पड़ जाता है तब जीवन भोग की ओर गतिशील होने लगता है।

(7) संसार के सुख के पीछे दौड़ना व्यर्थ है, वह न मिला है न मिलेगा।

(8) सद्गुरु के समान कोई वैद्य नहीं, अज्ञान के समान कोई रोग नहीं, श्रद्धा के समान कोई अनुपान नहीं, सेवा, त्याग और प्रेम के समान कोई औषधि नहीं।

(9) गरीबों की मदद करने का यह एक अच्छा विचार है, कि उनकी बनाई हुई वस्तुएं, उचित कीमत देकर खरीद लें। प्रयोग में आने वाली वस्तुएं छोटे दुकानदारों से खरीदने से उनकी सहायता होगी, पर यह ध्यान रहे कि उन्हें पैसा कम न दें।

(10) पुण्य की पूंजी बढ़ाने के लिए, दुखियों की, असहाय, वृद्ध, विधवा, विद्यार्थियों, रोगियों, विरक्त महापुरुषों की, मिले हुए शरीर, धन, वस्तु आदि से यथाशक्ति सहायता करते रहो।

(11) अपराधों से बचने के लिए सदा सावधान रहो कि तुम्हारी किसी क्रिया से किसी प्राणी को दुःख न हो।

लागत मूल्य - 30/-